अध्याय-1

सामाजिक यथार्थ : अर्थ एवं स्वरूप

1. यथार्थ और यथार्थवाद
2. यथार्थवाद के विभिन्न रूप
3. सामाजिक यथार्थ
4. साहित्य और सामाजिक यथार्थ
5. हिन्दी कविता में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति

सन्दर्भ-सूची

साहित्य को मानव जीवन और उसके आसपास की व्यापक सृष्टि का कलात्मक अंकन कहा गया है, क्योंकि उसमें समाज और समाज की इकाई (मनुष्य) का व्यापक जीवन चित्र उपलब्ध होता है । समाज और साहित्य एक–दूसरे के पूरक हैं । एक–दूसरे से ही दोनों का अस्तित्व है । एक रचनाकार अपने आसपास के समाज को बारीकी से देखता है, उसे अनुभूत करता है और जब वह अनुभूति परिपक्व हो जाती है तब उसे रूपाकार देता है । रचनाकार अपनी रचनाओं में समकालीन समाज को चित्रित करता है । समाज के यथार्थ का चित्रण कई रूपों में किया जा सकता है । इस तरह साहित्य में यथार्थ के अनेक रूपों का चित्रण दिखाई पड़ता है । अब प्रश्न उठता है कि यथार्थ है क्या ? क्या देखे हुए को चित्रित करना ही यथार्थ है या साहित्य में यथार्थ का आशय भिन्न होता है ? यथार्थ के अंतर्गत विभिन्न तरह के यथार्थ का चित्रण हुआ है, जिनमें सबसे अधिक महत्व सामाजिक यथार्थ को मिला है । सामाजिक यथार्थ में जीवन का वास्तविक अंकन और समाज–सापेक्ष नजरिया, दोनों होता है । सामाजिक यथार्थ साहित्य को समृद्ध और जनोन्मुख बनाता है । यही कारण है कि आधुनिक साहित्य में सामाजिक यथार्थ एक 'दृष्टि' बनकर अभिव्यक्त हुआ । आधुनिक साहित्य में सामाजिक यथार्थ को सम्पूर्णता में उभारकर प्रस्तुत किया गया है । सामाजिक यथार्थ के व्यापक अर्थ एवं स्वरूप पर यहाँ प्रकाश डाला जा रहा है ।

1. यथार्थ और यथार्थवाद :

यथार्थ अंग्रेजी शब्द 'real' का हिन्दी रूपांतरण है, जिसकी व्युत्पति लैटिन के 'res' धातु से हुई है । यथार्थ मूलतः दर्शनशास्त्र से संबंधित शब्द है । यथार्थ शब्द का सामान्य अर्थ है–जो जैसा है, ठीक वैसा, सत्य, प्रकृत, वस्तुतः आदि अर्थात् जो जैसा है, उसे ठीक उसी रूप में प्रस्तुत करना यथार्थ है । साहित्य में यथार्थ प्रायः यथार्थवाद के रूप में प्रयुक्त होता है । यथार्थ, जीवन की वास्तविकता है और इस वास्तविकता को यथार्थवाद के द्वारा अनावृत किया जाता है । वास्तव में यथार्थ एक दृष्टि है और यथार्थवाद उस दृष्टि को अभिव्यक्त करनेवाली एक विशेष शैली । इस तरह यथार्थवाद यथार्थ का कलात्मक प्रतिबिम्ब हुआ । इसीलिए साहित्य में इन दोनों के मध्य कोई खास भेद नहीं किया जाता । त्रिभुवन सिंह लिखते हैं -"जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है, पर उसका कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है । यथार्थ और यथार्थवाद के बीच एक निश्चित भेदक रेखा खींचना अत्यंत कठिन है । यथार्थवाद यथार्थ के आवरण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।"[1] कथन से स्पष्ट है कि साहित्य में यथार्थ और यथार्थवाद में अंतर नहीं किया जा सकता क्योंकि यथार्थ की अभिव्यक्ति यथार्थवाद के माध्यम से सशक्त रूप में होती है । यथार्थवाद केवल और केवल यथार्थ का आवरण है ।

यथार्थवाद का उदय सर्वप्रथम फ्रांस में हुआ । ज्ञान-विज्ञान की

प्रगति, औद्योगिक क्रांति, पूँजीवादी समाज-व्यवस्था के उदय, फोटोग्राफी कला के आविष्कार, मुद्रण यंत्र के आविष्कार, संचार क्रांति, शहरीकरण की प्रक्रिया आदि ने साहित्य लेखन को विशेष रूप से प्रभावित किया, फलस्वरूप साहित्य में यथार्थ अंकन पर जोर दिया जाने लगा । यथार्थ की कसौटी पर रचना-कर्म को परखने की प्रवृति बढ़ी और उसी रचना को महत्व मिला जिसमें यथार्थ के प्रति विशेष आग्रह दिखा । शिवकुमार मिश्र यथार्थवाद का उद्‌भव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से मानते हुए 'यथार्थवाद' नामक पुस्तक के आमुख में लिखते हैं –''अपने समय के क्रांतिकारी वैज्ञानिक आविष्कारों, औद्योगिक प्रगति एवं दर्शन की प्रखर निष्पत्तियों से प्रेरित और अनुप्राणित एक सर्वांगपूर्ण जीवनदृष्टि तथा कलादृष्टि के रूप में 'यथार्थवाद' का उद्‌भव 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ ।''[2]

यथार्थवाद शब्द का प्रथम उल्लेख सन् 1826 में प्रकाशित **'Mercure francais du xixe siècle'** में मिलता है । इसमें यथार्थवाद का प्रयोग प्रकृति के हूबहू चित्रण तथा साहित्यिक कृति में सत्य के उद्‌घाटन के अर्थ में किया गया है । सन् 1857 में प्रकाशित स्याम्ल्फेर (1821–1889) के **'le-realism'** शीर्षक लेख को यथार्थवाद का घोषणा-पत्र माना जाता है । इस घोषणा–पत्र में रचनाकार को अपनी अभिव्यक्ति के प्रति ईमानदार होने के लिए कहा गया । उसे कहा गया कि उसे अपनी रचना में वही चित्रित करना चाहिए, जिसका वह प्रत्यक्षदर्शी है । वे मानते हैं कि एक सच्चा रचनाकार कभी भी यथार्थ

निरपेक्ष नहीं हो सकता क्योंकि यथार्थ के आलोक में प्रत्येक वस्तु को परखना, उसकी लेखकीय प्रवृत्ति ही बन जाती है । इसके अलावा एक और बात गौर करने लायक है कि यथार्थ हमेशा सत्य के सन्निकट होता है ।

हिन्दी साहित्य कोश में यथार्थवाद को जीवन का वास्तविक अंकन करनेवाली एक विशिष्ट चिंतन पद्धति के रूप में परिभाषित किया गया है– ‘‘यथार्थवाद साहित्य की एक विशिष्ट चिंतन पद्धति है, जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना चाहिये ।’’[3] कई प्रख्यात पाश्चात्य एवं भारतीय विचारकों ने अपने–अपने ढ़ंग से यथार्थवाद की अवधारणा को स्पष्ट किया हैं । पाश्चात्य विचारकों में एंगेल्स, हावर्ड फास्ट, जार्ज लुकाच ने यथार्थ के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं । एंगेल्स यथार्थवाद का आशय बताते हुए मिस मार्गरेट हार्कसेन को लिखे अपने एक पत्र में लिखते हैं –‘‘मेरे विचार से ‘यथार्थवाद’ का आशय यह है कि लेखक विवरणों और ब्यौरों के सत्य प्रस्तुतीकरण के अलावा प्रतिनिधि पात्रों को प्रतिनिधि परिस्थितियों में सच्चाई के साथ चित्रित करे ।’’[4] एंगेल्स की धारणा है कि सच्चाई को व्यक्त करते समय लेखक को ईमानदार और वस्तुपरक दृष्टि सम्पन्न होना चाहिये । साथ ही सच्चाई को व्यक्त करते समय समसामयिक स्थितियों पर भी गौर करना आवश्यक हैं क्योंकि यथार्थ का रूप हमेशा एक जैसा नहीं रहता । समसामयिक सन्दर्भ में ही यथार्थ की प्रामाणिकता स्पष्ट हो सकती है । हावर्ड फास्ट यथार्थवाद की अवधारणा

को प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं –‘‘साहित्य में रचना-प्रक्रिया हमेशा एक संश्लेषण है, प्रतिलिपि नहीं । लेखक सूची मात्रा नहीं बनता, उसे चुनाव करना होता है । यथार्थवाद ही वह साहित्यिक संश्लेषण है जो चुनाव और सृजन के द्वारा यथार्थ के बारे में पाठक की समझ को बढ़ाता है ।’’[5] हावर्ड फास्ट रचना सृजन में लेखक की कल्पना शक्ति के महत्व को रूपायित करते हैं । रचना सृजन वस्तु सत्य और कल्पना का समन्वित रूप है । लेखक अपने आसपास बहुत कुछ देखता है, महसूस करता है, किंतु जो कुछ भी वह देखता है, महसूस करता है उसे वह ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं कर सकता क्योंकि रचना कर्म फोटोग्राफी नहीं है कि उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दे । सच्चा लेखक यथार्थ के अंकन में सामाजिक परिप्रेक्ष्य का ध्यान अवश्य रखता है । लेखक अपनी सृजनात्मक प्रतिभा और नीर-क्षीर विवेक के द्वारा वस्तु सत्य और कल्पना के समन्वित रूप से पाठक को यथार्थ के सही और सामाजिक रूप से परिचित कराता है । जार्ज लुकाच लिखते हैं –‘‘सच्चा तथा महान यथार्थवाद मनुष्य या समाज के मात्र सीमित पक्षों को दिखाने की अपेक्षा उन्हें सम्पूर्णता और समग्र इकाइयों के रूप में चित्रित करता है ।’’[6] जार्ज लुकाच की मान्यता है कि यथार्थवाद की सार्थकता अपने परिवेश के सभी अंगों, चाहे वह व्यष्टि हो या समष्टि, को व्यापक रूप में चित्रित करने में ही हैं । सत्य को जानने के लिए गहराई में उतरना आवश्यक है क्योंकि सत्य कभी भी छिछला नहीं होता । भारतीय आलोचक शिवकुमार मिश्र का कहना है कि रचनाकार न तो समाजशास्त्री

होता है, न सम्वाददाता और न ही अर्थशास्त्री जो तथ्यों और आकड़ों को संग्रहित कर उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दें । यथार्थवादी लेखक के लेखन में सत्य और कल्पना का उचित कलात्मक सम्मिश्रण होता है । उसकी सृजनात्मक कृति में उसका अनुभव, अंतदृष्टि और संवेदना निहित रहती है । वे लिखते हैं – ‘‘यथार्थवादी लेखक सत्य को ब्यौरेवार प्रस्तुत करता है परंतु उसे मात्रा ‘फोटोग्राफिक’ नहीं बना देता । यथार्थवादी रचनाकार इस अनंत रूपात्मक जगत तथा उसके समूचे विस्तार को पैनी नजरों से देखता है, व्यापक सामाजिक जीवन में प्रविष्ट होकर नाना प्रकार की स्थितियों तथा चरित्रों से साक्षात्कार करता है, अनुभवों की एक मूल्यवान समष्टि का स्वामी बनता है, किंतु सारी बातों को ‘फोटोग्राफिक’ शैली में ज्यों–का–त्यों प्रस्तुत नहीं कर देता । सारी घटनाओं तथा पात्रों को, सामाजिक जीवन से प्राप्त अपने यथार्थ अनुभवों की खराद पर चढ़ाता है, उन्हें तराशता है, नुकीला बनाता है और अपनी कृति के अंतर्गत उनकी कलात्मक नियोजना करता है ।’’[7] वे यथार्थवाद का उद्देश्य बताते हुए लिखते हैं – ‘‘सच्चे तथा महान यथार्थवाद का लक्ष्य समाज, जीवन तथा मनुष्य के जीवन यत्र–तत्र बिखरे, स्फुट अंशों को परखने और मूर्त्त करने का नहीं होता वरन् उनकी दृष्टि इसके सम्पूर्ण रूप को उभारने की ओर होती है । वह उन्हें इनकी ‘सम्पूर्णता’ में देखने पर बल देता है । खंड-जीवन तथा खंड-मनुष्य उसकी दृष्टि की परिधि में नहीं आते ।’’[8] आलोचक यथार्थवाद की व्यापकता की ओर ध्यान ले जाते हैं ।

उनके लिये 'सम्पूर्णता' का अर्थ यह है कि सर्जक पूरी निष्ठा और ईमानदारी के साथ जीवन के अच्छे-बुरे सभी पक्षों का भूत, भविष्य और वर्तमान के सन्दर्भ में अंकन करें । अजब सिंह की यथार्थवाद संबंधी अवधारणा भी इससे बहुत भिन्न नहीं है । उनके अनुसार –''चेतना को सम्पूर्णता में लेना ही यथार्थ है । अगर कोई रचनाकार ऐसा नहीं करता तो निश्चय ही यथार्थ के एक पक्ष की ओर से आँखे बन्द कर लेता है । साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह जीवन की ऊँची-नीची सारी अनुभूतियों को सामने रखें और उन्हें समन्वित करें । अनुभूति के समन्वय में साहित्यिक आनन्द निहित है । उसी में साहित्य की सार्थकता होती है । उससे हटकर पक्ष विशेष तक मात्र सीमित रहना, सत्य हो सकता है, लेकिन वह आंशिक सत्य होगा ।''[9] अजब सिंह यथार्थ के लिए 'सम्पूर्णता' को महत्वपूर्ण मानते हैं । उनके अनुसार रचना-सृजन करते समय रचनाकार को अपने दृष्टि संकुचित नहीं रखनी चाहिये बल्कि एक व्यापक दृष्टिकोण के साथ सत्य का अवलोकन करना चाहिए ।

हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद शब्द का प्रथम उल्लेख प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के सन्दर्भ में किया । अपने निबंध संग्रह 'कुछ विचार' में 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' को प्रतिष्ठित करते हुए वे लिखते हैं – ''यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है ।''[10] प्रेमचन्द यथार्थ को 'यथातथ्य अंकन' मानते हैं जबकि साहित्य में सत्य का यथातथ्य अंकन

सम्भव नहीं होता क्योंकि साहित्य–सृजन एक भावात्मक प्रक्रिया है, फोटोग्राफी नहीं । प्रेमचन्द साहित्य–सृजन के लिए यथार्थवाद की महत्ता को अस्वीकार नहीं करते हैं । वे 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' को साहित्य के पक्ष में मानते हैं । वे लिखते हैं – ''इसमें सन्देह नहीं समाज की कुप्रथा की ओर उसका ध्यान दिलाने के लिए यथार्थवाद अत्यंत उपयुक्त है क्योंकि इसके बिना बहुत सम्भव है, हम उस बुराई को दिखाने में अत्युक्ति से काम ले और चित्त को उससे कहीं काला दिखाएँ, जितना वह वास्तव में है ।''[11] प्रेमचन्द यथार्थवाद की उपयोगिता सत्य के संतुलित प्रकाशन में मानते हैं । वे इसके नैतिक पक्ष की ओर ध्यान ले जाते हैं । सत्यकाम जीवन के यथातथ्य चित्रण को यथार्थवाद मानते हैं । उनके अनुसार – ''यथार्थवाद साहित्य में सच्चाई और ईमानदारी के साथ अनुभव की प्रामाणिकता और गहरी समझ के साथ जीवन का यथातथ्य अंकन है ।''[12] सत्यकाम 'अनुभव की प्रामाणिकता' पर जोर देते हैं । अनुभव की प्रक्रिया जितनी सूक्ष्म और गहरी होगी, यथार्थ अंकन की प्रक्रिया उतनी ही सत्याधारित हो पाएगी । छिछले अनुभव के आधार पर यथार्थ अंकन नग्न यथार्थ हो जाएगा, जो सामाजिक उपादेयता के दृष्टिकोण से अहितकारी होगा । रचनाकार की सूक्ष्म दृष्टि और गहरी समझ यथार्थ को 'मानव हिताय सर्वजन सुखाय' बना देती है । इसीलिए रचना सृजन-कर्म के समय रचनाकार के लिए यथार्थ और नग्न यथार्थ में भेद समझना जरूरी है ।

इस तरह स्पष्ट है कि साहित्य–सृजन यांत्रिक क्रिया नहीं है । साहित्य अनुभूतियों की गहराई से सृजित होती हैं । जब समाज का कोई पहलू रचनाकार की संवेदना को आन्दोलित करता है, उसके हृदय को झकझोरता है, उसके मन को मथता है, तब जाकर रचनाकार उसे एक रूपाकार देता है । अनुभूत सत्य को ही रचनाकार शब्दों में पिरोकर कहानी, कविता या अन्य विधा का रूप देता है । यह सही है कि सामान्य अर्थ में जो जैसा है, उसे ठीक उसी रूप में अभिव्यक्त करना यथार्थ है, किंतु साहित्य में यथार्थ इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं हो सकता क्योंकि इससे विकृतियाँ आ जाएगी । साहित्य में यथार्थ का अर्थ कोरा यथार्थ नहीं है । रचना में रचनाकार का निजी दृष्टिकोण, सृजनात्मक कौशल, विश्वास और वैचारिकता समाहित रहती है । साहित्य समाज सापेक्ष होता है, अत: उसकी सात्विकता को बचाए रखना रचनाकार की अह्म जिम्मेदारी है । उसे सत्य का उद्घाटन अपने विवेक का समुचित उपयोग करते हुए समग्र रूप में वस्तुनिष्ठ दृष्टि से करना चाहिए ।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि यथार्थ सत्य को अनावृत करने की ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें रचनाकार अपनी सृजनात्मक कुशलता और विवेक द्वारा वस्तुनिष्ठ दृष्टि से समाज के हित को ध्यान में रखते हुए, सत्य को शुचिता के आवरण में इस तरह लपेटकर प्रस्तुत करता है कि पाठक या श्रोता उस सत्य के मर्म से बखूबी परिचित भी हो जाए और यथार्थ के नाम पर अनर्गल सत्य को प्रश्रय भी न मिले और न ही समाज में कुत्सित दृष्टि का प्रचार-प्रसार हो । यथार्थ समग्रत:

जीवन की वास्तविकता का अंकन है ।

2. यथार्थवाद के विभिन्न रूप

यथार्थ, आधुनिक युग के साहित्य की एक प्रमुख प्रवृति है । जीवन के सत्य से जुड़कर ही साहित्य ग्राह्य होता है । उसके सामाजिक सरोकार का दायरा बढ़ जाता है । यथार्थवाद की स्थापना के बाद यथार्थवाद को कई रूपों में विभाजित किया गया । जिनमें से समाजवादी यथार्थवाद को अधिक महत्व मिला । यही समाजवादी यथार्थवाद अपने परिष्कृत, परिवर्धित एवं संशोधित रूप में स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में सामाजिक यथार्थ के रूप में प्रचलित हुआ । जार्ज लुकाच यथार्थवाद को 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' और 'समाजवादी यथार्थवाद', इन दो रूपों में विभाजित करते हैं । शिवकुमार मिश्र 'प्रकृतिवाद' और 'मनोवैज्ञानिक यथार्थ' को यथार्थवाद से पृथक करते हुए, 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' और 'समाजवादी यथार्थवाद' को यथार्थवाद का वास्तविक अंग स्वीकार करते हैं । प्रकृतिवाद के संबंध में वे लिखते हैं – ''जहाँ तक हमारा अभिमत है, 'प्रकृतिवाद' को 'यथार्थवाद' का अंग न मानते हुए भी हम हाशिए की वस्तु के रूप में उसकी चर्चा पुस्तक में की है । ऐसा इसीलिए किया गया है ताकि उसके सन्दर्भ में यथार्थवाद की सही आकृति को पहचानने में पाठक को मदद भी मिले और यथार्थवाद के प्रामाणिक रुपों को उससे अलग भी कर सके ।''[13] इसी तरह

'मनोवैज्ञानिक यथार्थ' को यथार्थ न मानने के पीछे उनका तर्क हैं–''इस अंतश्चेतनावादी साहित्य को जिसमें चेतना प्रवाह तथा अति यथार्थवाद जैसी प्रवृतियाँ शामिल हैं, 'यथार्थवाद' के अंतर्गत विवेचित भी करते हैं और कुल मिलाकर उसे 'अंतश्चेतनावादी यथार्थ' या 'मनोवैज्ञानिक यथार्थ' जैसे नामों से सम्बोधित भी करते हैं । हम इस तथाकथित यथार्थ को स्वीकृति नहीं देते हैं ।''[14] सत्यकाम चार प्रकार के यथार्थ की चर्चा करते हैं । ये हैं –

(1) आलोचनात्मक यथार्थवाद

(2) प्राकृतिक यथार्थवाद

(3) समाजवादी यथार्थवाद

(4) मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद

सत्यकाम यथार्थ के इन रूपों में 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' और 'समाजवादी यथार्थवाद' को 'यथार्थवाद का असली रूप' मानते हैं । उनके शब्दों में–''यथार्थवाद का असली रूप 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' या 'समाजवादी यथार्थवाद' है, जिसमें जीवन के गर्हित या उज्ज्वल पक्ष का एकांगी चित्रण न होकर संश्लिष्ट , संतुलित और वैज्ञानिक चित्रण होता है ।''[15]

त्रिभुवन सिंह 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद' नामक पुस्तक में यथार्थवाद के जिन रूपों पर विचार करते हैं, वे हैं –

(1) आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

(2) समाजवादी यथार्थवाद

(3) ऐतिहासिक यथार्थवाद

(4) प्रकृतवाद

(5) मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद

(6) अति यथार्थवाद

'समांतर कहानी में यथार्थबोध' नामक पुस्तक में रेखा वसंत पाटील यथार्थवाद के आठ रूपों पर सविस्तार आलोकपात करती है । वे आठ रूप हैं –

(1) प्राकृतिक यथार्थवाद

(2) आलोचनात्मक यथार्थवाद

(3) ऐतिहासिक यथार्थवाद

(4) मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद

(5) विलक्षण यथार्थवाद

(6) अतियथार्थवाद

(7) समाजवादी यथार्थवाद

(8) साम्यवादी यथार्थवाद

इस तरह हम पाते हैं कि यथार्थ का रूप हमेशा एक जैसा नहीं रहा है । यथार्थ का रूप युगीन परिस्थितियों के आधार पर निर्मित होता है । युगीन परिस्थितियाँ हमेशा बदलती रहती है, इसीलिए यथार्थ भी बदलता रहता है ।

यथार्थवाद के रूपों को लेकर विद्वानों में भी एकरूपता नहीं है । वर्तमान समय में यथार्थ के नये–नये रूप सामने आ रहे हैं जिनमें 'जादुई यथार्थवाद' की चर्चा जोरों पर है । इस तरह यथार्थवाद के कई रूप दिखाई पड़ते हैं । कुछ प्रमुख रूप इस प्रकार है –

2.1 प्राकृतिक यथार्थवाद

2.2 अतियथार्थवाद

2.3 आदर्शोमुख यथार्थवाद

2.4 मनौवैज्ञानिक यथार्थवाद

2.5 ऐतिहासिक यथार्थवाद

2.6 आलोचनात्मक यथार्थवाद

2.7 समाजवादी यथार्थवाद

2.8 जादुई यथार्थवाद

2.1 प्राकृतिक यथार्थवाद

प्राकृतिक यथार्थवाद शब्द दर्शन से सम्बन्धित है । इसके लिए अंग्रेजी में 'नेचुरलिज्म' शब्द व्यवहृत होता है । प्राकृतिक यथार्थवाद यथार्थ को फोटोग्राफिक शैली में चित्रित करने पर जोर देता है । इसमें लेखक की निजी संवेदना एवं दृष्टि का कोई महत्त्व नहीं है । प्राकृतिक यथार्थवाद यथार्थ को नग्न रूप

में अभिव्यक्त करने का पक्षधर है । सत्यकाम प्राकृतिक यथार्थवाद के संबंध में लिखते हैं –''वह 'यथार्थ' को दस्तावेज का रूप दे देता है जहाँ प्राकृतिक और जीवन विषयक तथ्यों का, जिन्हें हम नंगी आँखों और उंगलियों से देख और छू सकते हैं, समस्त ब्योरों के साथ वर्णन होता है ।''[16]

आरम्भ में साहित्य में इस तरह के यथार्थवादी चित्रण की प्रधानता थी । पाश्चात्य रचनाकारों में फ्रांस के विख्यात उपन्यासकार एमिली जोला को प्राकृतिक यथार्थवाद को प्रतिष्ठित एवं समृद्ध करने का श्रेय जाता है । उन्होंने '*द एक्सपेरीमेंटल नावेल*' नामक दीर्घ निबंध में इसपर गहराई से विचार करते हुए चिंतन और कला के सन्दर्भ में इसकी प्रकृति और स्वरूप् निर्धारित किया है । जोला के अतिरिक्त फ्लाबेयर, गोगल, एब्सन आदि की रचनाओं में इस तरह की प्रवृति दिखायी देती हैं । इन रचनाकारों ने अपने समय के बुर्जुआ समाज-व्यवस्था को पूरी नग्नता के साथ अनावृत्त किया है । प्रकृतिवाद के महत्त्व को बतलाते हुए शिवकुमार मिश्र ने लिखा है –''प्रकृतिवाद का विधेयात्मक पक्ष केवल वहाँ दिखायी पड़ता है, जहाँ बावजूद अपने चिंतन की दुर्बल भूमिकाओं के, प्रकृतिवादी रचनाकारों ने अपने समय की बुर्जुआ–व्यवस्था के नंगेपन को उभारा है, उसकी तहेदिल से भर्त्सना की है, उसे मुलजिमों के कटघरे में खड़ा किया है ।''[17]

कई आलोचक इसे यथार्थवाद के अंतर्गत नहीं देखते । सुवास कुमार इस विषय पर लिखते हैं –''प्रकृतवाद यथातथ्य और वास्तविक का मात्र फोटोग्राफी चित्रण करता

है, अत: यह यथार्थवाद से बिलकुल अलग है । हाँ, यथार्थवाद शिल्प के स्तर पर प्रकृतवादी पद्धति का उपयोग अवश्य करता है जैसे 'मैला आचँल' या 'मुर्दाघर'में । लेकिन प्रकृतवाद यथातथ्य और वास्तविक अंकन को ही लक्ष्य बना लेता है, जबकि यथार्थवाद उस अंकन को अभिव्यक्ति का माध्यम-भर है और भूत-वर्तमान-भविष्य के सारे आसंगों से होकर उसका कथ्य प्रकृतवाद से बहुत आगे निकल जाता है ।''[18] शिवकुमार मिश्र प्राकृतिक यथार्थवाद को यथार्थवाद की मूल प्रवृति से भिन्न मानते हैं । बकौल शिवकुमार मिश्र – ''वस्तुत: मनुष्य के प्रति एक जीवनशास्त्रीय (बाइलाजिकल) दृष्टिकोण अपनाने के कारण ही प्रकृतिवादी लेखक के लिए मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा–जैसी किसी बात का कोई महत्त्व नहीं रह जाता ।''[19]

इस तरह हम पाते हैं कि प्रकृतिवाद मानव स्वभाव और उसकी नियती को वंशानुक्रम और वातावरण के आधार पर निर्मित मानता है । वह मनुष्य को प्रकृति का समीपी मानकर उसमें आदिम प्रवृति के दर्शन कर, उसके नैतिक आचरण और विवेक को निरर्थक सिद्ध करता है । वस्तुत: प्रकृतिवाद की प्रवृत्ति यथार्थवाद से सर्वथा भिन्न है । इसीलिए उसे यथार्थवाद से पृथक करके देखा जाता है । यथार्थवाद में रचनाकार की दृष्टि भी समाहित रहती है क्योंकि इसके बिना साहित्य–सर्जना असम्भव है । जब तक लेखक की संवेदना रचना-कर्म के साथ नहीं जुड़ेगी, तब तक साहित्य की सामाजिक सत्ता निर्मित नहीं हो पायेगी ।

2.2 अतियथार्थवाद

अतियथार्थवाद का आरम्भ फ्रांस में हुआ । अंग्रेजी में इसके लिए 'सुररियलिज्म' शब्द का प्रयोग किया गया है । अतियथार्थवादी आन्दोलन के प्रणेता आंद्रे ब्रेतां है । इन्होंने सर्वप्रथम अतियथार्थवादी आन्दोलन के उद्देश्य और सिद्धांतों को अपने दो घोषणा–पत्रों में स्पष्ट किया । अतियथार्थवाद की उत्पत्ति स्वच्छन्दवादी विद्रोह की परिणति से हुई । इसके विकास में प्रथम विश्व युद्ध के बाद की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का विशेष योगदान रहा । अतियथार्थवाद की विशेषताओं पर आलोकपात करते हुए अजब सिंह लिखते हैं– ''सहजानुभूति के प्रति तीव्र आस्था, विवेक के प्रति आशंका, व्यक्तिवाद के प्रति झुकाव, आत्मप्रकाशन की प्रवृत्ति, अचेतन मन:स्थिति का अंकन, शिल्प विधान के प्रति विमुखता अतियथार्थवाद का प्रमुख वैशिष्ट्य है ।''[20] त्रिभुवन सिंह अतियथार्थवाद को परिभाषित करते हुए लिखते हैं – ''साहित्य में यथार्थवाद की अभिव्यक्ति जब समाज की मर्यादा एवं परम्परा की सीमाओं का अतिक्रमण करके अत्यंत ही नग्न रूप धारण कर लेती है, तो उसे अतियथार्थवाद(सुररियलिज्म) कहते हैं । ''[21]

वास्तव में अतियथार्थवाद में समाज के कुत्सित सत्य को बिना किसी आवरण के ही प्रकट कर दिया जाता है । नैतिकता यहाँ कोई महत्व नहीं रखती इसलिए निषिद्ध सत्य को प्रकट करने में रचनाकार को कोई झिझक नहीं होती ।

इसमें समाज के प्रति अनास्था और अविश्वास दिखाई पड़ती है । अतियथार्थवाद में अच्छे और बुरे का भेद न कर उसे ज्यों का त्यों प्रकट कर दिया जाता है । इसमें चित्रित यथार्थ पूरी तरह से कल्पना–प्रसूत होता है । इसमें स्वप्न और अचेतन मन की प्रमुखता रहती है । रचनाकार अपनी रचनाओं में जिस संसार के सत्य को प्रकट करता है, वह स्वप्न में देखे गये संसार की तस्वीर होती है । यहाँ सामाजिक विद्रोह भी भौतिक धरातल पर न होकर मानसिक धरातल तक ही सीमित रहता है । अतियथार्थवाद को यथार्थवाद से पृथक करते हुए शिवकुमार मिश्र ने लिखा है – ''अतियथार्थवाद (सुररियलिज्म) के नाम से कला एवं साहित्य रचना को प्रभावित करने वाला एक अन्य आन्दोलन भी इस बीसवीं शताब्दी में विकसित हुआ है । गो, आज वह पृष्ठभूमि में चला गया है, किंतु अपने उद्‌भव काल में उसने अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाकारों को अपनी ओर आकर्षित किया था । मूलत: अंतश्चेतना से संबंधित होने के कारण इस अतियथार्थवाद का भी वैज्ञानिक और वस्तुगत सत्य पर आधारित 'यथार्थवाद' से कोई संबंध नहीं है । ये सब या तो खण्डयथार्थ दृष्टि के प्रतिनिधि आन्दोलन या प्रवृत्तियाँ हैं, या इनमें वस्तुगत यथार्थ को विरूप करने का प्रयास किया गया है ।''[22]

देखा जाए तो अतियथार्थवाद समाज के सही एवं संतुलित विकास में एक बाधक तत्व है । सुवास कुमार इस सन्दर्भ में लिखते हैं –''जिसने (अतियथार्थवाद) चेतन वास्तविक जगत की बजाए स्वप्न-जगत को ही सर्वाधिक

महत्त्व दिया । इस तरह अतियथार्थवाद हमें भौतिक जगत की 'तथ्यात्मक' वास्तविकताओं से काट कर दूर ले जा रहा था ।''[23] सुवास कुमार के अनुसार इस प्रकार का यथार्थ चित्रण किसी भी तरह से समाज के हित नहीं था, इसीलिए इस प्रकार के यथार्थ अंकन का पुरजोर विरोध हुआ । यथार्थ के नाम पर इस प्रकार का यथार्थ-अंकन कुंठित मनोवृत्ति एवं एकांगी दृष्टिकोण का परिचायक है ।

निष्कर्षत: अतियथार्थवाद की कोई सार्थक उपलब्धि नहीं दिखाई पड़ती । जिस यथार्थ वर्णन में तथ्यात्मकता और जीवन की वास्तविकता अंतर्निहित नहीं रहती, वह यथार्थ सिर्फ भ्रम पैदा करता है । यथार्थ कोरे सत्य के प्रदर्शन की दृष्टि मात्र नहीं है, वह मनुष्य और समाज के संबंधों की विवेचना है, समाज और व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक संबंधों की कलात्मक अभिव्यक्ति है । हिन्दी की नकेनवादी काव्यधारा अतियथार्थवाद से प्रभावित रही ।

2.2 आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

आदर्शोन्मुख यथार्थवाद में यथार्थ के साथ-साथ आदर्श भी समाविष्ट रहता है । आदर्श निहित होने के बावजूद इसमें जीवन सत्य का सम्पूर्ण चित्र उकेरा जाता है । यहाँ आदर्श व्यक्ति को दिशा निर्देशित करता है । विषम परिस्थितियों में हताशा और निराश व्यक्ति के अन्दर आशा और विश्वास का संचार कर समाज के सही विकास में उसकी भूमिका निर्धारित करता है । आशा और विश्वास मानव के

लिए वह तत्व है, जिसके द्वारा वह बड़ी से बड़ी लड़ाई जीतने का साहस कर पाता है । आदर्शोन्मुख यथार्थवाद साहित्य में सकारात्मक दृष्टि के उन्मेष में सहायक है । यहाँ पात्रों के कुत्सित पक्षों का आदर्श के माध्यम से शुद्धिकरण किया जाता है । प्रारम्भ में पात्र अपनी चारित्रिक खामियों के कारण समाज और परिवार द्वारा निष्कासित होकर प्रायश्चित करते हैं, तत्पश्चात् उनका व्यक्तित्व और कृतित्व निखरकर समाज के लिए एक उदाहरण बन जाता है । यह सामान्य–सी बात है कि कोई भी व्यक्ति सर्वथा दोषमुक्त नहीं होता । मनुष्य सभी प्राणियों में श्रेष्ठ होते हुए भी दुर्बलताओं का पुतला हैं । यह उसका दोष नहीं बल्कि उसका स्वाभाविक चरित्र है । यही स्वाभाविकता उसे देवताओं से पृथक कर मनुष्य बनाती है । हमारे प्राचीन साहित्य में 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' जैसी रचनाओं के द्वारा सत्चरित्र का निर्माण किया जाता था । आदर्शोन्मुख यथार्थवाद में भी व्यक्ति के चरित्र की पुनर्रचना ही होती है । आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम हिन्दी उपन्यासों के सन्दर्भ में हुई । आदर्श की ओर उन्मुख यथार्थ को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की संज्ञा दी गई । आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रचनाकार अपनी रचनाओं में समाजिक विसंगतियों को उभारकर उससे उबरने का समाधान प्रस्तुत करता है । इसमें आदर्श और यथार्थ का संतुलित समन्वय होता है । हिन्दी साहित्य में इसके प्रथम प्रयोक्ता उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द थे । उन्होंने ही सर्वप्रथम 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' शब्द का प्रयोग कर उसे परिभाषित किया । आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को

यथार्थ का श्रेष्ठ रूप बताते हुए प्रेमचन्द उपन्यासों के सन्दर्भ में लिखते हैं – ''वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं, जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो। उसे आप 'आदर्शोंमुख यथार्थवाद' कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने ही के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है।''[24] त्रिभुवन सिंह आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के संबंध में लिखते हैं– ''आदर्शोन्मुख 'यथार्थवाद' मानव की दयनीय एवं कुरूपताओं से भरी हुई विषम परिस्थितियों की वास्तविक कठोरता में चमक जाने वाला वह काल्पनिक आलोक है जिसके द्वारा जीवन से निराश, परिस्थितियों की मार घबड़ाये हुए तथा रास्ते में हताश मानव के अन्दर आशा और विश्वास का संचार हो जाता है। ''[25] त्रिभुवन सिंह आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को काल्पनिक प्रकाश मानते हैं जिसके सहारे व्यक्ति कुरूप एवं वीभत्स वास्तविकता को आशावादी नजरिये से देखता है और हताश नहीं होता है।

प्रेमचन्द ने अपने अधिकांश उपन्यासों में सामाजिक और व्यक्ति सत्य को आदर्श के आवरण में लपेटकर प्रस्तुत किया है। यह प्रवृति खासकर उनके आरम्भिक उपन्यासों में दिखती हैं। उनकी 'गबन', 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' आदि उपन्यासों में भारतीय समाज का विस्तृत यथार्थ वर्णित हुआ पर उसमें आदर्श को विन्यस्त कर लिया गया हैं। उनके अंतिम उपन्यास' गोदान' को छोड़कर अन्य सभी उपन्यासों में प्रतिपादित समस्याओं का आदर्शवादी तरीके से समाधान दिखाई

देता है । उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'गोदान' हिन्दी की यथार्थवादी रचना है । इस उपन्यास में आदर्श गौण और यथार्थ प्रमुख हो गया है ।

2.4 मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद पाश्चात्य विचारक फ्रायड, एलडर और युंग के सिद्धांतों पर आधारित है । इसमें मानव मन के आंतरिक सत्य को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया जाता है । मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी रचनाकार साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक ढ़ंग से मानव के मन में छिपे हुए गूढ़ रहस्यों को अनावृत्त करता है । इसकी दृष्टि वस्तु केंद्रित न होकर व्यक्ति केंद्रित होती है । शिवकुमार मिश्र लिखते हैं – "'मनोविश्लेषवादी' का संबंध वस्तुजगत के यथार्थ से न होकर व्यक्ति–मन के 'यथार्थ' से होता है ,और उसकी दृष्टि व्यक्तिपरक दृष्टि होती है, वस्तुपरक नहीं ।"[26]

वस्तुपरक दृष्टि न होने के कारण आरम्भ में यथार्थ के इस रूप की काफी अवहेलना हुई । इसे प्रकृतवाद और अतियथार्थवाद की तरह यथार्थवादी काव्यान्दोलन से पृथक कर दिया गया । शिवकुमार मिश्र इसे नकारते हुए लिखते हैं –" वह (मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी रचनाकार) तो व्यक्ति मन के कतिपय खास बिन्दुओं और खास प्रवृतियों को ही, जो उसकी अपनी विचारधारा के चौखटे में फिट बैठती है, अपने अध्ययन का विषय बनाता है । व्यक्ति की निजता उसकी

सामाजिक सन्दर्भता में ही परखी जा सकती है, व्यक्ति के व्यक्तित्व का समग्र अध्ययन उसे उसकी सामाजिक सन्दर्भता से काटकर नहीं किया जा सकता । मनोविश्लेषणवादी, इस तथ्य को नजरान्दाज कर जाता है ।''[27] इस कथन से स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद वैयक्तिकता को महत्त्व देती है । सामाजिक सन्दर्भ यहाँ गौण हो जाता है । उनका मानना है कि चूँकि साहित्य का अभिप्रेत हमेशा सामाजिक प्राणी रहा है, इसलिए उसकी अवहेलना कर व्यक्ति के संकुचित यथार्थ को चित्रित करना एकांगी दृष्टि का परिचायक है । यथार्थ के इस रूप को कई हिन्दी रचनाकारों ने अपनाया । अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी आदि के साहित्य में मनोवैज्ञानिक यथार्थ का अंकन मिलता है । इन रचनाकारों ने मनुष्य की अतृप्त भावनाओं तथा कुण्ठाओं के चित्रण को अपना वर्ण्य विषय बनाया । अज्ञेय का उपन्यास 'शेखर:एक जीवनी' मनौवैज्ञानिक यथार्थ अंकन का बेहतरीन उदाहरण है ।

2.5 ऐतिहासिक यथार्थवाद

ऐतिहासिक यथार्थवाद का संबंध इतिहास की घटनाओं से होने के कारण इसे ऐतिहासिक यथार्थवाद नाम दिया गया है । इसमें इतिहास की किसी घटना या व्यक्ति को आधार बनाकर रचना सृजन किया जाता है । इस प्रकार के यथार्थ वर्णन में रचनाकार को ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा करते हुए रचना सृजन करना होता है । ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने पर ऐतिहासिक

यथार्थ की प्रामाणिकता सन्दिग्ध हो जाती है । रचनाकार पाठक वर्ग को युगीन अनुभूति कराने में असफल हो जाता है । हम पहले कह चुके हैं कि रचना सृजन में काल्पनिकता सृजनकार की रचनात्मक शक्ति होती है और ऐतिहासिक यथार्थवादी सृजनकार इस शक्ति का उपयोग कर यथार्थ को बिना किसी ऐतिहासिक परिवर्तन के सम्प्रेषणीय और युगानुकूल बना देता है ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल उपन्यासों में ऐतिहासिक यथार्थवाद के चित्रण में अपनायी जाने वाली सावधानी के विषय में जो मंतव्य व्यक्त करते हैं, वह अवलोकनीय है –''किसी ऐतिहासिक उपन्यास में यदि बाबर के सामने हुक्का रखा जाएगा । गुप्तकाल में गुलाबी और फिरोजी रंग की साड़ियाँ, मेज पर गुलदस्ते झाड़–फानुस लगाए जाएँगें । सभा के बीच खड़े होकर व्याख्यान दिए जाएँगे और उनपर करतल ध्वनि होगी, बात-बात में धन्यवाद, सहानुभूति ऐसे शब्द तथा सार्वजनीन कार्यों में भाग लेना, ऐसे फिकरे पाए जाएँगें तो काफी हँसने वाले, नाक-भौं सिकोड़ने वाले मिलेंगे ।''[28] शुक्लजी का आशय यही है कि ऐतिहासिक यथार्थ के चित्रण में यदि रचनाकार युगीन स्थिति और प्रवृति का ध्यान नहीं रखेगा तो कृति निष्प्रभ हो जाएगी । त्रिभुवन सिंह ऐतिहासिक यथार्थवाद के एक अन्य पहलू की ओर ध्यान ले जाते हैं – ''ऐतिहासिक यथार्थवाद के अन्दर बीते हुए कल की सामाजिक एवं राष्ट्रीय परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण उपस्थित किया जाता है । परंतु इतिहास और ऐतिहासिक यथार्थवाद एक दूसरे के लिए प्रयुक्त किए

गये शब्द नहीं है बल्कि दोनों में अंतर हैं । इतिहास में तिथियों, घटनाओं तथा परिणाम का ठीक-ठीक वर्णन उपस्थित रहता है । ऐतिहासिक यथार्थवाद के अंतर्गत स्थितियों तथा घटनाओं की यथार्थता पर इतना अधिक नहीं दिया जाता,उससे अधिक उस समय की सामाजिक एवं राष्ट्रीय तथा धार्मिक परिस्थितियों को उभारकर रखने के प्रति आग्रह दिखलाया जाता है ।''[29] त्रिभुवन सिंह इस तथ्य की ओर ध्यान ले जाते हैं कि ऐतिहासिक यथार्थवाद में यथातथ्यता के प्रति आग्रह भले ही कम हो, समसामयिक परिवेश, सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार, रहन-सहन, बोलचाल के प्रति आग्रह कम होने से इसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध हो जाएगी । हिन्दी साहित्य में जयशंकर प्रसाद की रचनाओं, विशेषकर उनके नाटकों में ऐतिहासिक यथार्थवाद का चित्रण मिलता है । वे श्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटककार के रूप में विख्यात है । अस्तु, ऐतिहासिक यथार्थवादी रचनाकार अतीत के यथार्थ को अपना वर्ण्य विषय बनाता है । इसीलिए उसमें इतिहास की समझ अत्यावश्यक है । इसके अभाव में उसके द्वारा चित्रित सत्य भ्रामक और निष्प्रभ है ।

2.6 आलोचनात्मक यथार्थवाद

प्रकृतिवाद की तरह आलोचनात्मक यथार्थवाद शब्द का संबंध भी दर्शन से है । परंतु दर्शनशास्त्र और साहित्य में व्यवहृत आलोचनात्मक यथार्थवाद में अंतर है । उन्नीसवीं शताब्दी में सात अमेरिकी दार्शनिकों ने संयुक्त प्रयास से

'क्रिटिकल रियलिज्म' नामक पुस्तक प्रकाशित किया । इस पुस्तक में उन्होंने आलोचनात्मक यथार्थवाद को यथार्थवाद के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया । आलोचनात्मक यथार्थवाद को अधिकतर उपन्यास साहित्य से जोड़कर देखा जाता । यह यथार्थ का एक प्रमुख रूप है । विख्यात विद्वान अंर्स्ट फिशर जहाँ इसे 'स्वच्छन्दतावाद' का आरम्भिक चरण मानकर इसमें रोमानी किस्म की प्रतिक्रियाएँ देखते हैं, वहीं मार्क्सवादी रचनाकार इसे 'बुर्जुआ यथार्थवाद' सम्बोधित करते हैं । पूंजीवादी समाज के शोषण, दमन, अन्याय, अत्याचार आदि विकृतियों के प्रति व्यंग और आलोचना होने के कारण, इसे आलोचनात्मक यथार्थवाद नाम से अभिहित किया गया । इसमें सामाजिक विकृतियों और विसंगतियों के प्रति रचनाकार का आलोचनात्मक दृष्टिकोण और रवैया होता है । आलोचनात्मक यथार्थवादी रचनाकारों ने सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं को गहराई से परखते हुए बुर्जुआ सोच और व्यवस्था की आलोचनात्मक ढ़ंग से पड़ताल की हैं । आलोचनात्मक यथार्थवादी रचनाओं में पूंजीवादी समाज-व्यवस्था अपने नग्न रूप में चित्रित हुआ है । वर्तमान व्यवस्था के अमानवीय रूख और खोखले आदर्शो के प्रति अनास्था, विरोध, विद्रोह और अस्वीकार आलोचनात्मक यथार्थवादी रचनाकारों की केंद्रीय विशेषता थी । जार्ज लुकाच अपनी कृति 'द मीनिंग ऑफ कंटेम्परारी रियलिज्म' में आलोचनात्मक यथार्थवाद को समाजवादी यथार्थवाद के संधिस्थल के रूप में स्वीकार करते हैं । सत्यकाम आलोचनात्मक यथार्थवाद और

प्राकृतिक यथार्थवाद के अंतर की समीक्षा करते हुए आलोचनात्मक यथार्थवाद को परिभाषित करते हुए लिखते हैं –'' 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' यथार्थवाद का वह रूप है जो इंद्रियाग्राह्य बोध को आधार मानकर व्यक्ति और समाज की वास्तविकताओं का उद्घाटन और विश्लेषण सौंदर्यशास्त्रीय अनुभवों के रूप में करता हैं । वह जीवन की सच्चाइयों का तटस्थ अवलोकन भी करता है, पर 'प्राकृतिकवाद' की तरह अपने को इतने ही तक सीमित नहीं कर लेता । वह केवल समाज और व्यक्ति के जीवन के निम्न, ऋणात्मक, निन्दनीय और गर्हित पक्षों को ही अपना चित्रणीय विषय नहीं बनता, वरन् जीवन के उज्ज्वल और उदात्त पक्षों पर भी बल देता है । उसकी दृष्टि और पद्धति आलोचनात्मक होती है तथा वह केवल सतह पर तैरते यथार्थ का चित्रण न कर उसकी गहराइयों में प्रवेश करता है और यथार्थ की भीतरी पर्तों को भेदकर सामाजिक सत्य का उद्घाटन करता है ।''[30]

आलोचनात्मक यथार्थवाद की उपलब्धियों के बारे में सुवास कुमार लिखते हैं –''पूँजीवादी समाज के अंतर्विरोधों को उजागर करने की दृष्टि से आलोचनात्मक यथार्थवाद बड़ा ही कारगर साबित हुआ है ।......आलोचनात्मक यथार्थवाद ने प्रकृतवाद की सीमाओं को अच्छी तरह प्रकट कर दिया, अभिजात साहित्य–दृष्टि को बेनकाब करते हुए उसके रूपवादी खोखलेपन की जगह जनपक्षधरता और सामाजिक प्रतिबद्धता को स्थापित किया ।''[31]

आलोचनात्मक यथार्थवाद ने यथार्थवाद के रचनात्मक विकास में भले ही महती भूमिका अदा की हो परंतु इसमें वैज्ञानिक दृष्टि का सर्वथा अभाव है । वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव में ये रचनाकार न तो पूँजीवाद के घिनौने दमनकारी षड्यंत्र को समझ सके और न ही एकजुट होकर मानवविरोधी पूंजीवादी शक्तियों को पूरी तरह से धराशायी कर सकने में समर्थ हुए । शिवकुमार मिश्र के शब्दों में – ‘‘पूँजीवाद की असंगतियों तथा अमानवीय हरकतों से विक्षुब्ध लेखक चूँकि भावुक तथा संवेदंशील लेखक थे, अत: वे पूँजीवाद के इस रचनात्मक चरित्र को नहीं देख सके । इतिहास की वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव ही इसका मूलवर्ती कारण है, जिसके तहत न केवल उन्हें जीवन भर संत्रास तथा तनाव में जीना पड़ा, अपनी कलासर्जना की बलि भी चढ़ा देनी पड़ी ।’’[32] आलोचक ने जिसे ‘रचनात्मक चरित्र’ कहा है, वह पूँजीवाद की स्वार्थप्रेरित दमनकारी प्रवृत्ति है । बच्चन सिंह आलोचनात्मक यथार्थवाद की सीमा बताते हुए लिखते हैं – ‘‘आलोचनात्मक यथार्थवाद युगीन जीवन के अंतर्विरोधों को आलोचनात्मक दृष्टि से विश्लेषित करता है - किंतु उनमें निहित किसी रचनात्मक सम्भावना को संकेतित नहीं करता ।’’[33]

अस्तु, आलोचनात्मक यथार्थवाद के संबंध में यही कहा जा सकता है कि भले ही आलोचनात्मक यथार्थवाद में वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव दिखता है, किंतु युगीन यथार्थ को संवेदनशीलता, निष्ठा, ईमानदारी और सच्चाई के साथ

चित्रित करने में यह पूरी तरह समर्थ है । इसकी जनोन्मुखी भावना इसके यथार्थ–चेतना को सार्थक बनाती है ।

2.7 समाजवादी यथार्थवाद

समाजवादी यथार्थवाद के पुरोधा मक्सिम गोर्की है । सन् 1934 में हुई पहली कांग्रेस बैठक में उन्होंने इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग करते हुए , इसके स्वरूप पर आलोकपात किया । समाजवादी यथार्थवाद के मूल में 'समाजवाद' का चिंतन है, जो पूंजीवादी समाज व्यवस्था की अराजकता को खत्म करने के लिए प्रतिबद्ध है । समाजवादी यथार्थवाद पूंजीवादी संस्कृति या बुर्जुआ संस्कृति का विरोध करता है और उसके स्थान पर आम आदमी को प्रतिष्ठित करता है । वह समाज में व्याप्त शोषण के मूल में पूंजीवादी समाज व्यवस्था को ही देखता है । बुर्जुआ संस्कृति पूंजी पोषित संस्कृति है । जिसमें सर्वहारा वर्ग को पूंजी की ताकत से दबाया और कुचला जाता है । समाजवाद का मुख्य ध्येय पूंजीवादी समाज-व्यवस्था के विरूद्ध समाजवादी समाज-व्यवस्था की स्थापना कर वर्ग-संघर्ष को समाप्त करना है । पूंजीवादी समाज-व्यवस्था की विसंगतियों से आक्रांत समाज के विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रिया जाहिर करते हुए ये सृजनकार क्रांति को महत्व देते हैं । समाजवादी यथार्थवाद के केंद्र में मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन द्वारा प्रतिष्ठित वैज्ञानिक समाजवाद और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का विकासवादी सिद्धांत है । शिवकुमार मिश्र

समाजवादी यथार्थवाद को यथार्थ की नई मंजिल मानते हुए लिखते हैं –

'' 'समाजवादी यथार्थवाद' यथार्थवादी कलाआन्दोलन के विकास की नव्यतम मंजिल है । पूँजीवादी समाज व्यवस्था की विरूपता से आक्रांत, उसका निर्मम उद्घाटन करने तथा उसे अंतर्मन से धिक्कारने के बावजूद भविष्य की उन रचनात्मक शक्तियों को देख पाने की आलोचनात्मक यथार्थवादियों की दृष्टि-असमर्थता के कारण ही, जो पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वस्त करते हुए एक नये और मंगलमय भविष्य को उजागर कर सकें, समाजवादी समाज की स्थापना के साथ ही, एक नये प्रकार की यथार्थदृष्टि के उपस्थापन की आवश्यकता महसूस की गयी । इस नयी यथार्थदृष्टि को प्रस्तुत करते हुए उसके पुरस्कर्ताओं ने दावा किया वह न केवल आलोचनात्मक यथार्थवादियों की एकांगी तथा अपूर्ण यथार्थदृष्टि की तुलना में मनुष्य, समाज, जीवन तथा उसके यथार्थ को उनकी सम्पूर्णता में देखने और प्रस्तुत करनेवाली है, वरन् वह एक रचनात्मक दृष्टि भी है जिसमें भविष्य के नये और यथार्थवादी कलासृजन की महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ भी संलग्न हैं ।''[34] आलोचक के अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था की अमानवीयता से आक्रांत व्यक्ति और समाज के यथार्थ को निर्ममता से उघारने के लिए एक भविष्योन्मुख और रचनात्मक दृष्टि की आवश्यकता उस युग की महती आवश्यकता बनी हुई थी, जनविरोधी पूँजीवादी व्यवस्था को धराशायी करने के लिए क्रांति की जरूरत थी । इस जरूरत को समाजवादी यथार्थवादी रचनाकारों ने पूरा किया । वास्तव में समाजवादी यथार्थवादी

आलोचनात्मक यथार्थ का युगानुकूल विकास है, इसमें आलोचनात्मक यथार्थ के रोमानी आवेग के स्थान पर आक्रामकता है । इसमें व्यक्ति और समाज के अपूर्ण और एकांगी यथार्थ को समग्रता में देखा जाता है । अजब सिंह समाजवादी यथार्थवाद के बारे में लिखते हैं –'' 'समाजवादी यथार्थवाद' को लेखक संसार के परिवर्तन की सम्पूर्णता में देखते हैं । 'समाजवादी यथार्थवाद' संघर्ष का परिणाम है । सच्चाई के लिए हर समाज में हमेशा संघर्ष करना होता है । केवल संघर्ष के रूप बदल जाते हैं । यथार्थ संघर्ष के माध्यम से ही समाजवादी यथार्थवादी लेखक अपना रास्ता बनाता है । इसलिए समाजवादी यथार्थवादी साहित्यकार के पास कहने, सुनने एवं संवाद करने की एक शैली होती है ।''[35] अजब सिंह समाजवादी यथार्थवाद को सम्प्रेषण की एक सार्थक शैली मानते हैं । उनके अनुसार समाज में नवीन उपलब्धियों के लिए संघर्ष अनिवार्य होता है और समाजवादी यथार्थवादी रचनाकार इसी संघर्ष का हिस्सा बनकर समाज-व्यवस्था की बुराइयों पर प्रहार कर एक नये जन-सापेक्ष परिवेश के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध रहता है । रेखा वसंत पाटिल समाज का सम्पूर्ण दु:ख–सुख, दर्द–राहत, आशा-निराशा, उत्थान-पतन को इसमें अंतर्निहित होते हुए देखती हैं – ''समाजवादी यथार्थ में लेखक का उद्देश्य समाज की यथार्थ स्थिति का 'यथार्थ' चित्रण करना होता है । यह समाज की उन जटिलताओं और विषमताओं को भी पकड़ता है जिनके कारण वर्ग-संघर्ष जन्म लेता। इसमें सम्पूर्ण समाज का दु:ख-सुख, आशा-निराशा, पतन-उत्थान

रहता है ।''[36]

समाजवादी यथार्थवाद की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें भविष्य का पुर्वानुमान किया जाता है । वह वस्तुगत यथार्थ को इतिहास के परिप्रेक्ष्य में पूरी व्यापकता के साथ देखकर और समझकर, आसन्न भविष्य की रूपरेखा खींच देता है । समाजवादी यथार्थवादी रचनाकार का आग्रह वस्तुगत यथार्थ को केवल सतही तौर पर चित्रित करना नहीं होता है । वह यथार्थ के रेशे–रेशे को उघाड़ते हुए एक बेहतर समाज की परिकल्पना को मूर्त करता है, उस भविष्यदृष्टि को सामने लाता है जो आशा एवं आस्थावादी मूल्यों को अपने में समेटे हुए हैं । प्रेमलता जैन लिखती है– ''समाजवादी यथार्थवाद में मानव व्यक्तित्व की समग्रता, विशदता के साथ व्याख्या की गई है । इसका साहित्यकार चरित्र–सृष्टि को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही चित्रित कर सकता है ।''[37]

निष्कर्षत: समाजवादी यथार्थवाद अन्य यथार्थवाद की तुलना में जनता के सबसे सन्निकट है । इसका मूल अभिप्रेत पूँजीवादी शक्ति से आक्रांत जनता को उनकी पीड़ा से मुक्ति दिलवाना है । समाजवादी यथार्थवाद ने वर्तमान शोषण आधारित समाज–व्यवस्था में बदलाव की माँग कर समाज में परिवर्तन लाने में कारगर भूमिका निभाई है । समाजवादी यथार्थवाद में एक नये समतामूलक समाज की आकांक्षा निहित है । एक बेहतर भविष्य की आशा संजोए समाजवादी यथार्थवाद जनता के हित के लिए पूरी तरह से सर्मपित दिखाई देता है । हिन्दी की

प्रगतिशील काव्यधारा समाजवादी यथार्थ की साहित्यिक अभिव्यक्ति है ।

2.8 जादुई यथार्थवाद

जादुई यथार्थवाद के लिए अंग्रेजी में 'मैजिक रियलिज्म' (Magic Realism) शब्द का प्रयोग होता है । इस शब्द के प्रथम प्रयोक्ता फ्रेंज रोह (Franz Roh) है । बीसवीं सदी के तीसरे दशक में जर्मन चित्रकारों के चित्रों का विश्लेषण करते हुए फ्रेंज रोह ने इस शब्द का प्रयोग किया । दक्षिण अमेरिका के कई उपन्यासकारों ने 1950–70 के मध्य ऐसे उपन्यासों का सृजन किया जो अपने परम्परागत रूप से सर्वथा भिन्न थी । इन उपन्यासों में अतीत–वर्तमान, इतिहास–मिथक, यथार्थ–भ्रम, वास्तविकता–फैंटसी, अभिजात संस्कृति–जन संस्कृति का कलात्मक सम्मिलन किया गया था । दिक्कत यह थी कि इस नये तरह के यथार्थ को यथार्थ की किस श्रेणी में रखा जाए क्योंकि यथार्थ की प्रचलित श्रेणी इसके प्रतिकूल थी । ऐसी स्थिति में इस तरह के यथार्थ के लिए 'जादुई यथार्थवाद' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा । जादुई यथार्थवाद जादुई सन्दर्भ का पर्याय नहीं है । जादुई यथार्थवाद के अंतर्गत रचनाकार अपनी कल्पना और फैंटसी के माध्यम से ऐसे यथार्थ को अभिव्यक्त करता है जो अलग, अनोखा, अद्भुत या विलक्षण है । जीवन की सच्चाइयों को इसमें मिथक और परिकथा के सहारे शब्दबद्ध किया जाता है । सुवास कुमार लिखते हैं – ''पुराने रिवाज और विश्वास तथा नवीन

वैज्ञानिक तर्कवाद दोनों परस्पर एक–दूसरे पर हावी होते रहते हैं और इस प्रकार के सह–अस्तित्व में जादुई यथार्थवाद जन्म लेता है । जादुई यथार्थवाद में कृषक समुदाय, ग्राम समाज अथवा कबीलों के जीवन से ग्रहण किया हुआ कथा का कच्चा माल होता है । ऐसे सामुदायिक जीवन के मिथकों को चित्रित करने की एक जटिल पद्धति का ही नाम है जादुई यथार्थवाद ।''[38]

वर्तमान समय में जहाँ एक ओर भयंकर अभाव, अशिक्षा और बेरोजगारी है, वहीं दूसरी ओर करोड़ों–अरबों का घोटाला रोज सामने आ रहा है । जितनी गहरी खाई गरीबी की बढ़ती जा रही है, उतनी ही तेजी से बाजारवाद का वर्चस्व और माल कल्चर बढ़ रहा है । एक ओर घोड़ागाड़ी और हाथ–रिक्शा आज भी सवारी ढो रहे हैं, दूसरी ओर बड़े–बड़े मोटरगाड़ी और हवाई जहाज में लोग यात्रा कर रहे हैं । समाज में आज चतुर्दिक विलक्षणता दृष्टिगत हो रही है । यही कारण है कि जादुई यथार्थवाद हिन्दी साहित्य में हाल में चर्चा के केंद्र में है । हिन्दी कवि मुक्तिबोध की रचनाओं को जादुई यथार्थवाद के अंतर्गत रखा जा सकता है । उन्होंने फैंटसी के सहारे साम्प्रतिक यथार्थ को बखूबी अभिव्यक्ति दी है । इसके अलावा फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' में जादुई यथार्थवाद का सुन्दर अंकन हुआ है ।

अस्तु, जादुई यथार्थवाद आज के जीवन–सन्दर्भ के अनुकूल है । साम्प्रतिक समय में जब चारों ओर का परिवेश भयावह होता जा रहा है,

अविश्वास, अनास्था, भय, असुरक्षा की भावना बलवती होती जा रही है, तब यथार्थ को प्रकट करने के लिए फैंटसी का सहारा लेना रचनाकार की जरूरत बनती जा रही है ।

यथार्थ के उपर्युक्त सभी भेदों में आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद ही अधिक प्रचलित रहा है । ये दो रूप अधिकांश विद्वानों तथा समीक्षकों द्वारा स्वीकृत भी हुए हैं । यथार्थवाद के इन दो रूपों की कसौटी पर साहित्य की जमकर आलोचना हुई । इन दो रूपों में भी समाजवादी यथार्थवाद ही सबसे अधिक प्रचलित और आलोचकों द्वारा स्वीकृत हुआ । समाजवादी यथार्थवाद जहाँ समाजवादी दृष्टि सम्पन्न है, वही आलोचनात्मक यथार्थवाद इससे निरपेक्ष है । समाजवादी यथार्थवाद जहाँ वैज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न है, वही आलोचनात्मक यथार्थवाद में वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव मिलता है । आलोचनात्मक यथार्थवाद भविष्योन्मुख भी नहीं है, जबकि समाजवादी यथार्थवाद भविष्य की ओर उन्मुख है । समाजवादी यथार्थवाद में प्राकृतिक यथार्थवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद की विशेषताएँ भी समाविष्ट रहती है । जार्ज लुकाच आलोचनात्मक यथार्थवाद की तुलना में समाजवादी यथार्थवाद में उच्चतर विकास की सम्भावना देखते हैं । उनकी मान्यता है कि – '' 'समाजवादी यथार्थवाद' समाजवाद के लिए संघर्ष जैसे महत परिप्रेक्ष्य को स्वीकार करने के कारण ही 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' से विशिष्ट नहीं है, उसकी विशिष्टता को इस सन्दर्भ में भी देखा जा सकता है कि समाजवाद

की स्थापना के लिए चल रहे निर्णायक संग्राम, समाजवाद के लिए आकुल और युद्धरत शक्तियों का चित्रण वह भीतर से करता है । समाजवादी समाज उसके लिए एक सच्चाई है जो उसकी रग रग में व्याप्त है जबकि 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' के लिए वह जीवन की अनिवार्य शर्त्त न होकर महज पूंजीवादी उलझनों से मुक्ति पाने का शरण्स्थल है ।''[39] शिवकुमार मिश्र यथार्थवादी कलाआन्दोलनों में 'समाजवादी यथार्थवाद' को श्रेष्ठतर मानते हैं । उनकी मान्यता है –'' 'समाजवादी यथार्थवाद' को यथार्थवादी कलाआन्दोलन का निर्विकार रुप से नव्यतम और श्रेष्ठतर विकास माना जा सकता है ।.....अपनी अधिक वैज्ञानिक और तात्विक समाज के आलोक में चिंतन तथा सर्जना दोनों ही स्तरों पर महत्तर उपलब्धियों की आकांक्षा के साथ अधिक आश्वस्त होकर बढ़ रहा है ।''[40]

अजब सिंह समाजवादी यथार्थवाद को वास्तविक यथार्थवाद स्वीकार करते हैं –

'' समाजवादी यथार्थवाद वैज्ञानिक दृष्टि है ,यही वास्तविक यथार्थवाद भी है ।''[41]

इस तरह हम देखते हैं कि यथार्थवाद के सभी रूपों में समाजवादी यथार्थवाद ही अधिक ग्राह्य हुआ है । अपने गहरे और व्यापक सामाजिक सरोकार की बदौलत ही उसे विचारकों द्वारा अधिक मान्यता प्राप्त हुई हैं । समाजवादी यथार्थवाद में यथार्थवाद के अन्य रूप स्वत: विन्यस्त हो जाते हैं । यथार्थवाद के उपर्युक्त सभी रूपों में प्राकृतिक यथार्थवाद और अतियथार्थवाद को यथार्थवाद के अंतर्गत न मानते हुए भी आलोचक इसकी चर्चा यथार्थवाद के सन्दर्भ में अवश्य करते हैं ।

इसकी मूल वजह यही मानी जा सकती है कि प्राकृतिक यथार्थवाद और अतियथार्थवाद यथार्थवादी अवधारणा के विकास में पृष्ठभूमि की भूमिका निभाते हैं । विशुद्ध यथार्थवादी अवधारणा आलोचकों की दृष्टि में आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद है । हिन्दी साहित्य में अधिकांश रचनाकारों को इन दो दृष्टियों के अंतर्गत ही परखा गया है ।

3. सामाजिक यथार्थ

सामाजिक यथार्थ समाजवादी यथार्थवाद का परिष्कृत और परिमार्जित रूप है । समाजवादी यथार्थवाद के मूल में आर्थिक यथार्थ चित्रित हुआ है, वही सामाजिक यथार्थ के मूल में समाज का बहुआयामी यथार्थ विन्यस्त है । इसमें रचनाकार आर्थिक के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में यथार्थ का मूल्यांकन करता है । सामाजिक यथार्थ वस्तुत: समष्टि का यथार्थ है, जिसमें समाज में घटित सभी वास्तविक कार्य-व्यापार का सूक्ष्म और व्यापक अंकन होता है । सामाजिक यथार्थ प्रत्येक जन-सर्मपित सर्जक की मुख्य जीवन-दृष्टि है । सामाजिक यथार्थ की एक अन्यतम विशेषता यह है कि यथार्थ के वर्णन में रचनाकार की अभिव्यक्ति वक्रता लिए हुए रहती है । समाज के बहुरंगी और जनविरोधी चरित्र को उघाड़ते हुए शैली का वक्र हो जाना स्वाभाविक ही लगता है । स्वातंत्र्योत्तर परिवेश पर यदि हम एक नजर

डाले तो वहाँ केवल विसंगति, विडम्बना और विद्रूपता ही दृष्टिगत होती है । सामाजिक यथार्थ अंकन स्वातंत्र्योत्तर साहित्य की उपलब्धि है । स्वातंत्र्योत्तर जन–प्रतिबद्ध रचनाकारों ने उस सत्य को जिसके वे साक्ष्य रहें, मानवीयता के कसौटी पर जाँच-परख कर रचनात्मक रूप प्रदान किया ।

सामाजिक यथार्थ का सामान्य अर्थ है–समाज का यथार्थ अर्थात् समाज की वास्तविकता का चित्रण । समाज में जो कुछ भी घटित हो रहा है, उसको सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत चित्रित किया जाता है । इसमें व्यक्ति सत्य से अधिक सामाजिक सत्य का उद्‌घाटन महत्व रखता है । यहाँ व्यष्टि सत्य को समष्टि सत्य के परिप्रेक्ष्य में महत्ता दी जाती है । हिन्दी साहित्य कोश में सामाजिक यथार्थ के बारे में लिखा हुआ है – ‘‘सामाजिक यथार्थ दार्शनिक दृष्टि से प्रत्यक्ष जगत से बिल्कुल भिन्न है । प्रत्यय मानव मस्तिष्क से सम्बंधित है, किंतु सामाजिक यथार्थ के भीतर वे शक्तियाँ आती है, जो मस्तिष्क के बाहर है । आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों का समुच्चय ही सामाजिक यथार्थ है । ये शक्तियाँ मिलकर उस सामाजिक वातावरण का निर्माण करती है, जिनसे हमारे संस्कारों की सर्जना होती है ।’’[42]

त्रिभुवन सिंह प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास साहित्य में यथार्थवाद पर विचार करते हुए लिखते हैं -‘‘प्रेमचन्दजी के बाद लिखे जाने वाले सामाजिक उपन्यासों में उनके साहित्य की भांति हमें आदर्शवादी चित्रों के दर्शन नहीं होते, बल्कि समाज

की वास्तविकता को अधिक से अधिक उसके प्रकृत रूप में लाने का ही प्रयत्न किया गया है । उपन्यासों के अन्दर चित्रण की इस वास्तविक शैली को 'सामाजिक–यथार्थवाद' के नाम से अभिहित किया जा सकता है । ''[43] इस तरह स्पष्ट है कि आलोचक की दृष्टि में समाज की वास्तविक अवस्था का अंकन ही सामाजिक यथार्थ है । समाज में जो विषमता, विसंगति, अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता निहित है, उसे उसके वास्तविक रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत करना ही इसका मुख्य ध्येय हैं । त्रिभुवन सिंह सामाजिक यथार्थ को व्याख्यायित करते हुए इस तथ्य की ओर ध्यान ले जाते हैं कि साहित्य में समाज की वास्तविक अवस्था के यथार्थ अंकन का आशय वस्तु को ज्यों का त्यों प्रकट करना नहीं होता । बकौल त्रिभुवन सिंह – सामाजिक का अर्थ है समाज की वास्तविक अवस्था का यथार्थ चित्रण । परंतु साहित्य के अन्दर किसी भी वस्तु का तद्वत चित्र उतार कर रख देना कठिन होता है क्योंकि साहित्यिक चित्र कैमरे द्वारा लिया गया चित्र नहीं होता, बल्कि वह साहित्यकार को लेखनी के द्वारा चित्रित किया गया ऐसा चित्र होता है, जिसमें साहित्यकार के अनुभव एवं कल्पना के सुन्दर रंग ढले होते हैं ।''[44] कुलदीप कौर सामाजिक यथार्थ के बारे में लिखती है– ''सामाजिक यथार्थ ऐसी रचना प्रक्रिया है जिसमें लेखक बिना किसी भय अथवा पक्षपात के सामाजिक विसंगतियों, विडम्बनाओं एवं भ्रष्टाचारों से त्रस्त समाज की दयनीय स्थितियों को उसके यथार्थ रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हुए प्रगति की

ओर अग्रसर करता है तथा सामाजिक उत्थान की शक्तियों को पहचानते हुए मूल्यों की स्थापना करता है ।''[45]

निष्कर्षत: सामाजिक यथार्थ समाज का यथार्थ चित्रण है । इसके अंतर्गत समाज का वृहत्तर सत्य सामने लाया जाता है । यहाँ सत्य का संधान आंशिक रूप में नहीं बल्कि सम्पूर्ण रूप में किया जाता है । रचनाकार बिना किसी दबाव के अपने जन–सरोकार और रचना–कर्म के दायित्व का निर्वाह करते हुए समाज में व्याप्त समस्याओं, विघटन, मूल्यों के ह्रास, नैतिक क्षरण, मानसिक विघटन को सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में केवल व्याख्यायित ही नहीं करता बल्कि उसमें बदलाव लाने के लिए जन को सचेत भी करता है । यहाँ रचनाकार जनता से पृथक होकर अपने को अभिव्यक्त नहीं करता, जनता के साथ उस भयावह जीवन को, उनकी पीड़ा को आत्मसात् कर, अपनी अनुभूति को धारदार व्यंग्यात्मक तरीके से अभिव्यक्त करता है । वह समाज में नये मूल्यों की स्थापना करता है ताकि समाज में समता और जन–सापेक्ष बदलाव आये । सामाजिक यथार्थ समाज का नग्न अंकन नहीं है । समाज के वस्तु सत्य को उजागर करते समय रचनाकार इस बात के लिए सजग रहता है कि वास्तविकता के नाम पर समाज में अनर्गल सत्य का प्रचार न हो ।

4. साहित्य और सामाजिक यथार्थ

साहित्य मनुष्य के विविधानुभवों और ज्ञान का कलात्मक शब्दबद्ध

रूप है । इसकी सार्थकता और उपयोगिता समाज के बहुआयामी यथार्थ को अभिव्यक्त करने में ही है । साहित्य जब 'कला–मात्र के लिए' सृजित न होकर 'जीवन के लिए' सृजित होने लगती है तभी सही अर्थो में उसमें अपने अस्तित्व को बनाये रखने की क्षमता आ जाती है । साहित्य को 'जीवन की आलोचना और व्याख्या' मानने वाले प्रेमचन्द साहित्य की अवधारणा को जाहिर करते हुए लिखते हैं – ''साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो, और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप में उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सचाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हो ।''[46] प्रेमचन्द साहित्य की उपयोगिता और उसकी प्रभावोत्पादकता पर विचार करते हैं । वे साहित्य में जीवन–सत्य की अभिव्यक्ति को महत्त्वपूर्ण मानते हैं । इससे रहित साहित्य उनकी दृष्टि में निष्प्रभ और अनुपयोगी है । जो लेखन पाठक की चेतना को उद्वेलित नहीं कर सकता, उसे सही और गलत का फर्क नहीं दिखला सकता, उसे वह निरर्थक मानते हैं । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी भी जब साहित्य को परिभाषित करते हैं, तब वे भी साहित्य की लोक प्रतिबद्धता की ओर इंगित करते हैं – ''मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ । जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदु:खकातर और

संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है ।"[47]

साहित्य को मानव जीवन और उसके आस–पास की व्यापक सृष्टि का कलात्मक अंकन है । उसमें समाज और समाज की इकाई (मनुष्य) का व्यापक जीवन चित्र उपलब्ध होता है । समाज साहित्य को जन्म देता है और साहित्य समाज में नूतन विचार, नवीन प्रेरणा और नए आदर्श की स्थापना करता है । समाज स्वस्थ मूल्यों को विकसित करने में सहायक हैं तो साहित्य इन मूल्यों की रक्षा करने के लिए प्रतिबद्ध हैं । सामाजिक यथार्थ अंकन साहित्य को समृद्ध और जनोन्मुख बनाता है । इसीलिए आधुनिक साहित्य में सामाजिक यथार्थ एक 'दृष्टि' बनकर अभिव्यक्त होने लगी । त्रिभुवन सिंह साहित्य में यथार्थ अंकन की महत्ता पर लिखते हैं – "साहित्य में यथार्थवाद जीवन का वह वास्तविक चित्रण है जो समाज का पूर्ण जीवंत चित्र उपस्थित कर देता है । प्रत्येक युग में वास्तविकता को ढूँढ़ना ही साहित्य में सच्चा यथार्थवाद है । निष्पक्ष भाव से समाज के संबंधों को ठीक तरह से देखना ही यथार्थवाद का कार्य है । हम समाज में यह यथार्थ इसलिए ढूँढ़ते हैं कि हमारा विकास हो सके ।"[48] हार्वर्ड फास्ट भी साहित्य में सामाजिक यथार्थ को अत्यावश्यक मानते हैं – "हम ऐसे समय में हैं जब सारी मानवता को यथार्थ के साथ संबंधों के रू–ब–रू खड़ा किया जा रहा है । और लेखक को पीछे नहीं सबसे आगे चलना है । यह उनका काम है कि वे जनता को यथार्थ की प्रकृति सम्प्रेषित करें । उसी में उनकी कला और महानता है । उनके कार्य की

मूल प्रकृति ही ऐसी है कि वे मानव की आशा और भय एवं यातना और जीत के सार को निचोड़ सकें । परंतु ऐसा कर सकने के लिए उन्हें दुनिया की परछाई को नहीं, स्वयं दुनिया को देखना होगा ।”[49] हार्वर्ड फास्ट एक महत्तवपूर्ण बिन्दु की ओर ध्यान ले जाते हैं कि सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करने वाले रचनाकार को समाज के साथ आंतरिक संबंध स्थापित करना होगा ताकि वह समाज के सत्य का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर सकें और उस सत्य को सही ढ़ंग से सम्प्रेषित भी कर सकें ।

साहित्य में समाज के वास्तविक चित्र का अंकन परमवांछनीय है । सामाजिक यथार्थ के निरूपण से ही साहित्य की उपादेयता और प्रामाणिकता सिद्ध होती है । वास्तव में सृजन–प्रक्रिया सामाजिक भाव और मूल्यों का ही प्रतिफलन है । सृजन–प्रक्रिया के अंतर्गत सामाजिक यथार्थ निरूपण को अनिवार्य मानते हुए चित्रा मुद्‌गल लिखती है –‘‘सर्जक होने की परिभाषा में सामाजिक प्रतिबद्धता पहली शर्त है । मेरा मानना है कि कोई भी लेखक तब तक सर्जक नहीं हो पाता, जब तक वह सामाजिक यथार्थ को अपनी प्रतिबद्धता नहीं बनाता । यह यथार्थ किसी भी वर्ग–वर्ण का हो सकता है ।”[50] लेखिका मानती है कि सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति लेखन की अनिवार्यता है । वह इस बात को भी प्रकट करती है कि सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत सभी तरह का यथार्थ समाविष्ट हो सकता है । साहित्य और सामाजिक यथार्थ के अंत:संबंधों पर विचार करते हुए नामवर सिंह लिखते हैं –‘‘सूर, तुलसी, प्रेमचन्द आदि महान साहित्यकारों ने वर्ग समाज में रहते

हुए भी जो महान कृतियाँ दी हैं, उसका कारण गरीबी नहीं बल्कि सामाजिक यथार्थ की सच्ची पकड़ तथा मानव–जय के प्रति अदम्य विश्वास रहा है ।''[51]

साहित्य वास्तव में विभिन्न दृष्टियों का संचयन है । यदि रचनाकार की दृष्टि यथार्थोन्मुख होगी तो उसका सृजन–कर्म भी स्वस्थ और विकासोन्मुख होगा अन्यथा उसका सृजन एकांगी और वैयक्तिक बनकर रह जाएगा । समाज में विस्तारित विषमता, विसंगति एवं अराजकता के साथ–साथ, उसके सद्–असद् पक्षों के मूल में कौन से कारण है ? क्यों है ? उससे मुक्ति कैसे पाई जा सकती है ? इन सारे सवाल का जबाव वही साहित्य दे सकता जिसमें सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई हो । इस सन्दर्भ में हार्वर्ड फास्ट के विचार को देखा जा सकता है– ''यथार्थ तो व्याकुलता पैदा करता है, शक्तियों की सच्ची प्रकृति की पड़ताल में जाने को बाध्य करता है तथा एक ऐसे क्षोभ को पैदा करता है जो कभी भी लपटों में बदल सकता है । सबसे बड़ी बात तो यह है कि यथार्थ एक किस्म की पक्षधरता की माँग करता है, क्योंकि सच्चाई हमेशा पक्षधर होती है ।''[52] हार्वर्ड फास्ट जिस एक किस्म की पक्षधरता की बात करते हैं, वह वस्तुत: सामाजिक यथार्थ निरूपण ही है । एक सच्चे साहित्यकार की पक्षधरता हमेशा समाज के हाशिये पर खड़े अवहेलित, शोषित, नारकीय जीवन भोगनेवाले सामान्य जन के प्रति होनी चाहिए । समाज के पक्षपातपूर्ण रवैये के कारण नारकीय जीवन जीनेवाले, त्रासदायक स्थिति से आक्रांत किसान, मजदूर और निम्न मध्यवर्ग की व्यथा–कथा

को वाणी देकर उससे मुक्ति का रास्ता दिखाना ही सच्चे साहित्यकार का उद्देश्य होना चाहिये । तभी उसका साहित्य जीवंत और लोकोपयोगी हो पायेगा ।

5. हिन्दी कविता में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति :

सामाजिक यथार्थ चित्रण को प्राय: कथा–साहित्य से जोड़कर देखा जाता है । कुछ विचारक यह मानते हैं कि कविता में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति ठीक ढ़ंग से नहीं होती है । यथार्थ की उपेक्षा करके कविता आगे बढ़ सकती है, पर कहानी और उपन्यास के लिए यथार्थ उसका प्राणतत्व है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है –‘‘कविता यथार्थ की उपेक्षा कर सकती है, संगीत यथार्थ को छोड़कर भी जी सकता है, पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थ प्राण है ।’’[53] जबकि सच यह है कि कोई भी विधा चाहे वह कविता हो, कहानी हो, नाटक हो या उपन्यास, सामाजिक यथार्थ चित्रण से निरपेक्ष होते ही ये निष्प्रभ हो जाती है । अजय तिवारी इस विषय पर लिखते हैं –‘‘जो लोग यथार्थवाद को सिर्फ कथा–साहित्य की वस्तु समझते हैं, और कविता को फैंटसी या जादू या कुछ और मानते हैं, वे ‘मार्क्सवादी’ हों या न हों, कविता के हितैषी नहीं है ।’’[54] कविता की संरचना कथा–साहित्य से भिन्न होती है । कविता में भाव प्रधान होता है, वह कल्पना से सुसज्जित होकर सामने आती है, किंतु इसका यह आशय नहीं है कि भाव और कल्पना होने के कारण कविता यथार्थ–निरपेक्ष होती

है । भाव और कल्पना तो रचनाकार की रचनात्मक प्रतिभा है जिसके बल पर वह अभेद को भेद पाता है, इस दृश्य जगत में छिपे हुए अदृश्य सत्यों का संधान कर लेता है । एक विशेष जीवन-दृष्टि के रूप में सामाजिक यथार्थ का अंकन भले ही प्रगतिशील कविताओं में मिलता हो, किंतु सामाजिक जीवन और सामान्यजन के जीवनाभाव एवं शोषण के कई चित्र हमें भक्तिकालीन कवियों की रचनाओं में भी दिखाई देती हैं । सामाजिक यथार्थ अंकन की पूर्वपीठिका के रूप में हम भक्तिकालीन संतकवि कबीर की रचनाओं को ले सकते हैं । सच तो यह है कि भले ही एक कलाआन्दोलन या जीवनदृष्टि के रूप में कबीर ने अपनी 'कथनी' को अभिव्यक्ति नहीं किया हो, पर सामाजिक यथार्थ का जो तीखा रूप उनकी 'कथनी' में मिलता है, उसकी अपनी महत्ता है । अगर उन्हें सामाजिक यथार्थ का पुरोधा कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी । कबीर की कविताओं में तत्कालीन समाज की समस्त विकृतियाँ, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक विघटन साकार हो उठा है । कबीर ने भगवत भक्ति के बहाने अपने समयगत यथार्थ को ही वर्णित किया है । धार्मिक पाखंड से सामान्यजन को दिग्भ्रमित करनेवालों पर कवि का आक्रोश देखते ही बनता है –

> '' यहु सब झूठी बन्दिगी, बरियाँ पंच निवाज ।
> साचै मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज ॥''[55]

जातिगत भेदभाव के द्वारा सामान्यजन पर होनेवाले अत्याचार को

उनके दोहों में व्यापक रूप में देखा जा सकता है । उनके बारे में आलोचक हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं –''वे मनुष्यमात्र को समान मर्यादा का अधिकारी मानते थे; जातिगत, कुलगत, आचारगत श्रेष्ठता का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं था ।''[56]

कबीर की रचनाओं में मध्यकालीन समाज में व्याप्त भूख और गरीबी का अंकन हुआ है । भूख से व्याकुल जन की पीड़ा देखकर कवि को तत्कालीन अमानवीय समाज-व्यवस्था पर क्रोध आता है । कवि व्यवस्था पर आक्रोश जाहिर करते हैं –

''भूखा भूखा क्या करै , कहा सुनावै लोग ।''[57]

चौथीराम यादव ने 'कबीर की कविता : सांस्कृतिक जनवाद की विरासत' नामक लेख में कबीर की सामाजिक चेतना के बारे में लिखा है– ''कबीर मध्यकालीन सामंती-पुरोहिती, जाति-व्यवस्था और उसके जनविरोधी प्रभामंडल का सबसे बड़ा आलोचक है ।''[58] गोस्वामी तुलसीदास ने 'कवितावली' में अकाल से ग्रस्त सामान्यजन की पीड़ा को मार्मिक रूप में व्यक्त किया है –

'' खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी ।
जीविका विहीन लोग सीध मान सोच बस,
कहैं, एक एकन सों कहाँ जाई, का करी ।''[59]

स्पष्ट है कि हिन्दी कविता में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति

भक्तिकालीन कविताओं से ही आरम्भ है । भक्तिकालीन कवियों ने समाज के बीच रहकर रचना कार्य किया, इसीलिए समाज का यथार्थ उनकी रचनाओं में सहजता से समाविष्ट हो गया । भले ही इन कवियों ने भक्ति भाव जागृत कराने के लिए सामाजिक बुराईयों को चित्रित किया हो, पर इससे तत्कालीन समाज का वीभत्स और जनविरोधी रूप हमारे सामने प्रत्यक्ष हो उठता है । दरबारी संस्कृति के पोषक होने के कारण रीतिकालीन कवियों को सामाजिक जीवन और आमजन की व्यथा से कोई सरोकार नहीं रहा । इसीलिए इन कवियों की रचनाओं में सामाजिक यथार्थ का वर्णन नहीं मिलता । जो थोड़ा–बहुत अंकन हुआ भी है, वह स्थूल और सतही है । भक्तिकाल के बाद भारतेंदु युग के रचनाकारों ने अपनी कविताओं में सामाजिक समस्याओं और तत्कालीन जीवन की त्रासदी को व्यापक रूप में अंकित किया है । शिव कुमार मिश्र भारतेंदु युग को यथार्थ का बीजारम्भ मानते हैं – ‘‘जब हम हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद के उद्भव और विकास की चर्चा करते हैं, हमें यह मानकर चलना चाहिए कि उसके बीज बड़ी प्रखर सम्भावनाओं के साथ भारतेंदु और उनके सहयोगियों के कृतित्व में प्राप्त होते हैं । X X X जहाँ तह हिन्दी कविता का प्रश्न है, दृष्टिकोण तथा रचना–पट की विशदता के बावजूद, यथार्थ का जो तीखा तथा धारदार रूप, ब्रजभाषा तथा उससे जुड़ी मानसिकता के बीच भी, स्वतंत्र रचनाओं और रचनाधर्मी गद्य के भीतर, कविता की विधा में हमें भारतेंदु और उनके युग के लेखकों की सर्जना में दिखायी पड़ा ।’’[60]

भारतेंदु ने 'भारत दुर्दशा' जैसा काव्य–नाटक लिखकर विदेशी पराधीनता से आक्रांत भारत की वास्तविक स्थिति को जिस सुन्दर तरीके से रेखांकित किया, वह उन्हें श्रेष्ठ सर्जक सिद्ध करता है । 'अंधेर नगरी' जैसा प्रहसन लिखकर उन्होंने राजनीतिक विडम्बना और विसंगति को साक्षात् कर दिया है । विदेशी सत्ता द्वारा भारतीयों के आर्थिक और दैहिक शोषण पर हास्य–व्यंग्य के द्वारा जिस बेबाक तरीके से कवि ने कटाक्ष किया है, वह आकर्षक है । भारतेंदु युग के रचनाकारों ने समसामयिक सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक पाखण्ड और दुराचार को बेधड़क तरीके से अनावृत किया है । प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरी नारायण 'प्रेमघन' आदि रचनाकारों ने अपनी कविता और नाटकों में तद्‌युगीन सामाजिक यथार्थ को सशक्त ढ़ंग से उभारा है । भक्तिकाल के पश्चात् सामाजिक यथार्थ का सशक्त निरूपण भारतेंदु युग में देखने को मिलता है । सामाजिक यथार्थ को सशक्त तरीके से अभिव्यक्त करने के लिए जिस लहजे यानि 'व्यंग्यात्मक तरीके' की दरकार होती है, वह इस युग की कृतियों की खास पहचान है ।

एक विशिष्ट जीवनदृष्टि और कलाआन्दोलन के रूप में सामाजिक यथार्थ का निरूपण हिन्दी साहित्य में पहली बार प्रगतिशील कविता में हुई । सन् 1936 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ का अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ जिसके अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचन्द ने कहा –''हमारे लिए कविता के वे भाव निरर्थक

हैं, जिनसे हमारे हृदयों पर नैराश्य छा जाये । हमें उस कला की आवश्यकता है जिसमें कर्म का सन्देश हो । हमारे पथ में अहंवाद अथवा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रधानता देना वस्तु है जो हमें जड़ता, पतन और लापरवाही की ओर ले जाती है, और ऐसी कला की आवश्यकता हमारे लिए न व्यक्ति के रूप में उपयोगी होती है, न समुदाय रूप में ।''[61] सामाजिक जीवन के बहुरंगी यथार्थ को प्रगतिशील कवियों यथा नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, केदारनाथ अग्रवाल आदि ने अपनी कविताओं में चित्रित किया । यहाँ तक कि छायावादी कवि निराला और पंत ने परवर्ती दौर की कविताओं में सामान्यजन की पीड़ा, उनकी दयनीय स्थिति, उनकी शारीरिक और मानसिक यंत्रणा, उनकी सामाजिक अवहेलना को मुख्य रूप से वर्णित किया हैं । पंत ने 'रूपाभ' पत्रिका के प्रथमांक में लिखा–''इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है, उस प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं । अतएव, इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती ।''[62]

हाशिये पर खड़े, आर्थिक और जातिगत दृष्टि से निम्न वर्ग को इन दोनों कवियों खासकर निराला ने रचना के केंद्र में लाकर खड़ा किया । निराला की 'वह तोड़ती पत्थर','रानी और कानी','राजे ने अपनी रखवाली की', 'कुकुरमुत्ता', 'सरोज–स्मृति' आदि रचनाओं में सामाजिक यथार्थ के कई रूप दिखाई पड़ते हैं । इन कविताओं के केंद्र में समाज का शोषित, विपन्न वर्ग है । पंत ने भी 'युगांत'

के साथ छायावादी प्रवृति की रचनाओं के सृजन के अंत की घोषणा कर यथार्थ अंकन को अपने सृजन सरोकार में शामिल कर लिया । पंत की 'ग्राम्या' संग्रह में ग्रामीण जीवन और किसानों का यथार्थ बखूबी चित्रित हुआ है । प्रगतिशील कवि नागार्जुन की कविताओं का अधिकांश अंश समाज के विसंगति और विद्रूपताओं का आख्यान करती है । उनकी कविताओं में आमजन की दुर्दशा, राजनेताओं की चालबाजी और पूँजीपतियों का छल दृश्य रूप में उपलब्ध होता है । उनकी 'घिन तो नहीं आती','प्रेत का बयान','आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी', 'शासन की बन्दूक' जैसी अनगिणत रचनाओं में व्यवस्था की विडंबनाओं से त्रस्त आमजन की व्यथा मुखरित हुई है । स्वतंत्राता पश्चात् की राजनीतिक विसंगतियों को जाहिर करने में नागार्जुन पूर्ण समर्थ हुए हैं ।

प्रगतिशील कविता के पश्चात् नयी कविता के कुछ कवियों ने सामाजिक यथार्थ अंकन को अपना वर्ण्य विषय बनाया जिनमें सप्तकीय परम्परा के कवि मुक्तिबोध, भवानीप्रसाद मिश्र, रघुवीर सहाय आदि प्रमुख है । रघुवीर सहाय ने राजनीतिक यथार्थ के साथ नारी–जीवन के त्रासद पक्षों को अपनी कविता का वर्ण्य–विषय बनाया । नई कविता दौर के वे ऐसे कवि हैं जिन्होंने नारी जीवन के यथार्थ को सबसे अधिक चित्रित किया है । उनकी 'नारी' शीर्षक कविता की छह पंक्तियाँ नारी की विडम्बना, उसकी दुखद परिणति और पुरूषतांत्रिक समाज में उसकी स्थिति को व्यापक स्तर पर चित्रित करती है । पुरूष स्त्री को दैहिक प्रेम

का पर्याय मानकर उसे पूर्णता का अहसास कराने का गर्व महसूस करता है तो समाज उसके प्रति भोगवादी नजरिया रखकर अपने को सौंदर्य का पुजारी मानता है । कवि रघुवीर सहाय लिखते हैं–

> ‘‘ कई कोठरियाँ थी कतार में
> उनमें किसी में एक औरत ले जायी गयी
> थोड़ी देर बाद उसका रोना सुनाई दिया
> उसी रोने में हमें जाननी थी एक पूरी कथा
> उसके बचपन से जवानी तक की कथा । ’’[63]

सप्तकीय परम्परा के इतर कवियों में दुष्यंत कुमार के काव्य में सामाजिक यथार्थ का विशद् वर्णन मिलता है । इन कवियों ने अपनी कविताओं में राजनीतिक-मोहभंग, किसान–मजदूरों की दीनावस्था, भूख, बेरोजगारी, अकाल से त्रस्त आमजन की दुरावस्था का चित्रण किया है ।

समकालीन कविता में सामाजिक यथार्थ का व्यापक अंकन हुआ है । सामाजिक यथार्थ समकालीन कविता का प्राण–तत्व है । भूमंडलीकरण, उदारीकरण, बाजारवाद और उपभोक्तावाद के बढ़ते वर्चस्व से आम–आदमी के जीवन की समस्यायें नित नया रूप धारण कर, उसे निगलने को तत्पर हैं । समकालीन समाज के इस कटु सत्य को समकालीन कवियों ने बड़े सशक्त ढ़ंग से उकेरा है । केदारनाथ सिंह, अरूण कमल, एकांत श्रीवास्तव, हेमंत कुकरेती,

विजेंद्र, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, आलोकधंवा, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, जितेंद्र श्रीवास्तव, कात्यायनी, अष्टभुजा शुक्ल, नीलेश रघुवंशी, पवन करण, ज्ञानेंद्रपति आदि ने भूमंडलीय परिदृश्य में गरीबी, बेरोजगारी, महँगाई, पारिवारिक जीवन में व्याप्त अशांति, भुखमरी, बंधुआ बाल–मजदूरों की व्यथा, नारी यौन-शोषण, कन्या-भ्रूण हत्या, लोक-संस्कृति विघटन, प्रेम संबंधों में टकराहट, वृद्धावस्था की त्रासदी, सूचना तंत्र के प्रसार से आत्मीय संबंधों में आए बदलाव, राजनीतिक विसंगति, मूल्यहीनता, ग्रामीण जीवन की विडंबना आदि को विविध रूपों में चित्रित किया है । सड़कों पर आये दिन होनेवाली दुर्घटनाएँ समाज में बढ़ रही असंवेदनशीलता का उदाहरण है । रफ्तार भरी जिन्दगी में इंसान इतनी तेज भाग रहा है कि अपने गंतव्य के अलावा उसे कुछ नहीं सूझता । कवि अरूण कमल 'चापा' शीर्षक कविता में लिखते हैं–

‘‘ वह भूमि पर था
एक लड़का दूर गाँव का
जिसे चापता भागा था
ट्रक दस चक्का ।
हजार – हजार कोड़े ’’[64]

आम जन पर बेरोजगारी, महँगाई, अभाव के कोड़े बरसाने का कार्य निरंतर जारी है । समकालीन कवि एकांत श्रीवास्तव इस पर लिखते हैं –

‘‘ यह एक पीठ है
काली चट्टान की तरह
चौड़ी और मजबूत
इस पर दागी गयी
अनगिनत सलाखें
इस पर बरसाये गये ’’[65]

समकालीन कवियों ने भूमंडलीकरण के इस दौर में समाज में व्याप्त अंतर्विरोध को विशेष रूप से दर्शाया है । जहाँ एक तरफ अत्याधुनिक माध्यमों का प्रयोग कर हम सारी दुनिया को इंटरनेट के द्वारा एक जगह समेट लेते हैं, वहीं सारे आत्मीय रिश्तों की मिठास को भूलकर अपने माता पिता को वृद्धाश्राम भेजकर अपना उत्तरदायित्व पूरा कर लेते हैं । कवि अरूण कमल की ‘एक वृद्ध दम्पत्ति की गाथा’, ‘एक वृद्धा जो कुछ सोच निकल गई घर से’ में वृद्ध जीवन की त्रासदी को मार्मिक ढंग से व्यक्त किया गया है ।

इसी तरह समकालीन कविता में सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत नारी शोषण को कई कवियों ने अपना वर्ण्य विषय बनाया है । स्त्री आज हर जगह पुरूष के साथ कदम मिलाते हुए अपना परचम लहरा रही है । उसकी योग्यता को समाज स्वीकार भी कर रहा है, किंतु स्त्री के प्रति सामंती सोच अभी भी नहीं बदली है । त्रासदायक स्थिति यह है कि वह बाहर ही नहीं, अपने घर में भी शोषित हो रही

है । कभी जन्म लेने के पूर्व उसकी हत्या कर दी जाती है तो कभी अपने ही करीबी रिश्तेदारों द्वारा उसका यौन-शोषण होता है । संबंधों की मर्यादा में आये विघटन को सबसे अधिक स्त्री ही झेलती है चाहे वह साक्षर हो या निरक्षर, नौकरीपेशा हो या घरेलू, बालिग हो या नाबालिग । समकालीन कवि पवन करण का 'स्त्री मेरे भीतर' संग्रह स्त्री जीवन की व्यथा–कथा का प्रामाणिक दस्तावेज है । इस संग्रह की कविताएँ स्त्री जीवन के विविध त्रासदायक पहलूओं से साक्षात्कार कराती है । 'एक खूबसूरत बेटी का पिता' इस संग्रह की एक महत्त्वपूर्ण कविता है । किस तरह एक बेटी का पिता हमेशा भयभीत रहता है । इसे इस कविता में बखूबी दर्शाया गया है । बेटी का पिता होना चिंताजनक नहीं है, चिंता इस बात कि है कि वह एक *'खूबसूरत'* बेटी का पिता है । समाज में सौंदर्य के पुजारियों द्वारा आये दिन लड़कियों का यौन–उत्पीड़न किया जा रहा है, राह चलते उनपर तेजाब फेंका जा रहा है । ऐसी भयावह स्थिति में एक पिता को बेटी की खूबसूरती चुभने लगती है । समाज की दरिन्दगी के समक्ष वह अपनी बेटी की खूबसूरती को पाक रखने में असहाय नजर आ रहा है । एक खूबसूरत बेटी के पिता के भय को कवि ने जीवंतता और मार्मिकता के साथ चित्रित किया है –

" दरअसल उन तमाम पिताओं की तरह
मेरा भय भी यही है कि मैं एक खूबसूरत बेटी का पिता हूँ
और मेरी बेटी की खूबसूरती चुभती हुई है "[66]

इस तरह हम देखते हैं कि सामाजिक यथार्थ अंकन कविता के केंद्र में आरम्भ से है । कोई भी समाज-सजग और जन-प्रतिबद्ध रचनाकार सबसे पहले अपनी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ अंकन को ही तरजीह देगा क्योंकि इसी में उसके लेखन की सार्थकता है । हिन्दी कवियों ने भी ऐसा ही किया । समाज के शोषण नीति को चित्रित करने में भक्तिकाल के कबीर से लेकर आज के कई युवा एवं वरिष्ठ सजग है । आदिवासी जीवन यथार्थ को भी कई कवि विस्तार से चित्रित कर रहे हैं जिनमें निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन आदि का नाम प्रसिद्ध है । आज के ज्यादातर रचनाकार मध्यवर्गीय जीवन त्रासदी को स्वयं झेल रहे हैं । रोजमर्रा की कड़वी होती जा रही जिन्दगी ने उन्हें स्वाभाविक रूप से विद्रोही बना दिया है । यही कारण है कि आज के कवि सामाजिक यथार्थ को तीखे ढ़ंग से अभिव्यक्त कर रहे हैं ।

समग्रत: यही कहा जा सकता है कि सामाजिक यथार्थ साहित्य की एक व्यापक जीवन–दृष्टि है । हिन्दी साहित्य में सामाजिक यथार्थ की अवधारणा उपन्यासों के सन्दर्भ में विकसित हुई । पर साहित्य की प्राय: सभी विधाओं में इसको महत्त्व मिला है । कविता, कहानी, संस्मरण आदि सभी में समकालीन सामाजिक जीवन के यथार्थ को चित्रित किया गया । एक विचारधारा या जीवन–दृष्टि के रूप में सामाजिक यथार्थ को व्यापक आयाम प्रगतिशील लेखक संघ की प्रथम सभा में प्रेमचन्द के अध्यक्षीय भाषण से मिली हो, परंतु सामाजिक

यथार्थ की अभिव्यक्ति भक्तिकालीन रचनाओं से ही दिखाई पड़ती है । भक्तिकालीन रचनाकारों ने अपने साहित्य को जन से जोड़कर जनहित की रक्षा के लिए समर्पित किया । सामाजिक यथार्थ सामाजिक चिंता से नि:सृत एक ऐसी विचारधारा है, जिसके केंद्र में समाज का उपेक्षित, अवहेलित, उत्पीड़ित सामान्यजन और उनका सरोकार है । यही कारण है कि विभिन्न प्रकार के यथार्थवादी आन्दोलनों के उद्भव और विकास के बावजूद सामाजिक यथार्थ अधिक प्रचलित और अधिकांश आलोचकों द्वारा स्वीकृत हुआ । अन्य यथार्थवादी रचनाओं की तुलना में सामाजिक यथार्थ से परिपूर्ण रचनाओं ने पाठकों को संवेदित किया ।जैसे-जैसे समाज में जनविरोधी परिस्थितियों का वर्चस्व बढ़ता जाएगा, सामाजिक यथार्थ अंकन की महत्ता भी बढ़ती जायेगी।

सन्दर्भ-सूची :

1. सं.-डॉ.त्रिभुवन सिंह, डॉ.विजय बहादुर सिंह, साहित्यिक निबंध, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या : 24

2. मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 7

3. सं.- धीरेंद्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश भाग–1, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पंचम संस्करण, 2005, पृष्ठ संख्या : 510

4. उद्धृत मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 25

5. फास्ट हार्वर्ड, अनु.-विजय सुषमा, साहित्य और यथार्थ, अरूणोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1993, पृष्ठ संख्या : 17

6. उद्धृत कौर डॉ. कुलदीप, बलदेव वंशी का काव्य : सामाजिक यथार्थ, अनंग प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या : 22

7. मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 31

8. मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 27

9. सिंह डॉ. अजब, यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,

प्रथम संस्करण, 1998, पृष्ठ संख्या : 82

10. प्रेमचन्द, कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008,पृष्ठ संख्या:49

11. वही, पृष्ठ संख्या : 49

12. सत्यकाम, आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994, पृष्ठ संख्या : 40

13. मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 24

14. वही, पृष्ठ संख्या : 24

15. सत्यकाम, आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994, पृष्ठ संख्या : 59

16. वही, पृष्ठ संख्या : 45

17. मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 92

18. कुमार सुवास, गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या : 29

19. मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 87

20. सिंह डॉ. अजब, यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,

प्रथम संस्करण, 1998, पृष्ठ संख्या : 25

21. सं.- डॉ. त्रिभुवन सिंह, डॉ. विजय बहादुर सिंह , साहित्यिक निबंध, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या : 31

22. मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 51

23. कुमार सुवास, गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या : 19

24. प्रेमचन्द, कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008,पृष्ठ संख्या:50

25. सिंह त्रिभुवन, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन प्रा. लिमिटेड, पंचम संस्करण, 2054 वि., पृष्ठ संख्या : 235

26. मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 26

27. वही, पृष्ठ संख्या : 26

28. शुक्ल रामचंद्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1999, पृष्ठ संख्या : 293

29. सिंह त्रिभुवन, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन प्रा. लिमिटेड, पंचम संस्करण, 2054 वि., पृष्ठ संख्या : 68

30. सत्यकाम, आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट

लिमिटेड, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994, पृष्ठ संख्या : 7

31. कुमार सुवास, गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या : 30

32. मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 60

33. सिंह बच्चन, आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संशोधित संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या : 24

34. मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 66

35. सिंह डॉ. अजब, यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1998, पृष्ठ संख्या : 34

36. पाटिल रेखा वसंत, समांतर कहानी में यथार्थबोध, जवाहर पुस्तकालय, उत्तर प्रदेश, 2005, पृष्ठ संख्या : 133

37. जैन प्रेमलता, समाजवादी यथार्थवाद और हिन्दी कथा साहित्य, शब्दसृष्टि, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृष्ठ संख्या : 27

38. कुमार सुवास, गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या : 93

39. उद्धृत मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम

संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या :78

40. मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 80

41. सिंह डॉ. अजब, यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1998, पृष्ठ संख्या : 39

42. सं . धीरेंद्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश भाग–1, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पंचम संस्करण, 2005, पृष्ठ संख्या : 758

43. सिंह त्रिभुवन, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन प्रा. लिमिटेड, वाराणसी, पंचम संस्करण, 2054 वि., पृष्ठ संख्या : 242

44. वही, पृष्ठ संख्या : 242

45. कौर डॉ. कुलदीप, बलदेव वंशी का काव्य : सामाजिक यथार्थ, अनंग प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या : 25

46. प्रेमचन्द, कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008,पृष्ठ संख्या:06

47. द्विवेदी हजारीप्रसाद, निबंधों की दुनिया, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 65

48. सिंह त्रिभुवन, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन प्रा. लिमिटेड, वाराणसी, पंचम संस्करण, 2054 वि., पृष्ठ संख्या : 102

49. फास्ट हार्वर्ड, अनु.-विजय सुषमा, साहित्य और यथार्थ, अरूणोदय प्रकाशन,

दिल्ली, 1993, पृष्ठ संख्या : 02

50. प्रभात खबर (दैनिक समाचार पत्र), सिलीगुड़ी से प्रकाशित, 20 मई 2012 (रविवार अंक), पृष्ठ संख्या : 02

51. सिंह नामवर, इतिहास और आलोचना, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति, 2006, पृष्ठ संख्या : 28

52. फास्ट हार्वर्ड, अनु. विजय सुषमा, साहित्य और यथार्थ, अरूणोदय प्रकाशन, दिल्ली, 1993, पृष्ठ संख्या : 06

53. सं. नन्दकिशोर नवल, हिन्दी साहित्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003, पृष्ठ संख्या : 223

54. तिवारी अजय, समकालीन कविता और कुलीनताबाद, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994, पृष्ठ संख्या : 245

55. सं. डॉ. श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, 23वाँ संस्करण, संवत् 2059 वि., पृष्ठ संख्या : 33

56. द्विवेदी हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, दसवीं आवृत्ति, 2003, पृष्ठ संख्या : 172

57. सं. डॉ. श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, 23वाँ संस्करण, संवत 2059 वि., पृष्ठ संख्या : 45

58. सं.-डॉ. त्रिभुवन सिंह, डॉ. विजय बहादुर सिंह, साहित्यिक निबंध,

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या : 03

59. अनुवादक – इंद्रदेवनारायण, श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीरचित कवितावली, गीताप्रेस, गोरखपुर, इकतालीसवाँ संस्करण ,संवत् 2048 ,पृष्ठ संख्या–112

60. मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 188

61. प्रेमचन्द, कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008,पृष्ठ संख्या:15

62. उद्‌धृत मिश्र शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या : 192

63. सं.-सुरेश शर्मा, प्रतिनिधि कविताएँ रघुवीर सहाय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति, 2010 , पृष्ठ संख्या : 71

64. अरूण कमल, मैं वह शंख महाशंख, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या : 42

65. श्रीवास्तव एकांत, अन्न हैं मेरे शब्द, आधार प्रकाशन, हरियाणा, 1994, पृष्ठ संख्या : 66

66. पवन करण, स्त्री मेरे भीतर, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली , प्रथम संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या : 18

अध्याय-2

दुष्यंत कुमार की काव्य-यात्रा

1. आरम्भिक कविताएँ
2. काव्य-संग्रह :

2.1 सूर्य का स्वागत

2.2 आवाजों के घेरे

2.3 जलते हुए वन का वसंत

3. गजल-संग्रह : साये में धूप
4. गीति-नाट्य : एक कंठ विषपायी

सन्दर्भ-सूची

दुष्यंत कुमार नई कविता के विशिष्ट कवि हैं । वे ऐसे कवि हैं जिन्होंने प्रसिद्धि पाने या अपनी पहचान बनाने के लिए न कभी अपनी लेखनी को किसी संकुचित सीमा में आबद्ध किया और न ही अपने लेखकीय उत्तरदायित्व से कभी समझौता किया । इनकी लेखनी में निहित 'जन-प्रतिबद्धता' और 'सामाजिक यथार्थ' इन्हें अपने समकालीनों से अलगाकर विशिष्ट पहचान देती है । इनका पदार्पण हिन्दी साहित्य जगत में ऐसे समय में हुआ, जब अन्य रचनाकार अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'सप्तकों' में स्थान पाने के लिए अपने आप को उस कसौटी के अनुरूप ढाल रहे थें । अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'सप्तकों' में स्थान पाने को आतुर कविगण प्रयोग के नाम पर छद्‌म और बौद्धिकता को आधार बनाकर अनर्गल सर्जना करने में प्रयासरत दिख रहे थें । काव्यगत उथल-पुथल के उस दौर में सहजता के कवि दुष्यंत कुमार व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही दृष्टियों से अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराते हैं । छद्‌म और बौद्धिकता के प्रत्युत्तर में कवि जन-जागरण और जन-उन्मेष की भावना तथा व्यक्तिगत कुंठा के स्थान पर सामाजिक चिंता को लेकर पदार्पण करते हैं । कवि दुष्यंत के कवि कर्म का दायरा विस्तृत है । अपने कवि-कर्म का धर्म बताते हुए वे लिखते हैं –

“ सीमाओं में बँधा नहीं हूँ धरती मेरा देश है
मेरे कवि का धर्म जागरण औ' जन उन्मेष है ।”[1]

दुष्यंत कुमार की कविताओं में जो बेबाकपन, आडम्बरहीनता और

सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति मिलती है, उसे देखकर ऐसा लगता है कि वे कबीर, निराला और नागार्जुन की परम्परा के कवि हैं । अन्याय का प्रतिवाद करने का जो साहस इन पूर्ववर्ती कवियों की लेखनी में रहा है, वही साहस कवि दुष्यंत कुमार की लेखनी में भी दृष्टिगत होता है । आँखों के सामने सामान्यजन के साथ अन्याय होता देख, वे जुबा को खामोश नहीं रख पाते हैं ।

कवि दुष्यंत कुमार ने जीवन को जिस रूप में जाना, अनुभूत किया, उसके यथार्थ को उसी रूप में अपनी कविताओं में व्यक्त किया । उन्होंने न तो परम्परा का सर्वथा त्याग किया और न ही आधुनिकता का अंधानुकरण किया । परम्परा का सार्थक प्रयोग और आधुनिकता के सृजनात्मक पक्ष को महत्व देते हुए कवि निर्भय होकर अपने कवि-कर्म की ओर अग्रसर होते गये । विजयबहादुर सिंह कवि दुष्यंत के बारे में लिखते हैं – ‘‘वे तो उन साहसिक प्रतिभाओं में से थे जो साहित्य की परम्परा के अदृश्य पारावार और अनुभूत जीवन–यथार्थ के अपरिभाषित कुरूक्षेत्र के बीच पहुँच बेखटके खड़ी हो जाया करती है । परम्परा जहाँ सार्थक प्रयोग और आधुनिकता नवोन्मेषी सृजनशीलता में बदल उठती है । कहना तो चाहिए कि वे साहसी नहीं, एक दुस्साहसी प्रतिभा थे ।’’[2] विजयबहादुर सिंह कवि दुष्यंत की निर्भयता की प्रशस्ति करते हैं । दुष्यंत कुमार के रचना संसार में प्रवेश करने पर हम पाते हैं कि लेखनी की निर्भयता ही वह वजह है, जिसके कारण वे अपने पाठकों को वशीभूत कर लेते हैं ।

दुष्यंत कुमार की काव्य-यात्रा को हम इन कोटियों के अंतर्गत रख सकते हैं – (1) आरम्भिक कविताएँ – इसके अंतर्गत वे कविताएँ हैं जो उनके तीनों काव्य-संग्रहों से इतर है और दुष्यंत रचनावली के प्रकाशन पूर्व विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और हस्तलिखित कापियों में मिलती है, (2) काव्य-संग्रह : सूर्य का स्वागत, आवाजों के घेरे और जलते हुए वन का वसंत उनके प्रकाशित काव्य-संग्रह है, (3) गज़ल-संग्रह – साये में धूप दुष्यंत कुमार का एकमात्र गज़ल-संग्रह है, और (4) गीतिनाट्य – दुष्यंत कुमार ने 'एक कंठ विषपायी' नामक एक गीतिनाट्य लिखा है । यह इनका बहुचर्चित मिथकीय गीतिनाट्य है ।

1. आरम्भिक कविताएँ

दुष्यंत कुमार के कवि का उन्मेष किशोरवय में हो गया था । स्कूल के दिनों की कॉपी और रजिस्ट्रर पर लिखी गयी कई अधूरी कविताएँ इसका साक्ष्य हैं । विजयबहादुर सिंह नहटौर काल को कवि दुष्यंत का अंकुरण काल मानते हुए लिखते हैं –''नहटौर को कवि दुष्यंत का अंकुरण काल कहा जा सकता है ।... ऐसा लगता है कि उनका लेखन इससे पूर्व सातवीं-आठवीं कक्षा में ही शुरू हो चुका था ।....कवि ने चूंकि अपनी इन प्रारम्भिक रचनाओं में कोई तिथि अंकित नहीं की है इसीलिए अनुमान के सहारे ही यह कहना पड़ेगा कि वह सातवीं-आठवीं कक्षा के विद्यार्थी रहे होगें ।''[3]

किशोर कवि दुष्यंत कुमार की आरम्भिक कविताएँ प्राय: अधूरी है । सन् 2005 के पूर्व तक ये कविताएँ इधर-उधर बिखरी हुई थी । सन् 2005 में प्रकाशित 'दुष्यंत रचनावली' में सारी आरंभिक अधूरी और पूर्ण कविताओं को एक स्थान पर संग्रहित करने का कार्य 'दुष्यंत रचनावली' के सम्पादक विजय बहादुर सिंह ने किया है । इन आरम्भिक अधूरी कविताओं में जगह-जगह 'विकल' उपनाम का उल्लेख हुआ है । जिससे यह उजागर होता है कि किशोर कवि दुष्यंत ने अपनी काव्य-यात्रा का आरम्भ 'विकल' उपनाम से किया है । उपनाम का प्रयोग उन्होंने अंतिम पंक्ति में न कर बीच में कहीं भी इच्छानुसार कर दिया है । कुछ पंक्तियाँ इस सन्दर्भ में प्रस्तुत हैं –

> '' ढक लेती अपना सुन्दर मुख
> मैं 'विकल' व्यथित होकर ही तब
> गीतों में लिखता अपना दुःख ।''[4]

दुष्यंत कुमार की आरम्भिक कविताएँ ऐसी हैं जिनमें विकलता की प्रवृति प्रचुर मात्रा में दिखलाई देती है । अपने हृदयस्थ प्रवृति को ही आधार बनाकर कवि ने सम्भवत: अपना उपनाम 'विकल' रखा हो । उनकी आरम्भिक कविताएँ अधिकतर प्रेम और सौंदर्य पर केंद्रित है । इन कविताओं में किशोरवय की सरलता, सहजता, विकलता, भोलापन के साथ-साथ सुन्दरता के प्रति सहज आकर्षण भी विद्यमान है । बचपन की विदाई और यौवन के मधुरागमन के इस

संवेदनशील समय में किशोर कवि दुष्यंत कुमार भी प्रेममय दिखाई पड़ते हैं । वे हेमलता त्यागी नामक सहपाठी के रूप-सौंदर्य के आकर्षण में बँध जाते हैं । दुष्यंत कुमार का कवि मन कभी प्रेमिका की विभिन्न मुद्राओं पर आनन्द और उल्लास से भर उठता है तो कभी उसकी निठुरता कवि मन को विषाद और निराशा से भर देती है । उनकी आरंभिक कविताओं में ह्रदयगत भावों के इसी आरोह-अवरोह का मार्मिक वर्णन हुआ है –

‘‘ चिर प्रतीक्षा में तुम्हारी गल गए लोचन हमारे
कूल हूँ ऐसा जगत का
बुझ न पाई प्यास जिसकी
थक गया पी–पी प्रणय–जल
मिट न पाई साध जिसकी ’’[5]

सामाजिक प्रतिष्ठा की वजह से परिवारवाले इस संबंध को नकार देते हैं । उनका विवाह अन्यत्र तय कर दिया जाता है । प्रेम की यह दु:खद परिणति कवि मन को अशांत और उद्वेलित कर देती है । अपनी प्रेमिका से अलगाव की पीड़ा कवि को गहराई तक कचोटती है । परिणामस्वरूप इस समय सृजित कविताओं में निराशा, विह्वलता, व्याकुलता और विकलता की प्रवृति प्रचुर मात्रा में दिखाई पड़ती है । उनकी आरंभिक कविताओं में किशोर प्रेम के विविध भावों का मार्मिक अंकन हुआ है । प्रेम के प्रति समाज की संकुचित दृष्टि पर किशोर

कवि ने तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की है । किशोर कवि की कामना है कि वे सारे सामाजिक नियम जो प्रेम करनेवालों को एक होने से रोकते हैं, टूट जाये । समाज में प्रेम को खुले हृदय से स्वीकारा जाये । छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद की तरह कवि भी ऐसे लोक में जाना चाहते हैं जहाँ प्रेम को सहर्ष स्वीकार कर लिया जाए । उसे जाति और मान-मर्यादा की कसौटी पर जाँचा-परखा न जाये । उदाहरण के लिए उनकी 'कितना निष्ठुर यह जन समाज' शीर्षक कविता को लिया जा सकता है । कवि प्रेम के प्रति सामाजिक नजरिये का गहराई से चिंतन करते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुचँते हैं कि –

'' हा! इस समाज के कारन ही
कितने अबोध जीवन खोते
कितनी कलियाँ और पुष्प नित्य
इस बलिवेदी पर बलि होते
कलिकाओं के सिर पर चढ़ता
उस शुष्क पुष्प का प्रणय-ताज
मैं ऊब्र चुका इस जीवन से
जिसमें पग-पग पर दु:ख मिलें
मेरी तो इच्छा है प्रिये आओ
हम तुम कहीं दूर चलें

स्वप्नों का हो रंगीन देश

हो अस्त-व्यस्त दुर्बल रिवाज !'[6]

उनकी आरम्भिक कविताओं में बहुत सारी कविताएँ प्रेम पर हैं । 'चाँद–सितारों का वह सुन्दर देश','आ रही मुझको तुम्हारी याद','विकल वेदनाएँ', 'मेरी वो आँखें पथराई', 'मत पूछो कैसे रात कटी है मेरी', 'खिल रही चाँदनी वसुधा पर', 'दूजे को वरदान मिला क्यों', 'प्रिय तुम गेले गीत न गाना', 'अंतर नहीं दिखाया जाता' आदि कविताएँ उनकी प्रेम-भावना से संबंधित है । इन कविताओं में संयोग के सुखद क्षणों की अपेक्षा वियोग की असहनीय पीड़ा अधिक चित्रित हुई है । अपने एक लेख में अनुभा दत्त अधिकारी उनकी आरंभिक कविताओं के संबंध में लिखती है – "उनके इन गीतों (आरंभिक कविताओं) में प्रेम एक प्रधान और अनिवार्य विषय है । बल्कि यह कहना अधिक सच होगा कि उनके ये गीत अधिकतर रोमानी प्रेमगीत ही हैं । इसके अलावा कुछ नहीं । उनकी सारी कोशिश, छटपटाहट, आसक्ति, उमंग, उल्लास, आशा-निराशा, पश्चाताप सबके पीछे उनके किशोर प्रेम की सफलता असफलता काम कर रही है ।"[7]

दुष्यंत कुमार ने अपनी कई प्रेम कविताएँ अपनी पत्नी को केंद्रित करके लिखी है जिनमें प्रवास के दिनों की व्यथा मार्मिक ढ़ंग से अभिव्यक्त हुई है । 'पत्नी के प्रति–1','पत्नी के प्रति–2', 'तुम्हारी याद में पागल प्रवासी लौट आया है' आदि कविताओं में अपनी पत्नी के प्रति कवि की प्रेम-भावना को देखा जा

सकता है । 'दो लाज भरे सुरमई नयन' उनकी आरम्भिक कविताओं में अलग स्थान रखती है । विवाह के दूसरे दिन लिखी गई इस कविता में कवि ने अपनी नवविवाहिता पत्नी के अपूर्व सौंदर्य का मनोहारी चित्रण किया है ।

प्रेम-चित्रों के अलावा दुष्यंत कुमार की आरंभिक कविताओं में युगीन हलचल की गूंज भी सुनाई पड़ती है । युग की पुकार को किशोर कवि अनसुना नहीं कर पाये हैं । प्रेम के भावात्मक संसार में विचरते हुए कवि युगीन यथार्थ को गहराई से पकड़ते हैं और समसामियक जीवन-यथार्थ को चित्रित करते हैं । सन् 1946-48 के आसपास सृजित कविताओं में राजनीतिक यथार्थ का चित्रण हुआ है । राजनीतिक फलक पर यह एक ऐसा समय था जब भारतीयों की स्वाधीनता की माँग को अनसुना कर पाना सत्तासीन अंग्रेजी सरकार के लिए नामुमकिन हो रहा था । बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष, शिक्षक-विद्यार्थी, सामान्यजन, किसान सभी का एक ही ध्येय, एक ही लक्ष्य था – भारत को आजाद कराना । इसके लिए वे तन–मन–धन सबकुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार थें । जिसके परिणामस्वरूप भारत को 15 अगस्त 1947 को आजादी मिली । दुष्यंत कुमार की आरंभिक कविताओं में कतिपय कविताएँ ऐसी हैं जिसमें भारतभूमि की वन्दना की गई है । 'अमर है अभिमान मेरा', 'जागो देश पुकार रहा है' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं । कतिपय आरंभिक कविताओं में आजादी का आन्नदोत्सव चित्रित

हुआ है । कवि आजादी का जश्न मनाने के साथ-साथ भारतीय जनता से एकता और भाईचारा बनाये रखने का अनुरोध करते हैं ।

भारतीय जनमानस पर गाँधीजी के मानवतावादी विचारों का व्यापक प्रभाव था । इस प्रभाव से दुष्यंत कुमार के पिता चौधरी भगवत सहाय भी अछूते न थे । वे एक सच्चे गाँधीवादी थे । कवि दुष्यंत के ऊपर अपने पिता के विचारों का प्रभाव था । वे किशोरवय से ही कुर्ता-पजामा के साथ गाँधी टोपी पहना करते थे । गाँधीजी के प्रति उनमें अगाध आस्था थी । सन् 1948 के समय लिखी गयी अधिकांश कविताओं के केंद्र में गाँधीजी हैं । गाँधीजी की अनायास हत्या से समस्त भारतवासियों के साथ-साथ कवि-हृदय भी शोक-संतप्त हो गया ।'यह बार–बार कह रहा कौन', 'आज युग का पथ–प्रदर्शक खो गया', 'सिंधु ने अपने हृदय में ज्वार लाकर', 'शोकगीत', 'वह भारत का भगवान', 'अब सुमनों की भरमार कहाँ' आदि रचनाओं में कवि गाँधीजी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालते हैं । वे गाँधीजी को 'भारत का भगवान', 'युगावतार', 'मानवता का पथ–प्रदर्शक' आदि विशेषणों से विभूषित करते हैं ।

उनकी कुछ आरंभिक अधूरी कविताओं में लोकतंत्र की हत्या करनेवालों की असंवेदनशीलता को दर्शाया गया है । सम्पन्न वर्ग द्वारा विपन्न वर्ग का आर्थिक, मानसिक और दैहिक शोषण की प्रक्रिया निरंतर जारी है । आरंभिक

अधूरी कविताओं में 'काश मैं भगवान होता' एक महत्त्वपूर्ण कविता है । इस कविता में शोषण प्रक्रिया को बेबाक बेपर्द किया गया है –

" तब न धन के गर्व में यों
सूझती मस्ती किसी को
तब न अस्मत निर्धनों की
सूझती सस्ती किसी को "[८]

स्वतंत्रता पश्चात् लिखी गई अनेकों कविताओं में राजनेता और पूजीपंति वर्ग की छद्‌म, स्वार्थवृति तथा चारित्रिक पतन का दृश्य अंकित किया गया है –

" साफ वस्त्र है पहिने लेकिन अंतर काले–काले हैं
जान-जान अनजान बने ये बनते भोले भाले है ।"[9]

दुष्यंत कुमार की आरंभिक कविताओं को देखकर ऐसा लगता है जैसे किशोर कवि का मन जहाँ एक ओर प्रणय जीवन के उतार-चढ़ाव से आन्दोलित हो रहा था, वहीं दूसरी ओर समाज के वीभत्स यथार्थ का भी निरीक्षण-परीक्षण कर रहा था । इस समय की कविताओं में भावातिरेक देखने को मिलता है । यह भावातिरेक कभी प्रेम जीवन की व्यथा के कारण है तो कभी समाज में रहनेवालों की त्रासदायक पीड़ा को देखकर । भावुक होते हुए भी कवि यथार्थ निरपेक्ष नहीं है । कहने का आशय यही है कि कवि दुष्यंत की कविताओं में

सामाजिक यथार्थ लेखन-कार्य के शुरूआती दौर से ही देखने को मिलता है ।

सामान्य अनुभूतियों को सार्थक और बहुआयामी सन्दर्भ प्रदान करने की कला का परिचय हमें उनकी आरंभिक कविताओं से ही मिल जाता है । होली, दीपावली, नया साल जैसे पर्व और त्यौहारों के माध्यम से कवि ने अपनी कई कविताओं में बड़ी सहजता से बेरोजगारी की त्रासदी, आर्थिक तंगी, पारिवारिक वियोग, सामाजिक विडम्बना को दर्शाया है । सन् 1950–51 के आसपास लिखी गई कविताओं में इसे देखा जा सकता है ।

दुष्यंत कुमार की आरंभिक रचनाओं पर छायावादी भाव एवं भाषा का प्रभाव परिलक्षित होता है । दुष्यंत कुमार कोमल कल्पना के कवि सुमित्रानन्दन पंत को अपना काव्य–गुरू मानते थे । वे स्वयं को एकलव्य और सुमित्रानन्दन पंत को द्रोणाचार्य मानते थे । दुष्यंत कुमार अपने गुरू श्रद्धेय श्री सुमित्रानन्दन पंत के कर–कमलों में अपना प्रथम प्रयास समर्पित करते हैं –

'' कि जिसके पदाचिहों को देख
हुआ है चलने का अभ्यास
उन्हीं के चरणों में सस्नेह
समर्पित मेरा प्रथम प्रयास''[10]

दुष्यंत कुमार के प्रथम संग्रह 'सूर्य का स्वागत' के प्रकाशन के पूर्व की रचनाओं में 'विकल' उपनाम के साथ-साथ 'परदेशी' उपनाम का भी उल्लेख

मिलता है । लगता है कवि की विकलता जब समाप्त हो जाती है तब उनके मन में परदेशी बनकर काव्य-सर्जना करने की इच्छा जागृत होती है । किंतु यह परदेशी कवि अधिक दिनों तक परदेशी बनकर नहीं रह पाता है और वे दुष्यंत कुमार के नाम से काव्य-सर्जना करने लगते हैं ।

आरंभिक कविताओं में कुछेक कविताएँ मुक्त छन्द के प्रणेता महाप्राण निराला और विश्व विख्यात कृति 'रामचरित मानस' के सर्जक गोस्वामी तुलसीदास को संबोधित करके लिखी गई है । मुक्त छन्द का प्रवर्तन कर निराला ने न केवल हिन्दी भाषा को नई अर्थवत्ता दी, आने वाले रचनाकारों के लिए लेखन की नई जमीन भी तैयार कर दीं । दुष्यंत निराला के इस महत्वपूर्ण योगदान को स्मृत करते हैं । वे कवि निराला को 'नववधू हिन्दी की माँग की लाली', 'भाषा का नाज', 'हिन्दी का प्राण' संबोधित करते हुए उनके जुझारू व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हैं । इसी तरह वे तुलसीदास को'अमर गायक' ,'मनुज के रुप में देव का अवतार' आदि कई संबोधन देते हुए उन्हें अपना अभिनन्दन स्वीकारने का अनुरोध करते हैं । इन कविताओं को पढ़कर ऐसा लगता है कि दुष्यंत कुमार इन रचनाकारों की जनोन्मुखी भावना एवं चेतना से अत्यंत प्रभावित थे ।

दुष्यंत कुमार की आरंभिक कविताओं में कुछ कविताएँ कवि-कर्म पर लिखी है । रचना कर्म के आरम्भ से ही दुष्यंत कवि कर्म की उपादेयता के प्रति गम्भीर दिखाई पड़ते हैं । 'प्रतिकूल राह', 'अब के कवियों के चाँद' जैसी

कविताओं के द्वारा कवि ने कवि-कर्म की सार्थकता,लेखनीय प्रयोजन और सामाजिक प्रभाव पर विचार करते हुए कला के लिए समर्पित अपने समकालीन कवियों की लेखनी पर प्रतिक्रिया जाहिर की है । कवि दुष्यंत की आरंभिक कविताएँ 'कल्पना', 'सन्मार्ग', 'झंकार' , 'दीदी' ,'अरूण', 'चिनगारी' 'निकष', 'प्रतीक' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही थी । इन कविताओं में विविध भावों का संयोजन मिलता है । कुछेक आरंभिक कविताएँ भले ही अधूरी और काव्य शिल्प की दृष्टि से अपरिपक्व रही हो किंतु कवि के रचनात्मक विकास को समझने में ये कविताएँ सहायक हैं । इन आरम्भिक कविताओं में जो जनचेतना और राजनीतिक दृष्टि दिखाई देती है, वह परवर्ती रचनाओं में प्रौढ़ और गंभीर रूप धारण करती है । सृजन के प्रारम्भिक दौर में कवि ने 'पुकार' नामक एक मासिक पत्रिका का सम्पादन भी किया । इस कार्य में उनके सहयोगी राजकुमार राजपूत और महावीर सिंह थे । 'पुकार' के ज्यादातर अंकों में दुष्यंत कुमार की ये आरम्भिक कविताएँ छपती रहीं । कवि साहित्य और सृजन–प्रक्रिया को लेकर कितने गम्भीर और सजग है, इसका प्रमाण, इनकी आरम्भिक कविताओं से मिल जाता है । 'सूर्य का स्वागत', 'आवाजों के घेरे', 'जलते हुए वन का वसंत' जैसे कविता संग्रहों और 'साये में धूप' जैसी गज़ल संग्रहों से इतर दुष्यंत कुमार ने कुछ लम्बी कविताएँ भी लिखी हैं जो सामाजिक यथार्थ के प्रति उनके तीव्र आग्रह को दर्शाता है । इन कविताओं में सामाजिक कुटिलताओं और विद्रूपताओं के यथार्थ

को परत-दर-परत उघाड़ कर रख दिया गया है । 'परिचित आवाज', 'भूल जाने के लिए ', 'आँधी', 'इष्ट और दाय','मैं ही नहीं हूँ ', 'तीन जख्म:तीन दर्द ', 'सवाल ये है' , 'तुमने देखा', 'काव्य–कथा : चार पत्र: एक प्रसंग', 'अजायबघर में ', 'कुछ', 'अपराध' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं । इनमें से अधिकांश कविताएँ 1960 के बाद की है । 1960 के बाद की कतिपय कविताएँ जैसे 'सत्य के लिए' बंगाल के अकाल पर केंद्रित है, वहीं 'जैसे हिमालय' शीर्षक कविता में 1962 के भारत–चीन युद्ध के औचित्य-अनौचित्य के लेकर विचार किया है । इन कविताओं में कवि की समाज-सम्बद्धता, उनकी निर्भयता और आत्मविश्वास को सहज ही रेखांकित किया जा सकता है ।

समग्रत: यही कहा जा सकता है कि उनकी कुछ कविताएँ संग्रहों से इतर होकर भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । भले ही आरम्भिक कविताओं में वैचारिक गहराई नहीं हो, पर परवर्ती असंकलित कविताओं में विचारों की गहनता और जन–समर्पित रचनाकार की चिंता सर्वत्र दृष्टिगत होती है ।

2. काव्य-संग्रह

दुष्यंत कुमार के कुल तीन काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं । पहला काव्य संग्रह 'सूर्य का स्वागत' का प्रकाशन सन् 1957 में हुआ । द्वितीय काव्य संग्रह 'आवाजों के घेरे' का सन् 1963 में और तृतीय काव्य संग्रह 'जलते हुए वन

का वसंत' का सन् 1973 में प्रकाशन हुआ । दुष्यंत कुमार अपनी कृति 'साये में धूप' के लिए विशेष प्रसिद्ध है । कांतिकुमार जलते हुए वन का वसंत की महत्ता बताते हुए लिखते हैं –" 'जलते हुए वन का वसंत' दुष्यंत का सर्वाधिक महत्तवपूर्ण काव्य-संग्रह है । दुष्यंत को प्रसिद्धि और ऐतिहासिक महत्ता 'साये में धूप'–से मिली किंतु 'साये में धूप' 'जलते हुए वन का वसंत' का अनुगायन मात्र है ।"[11] कहने का आशय यह है कि 'साये में धूप' ने उन्हें प्रसिद्धि की जिस ऊँचाई पर पहुँचाया, उसकी सीढ़ी उनकी आरंभिक असंकलित रचनाएँ और ये तीनों काव्य संग्रह है ।

2.1 सूर्य का स्वागत

'सूर्य का स्वागत' कवि दुष्यंत कुमार का पहला काव्य–संकलन है । इसमें कुल 48 कविताएँ संग्रहित हैं, जो जीवन-संघर्ष के विविध भावों को रूपायित करती है । इसमें कहीं आस्था और अनास्था का तो कहीं जय और पराजय का द्वन्द दिखाई पड़ता है । कवि पराजित होते हैं, निराश भी होते हैं, किंतु टूटते नहीं है । उनका जुझारू व्यक्तित्व उन्हें परिस्थितियों के सामने घुटने टेकने नहीं देता । जीवन की भयावहता को देखकर कवि का विश्वास डगमगता जरूर है, पर क्षण भर के लिए । आस्था टूटती तो है, पर अनास्था में परिवर्तित नहीं होती । वास्तव में कवि दुष्यंत का यह प्रथम काव्य-संग्रह उनके अपराजेय व्यक्तित्व का साक्षात्कार

है । कवि कहते भी हैं –

‘‘ कुछ हो अब,तय है –
मुझको आशंकाओं पर काबू पाना है,
पत्थरों के सीने में
प्रतिध्वनि जगाते हुए
परिचित उन राहों में एकबार
विजय–गीत गाते हुए जाना है...
जिनमें मैं हार चुका हूँ ।’’[12]

उनके इस संग्रह की महत्ता को रूपायित करते हुए धनंजय वर्मा लिखते हैं – ‘‘ दुष्यंत के ‘सूर्य का स्वागत’ का स्वागत उस समय हुआ भी उसी गर्म जोशी से था और बहुत कम कवि समकालीन परिदृश्य में हैं जिनको अपने पहले ही काव्य-संग्रह से इतनी ख्याति और प्रतिष्ठा मिली हो ।’’[13] वे इस संग्रह में निहित उस खास विशेषता की ओर ध्यान ले जाते हैं, जिसकी वजह से दुष्यंत कुमार सप्तकीय परम्परा से पृथक होकर भी अपने पाठकों के हृदय में स्थायी जगह बनाते हैं । वे लिखते हैं – ‘‘नई कविता के कँटीले तारों से घिरे क्षेत्र में पाठकों के प्रवेश–निषेध की तख्ती हटाकर उसने अपने आत्मीय-अनात्मीय संवेदनों और अनुभूतियों के जगत में सबके निर्बाध प्रवेश का आमंत्रण दिया और स्वागत किया है ।’’[14]

दुष्यंत सहज और सरल कवि है । उनकी यही सहजता और सरलता नयी कविता की बौद्धिकता को चुनौती देती है । वे अपनी अनुभूति को इस आत्मीयता और ईमानदारी से अभिव्यक्त करते हैं कि वे महज 'शब्द' नहीं रह जाते, वह पाठकों की संवेदना से जुड़ जाती है । इस संग्रह की कुछ कविताओं में कवि अपनी सृजन-प्रक्रिया को रूपायित करते हैं । कवि के पास जो शब्द है, वह दर्द से निष्पन्न और भावों से आप्लावित है, वह खोटे नहीं है, बल्कि जीवन की कसौटी पर कसकर निकले हुए बिल्कुल खरे शब्द हैं, इनमें झूठी बौद्धिकता और घड़ियाली आँसू वाली संवेदनशीलता नहीं दिखाई पड़ती । इन शब्दों में ताकत हैं, जूझने की, संघर्ष करने की । ये शब्द जीवन-सत्य से परिपूर्ण है । कवि लिखते हैं–

" मेरे शब्दों ने हार जाना
क्योंकि भावना इनकी माँ है
इन्होंने बकरी का दूध नहीं पिया
ये दिल के उस कोने में जन्मे हैं
जहाँ सिवाय दर्द के और कोई नहीं रहा ।"[15]

दुष्यंत कुमार नई कविता दौर के रचनाकार है । नई कविता निराशा, कुंठा और अनास्था की कविता मानी जाती है । पर दुष्यंत कुमार की कविता अपने युग की नयी व्याख्या प्रस्तुत करती है । उनकी कविताओं में आस्था, अनास्था का दमन करती हुई दिखाई पड़ती है, वहीं पराजय बोध जय प्राप्ति की ओर अग्रसर

करती है । वे विपरीत परिस्थिति में घुटने टेकने वाले कवि नहीं हैं । यही वजह है कि नई कविता के दौर में वे 'सूर्य का स्वागत' संग्रह के सहारे निराशा के घनघोर अंधकार को चीरते हुए आशा का सूर्योदय लेकर पाठकवर्ग के समक्ष उपस्थित होते हैं । बनय सिंह 'सूर्य का स्वागत' संग्रह को नई कविता की प्रवृतियों के सन्दर्भ में परखते हुए लिखते हैं – ''दुष्यंत कुमार नयी कविता के उस स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं जिसमें पराजय पीड़ा न देकर आगे बढ़ने का सन्देश देती है । दुष्यंत कुमार जैसे कवि की कविताएँ नयी कविता के ऊपर लगे हुए इस आरोप को झुठलाती है कि नयी कविता पराजयवादी कुंठित मनोवृतियों का पुंज है । दुष्यंत के लिए हर पीड़ा प्रेरक बनती है ।''[16]

दुष्यंत कुमार का यह संग्रह प्रकाशन के बाद सप्तकों के मानदंड को चुनौती देने में सफल रहा । इस संग्रह ने साहित्यिक दुनिया को यह दिखा दिया कि प्रतिभा किसी खेमेबाजी की मोहताज नहीं होती । वेणुगोपाल 'सूर्य का स्वागत' संग्रह की जबर्दस्त प्रशंसा करते हुए लिखते हैं – ''मैं याद करता हूँ, 'सूर्य का स्वागत' के प्रकाशन–काल को । छठा दशक ! सप्तकों का प्रायोजित हल्ला । कवि होने और माने जाने की शर्त अज्ञेय द्वारा स्वीकृत होना था और तब दुष्यंत कुमार ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई थी । 'सूर्य का स्वागत' के माध्यम से । क्या जबर्दस्त एण्ट्री थी कि न सूर्य किसी का मोहताज होता है और न उसका स्वागत करनेवाला । हिन्दी कविता के तत्कालीन पाठक-वर्ग ने अविश्वास भरी आँखों से

अपने ठीक सामने देखा कि सप्तकों के बाहर बिना अज्ञेय की परवाह किये,ऐसी कद–काठी की कद्दावर कविता संभव हो रही है, जो नयी कविता के सारे शीत युद्धीय दोषों से मुक्त है ।"[17]

इस संग्रह की कविता 'सूर्य का स्वागत' एक महत्वपूर्ण कविता है । अनास्था के मध्य से उत्पन्न आस्था और निरस्त विश्वास के बीच से उदित विश्वास का प्रतीक सूर्य जब कवि के आँगन में खुरचे हुए काई पर सहजता से चढ़ आता है, तब अँधेरे के आदी कवि अपनी सारी अकर्मण्यता और निराशा को विस्मृत कर उत्साह और प्रसन्नता के साथ सूर्य का स्वागत करने लगते हैं । यह कविता सामाजिक यथार्थ को व्यंजित करती है । काई की अधिकता से काली और सीलन हो चुकी दिवारों के बीच जीवन यापन की प्रक्रिया अत्यंत त्रासदायक है । इस त्रासद स्थिति से मुक्त न होने की पीड़ा और भी त्रासदायक है, किंतु कवि जानते हैं कि स्वार्थपूर्ण सामाजिक व्यवस्था कभी भी उन्हें इस स्थिति से नहीं निकालेगी । ऐसी स्थिति में सूर्य को काई और सीलन भरी दिवार पर चढ़ता देख कवि के भीतर आशा का संचार होता है और कवि उत्साहित होकर उसके स्वागत के लिए दौड़ पड़ते हैं ।

सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ को इस संग्रह की कई कविताओं में उजागर किया गया है । इस संग्रह की एक महत्वपूर्ण कविता है – तीन दोस्त । ये तीन दोस्त हैं – दुष्यंत कुमार, मार्कण्डेय और कमलेश्वर । मानवता का हनन

करनेवाली शक्तियों को धराशयी करनेवाले ये 'त्रयी' हमेशा आम जन की भलाई के लिए समर्पित रहते थें –

"हम हर जगह जहाँ पर मानव रोता है
अत्याचारों का नंगा नर्तन होता है
आस्तीनों को ऊपर कर निज मुट्ठी ताने
बेधड़क चल जाते हैं लड़ने मर जाने
हम जो दरार पड़ चुकी सांस से सीते हैं
हम मानवता के लिए जिन्दगी जीते हैं।"[18]

हमेशा से कवि के लिए मानवीय चेतना सर्वोपरि रही है। इसी वजह से वे मानव मात्र के लिए मर मिटने वालों के साथ सहज ही हृदय से जुड़ जाते हैं। यह कविता कवि की मानवीय चेतना को स्पष्ट करती है। आम आदमी के साथ जुड़कर ही कवि का 'प्राणहीन तन' 'पूर्णत्व' का अहसास प्राप्त करता है, वे अपनी लेखनी की सार्थकता आम आदमी की व्यथा-कथा की अभिव्यक्ति में मानते हैं। वे आम आदमी के साथ हृदयस्थ जुड़ाव रखना चाहते हैं। उनकी 'पर न जाने क्यों', 'मंत्र हूँ' जैसी कविताएँ उनकी इसी आंकाक्षा को अभिव्यक्त करती है। 'समय', 'उबाल', 'सत्य बतलाना' जैसी कतिपय रचनाओं में कवि का आक्रोश चित्रित हुआ है। 'सूर्य का स्वागत' संग्रह की कुछ कविताओं में प्रेम के पूर्व–स्मृतियों के चित्र भी रेखांकित हुए हैं। इन कविताओं में किशोरसुलभ

भावुकता के स्थान पर गम्भीरता है । 'सूचना', 'प्रेरणा के नाम' ,'संतोष' ,'दो पोज', 'वासना का ज्वार' आदि कविताओं में प्रेम और सौंदर्य के कई चित्र खींचे गये हैं ।

दुष्यंत कुमार किसानी संस्कार वाले रचनाकार है । गाँव के साथ वे गहराई से जुड़े हुए थें । गाँव की पतनोन्मुख संस्कृति को देखकर उन्हें ठेस पहुँचती है । गाँव भी अब अंधी आधुनिकता की चपेट में आ गए हैं । गाँव की सहजता, सरलता, आडम्बरहीनता सब आधुनिकता की चाह में लुप्त हो रही हैं । अजबनियों का सहर्ष आतिथ्य जो ग्रामीण जीवन की पहचान हुआ करती, वह पहचान अब लुप्त होती जा रही है । अलगाव के जहर से ग्रामीण परिवेश भी विषाक्त हो चुका है । उनकी कतिपय कविताएँ ग्रामीण परिवेश से लुप्त हो चुकी सहजता, सरलता और आत्मीयता की व्यथा-कथा को मार्मिक ढ़ंग से रूपायित करती है । 'यह क्यों', 'कागज की डोंगियाँ' आदि कविताओं में ग्रामीण परिवेश के शहरी बनने की प्रक्रिया को कवि ने विस्तार से चित्रित किया है ।

इस संग्रह की अनेक रचनाओं में दार्शनिक पुट भी दिखाई पड़ता है । 'मैं और मेरा दु:ख', 'धर्म', 'कैद परिन्दे का बयान','दिग्विजय का अश्व' ऐसी ही कविताएँ हैं । 'इनसे मिलिए' इस संग्रह की एक सहजाकर्षक कविता है । कवि बड़े ही सहज ढ़ंग से अपना नख-शिख वर्णन करते हैं । कवि की यह भावगत सहजता ही उनके कवि व्यक्तित्व की पहचान है । इस संग्रह के बारे में कवि दिनकर का

मानना था कि 'सूर्य का स्वागत' संग्रह एक विशेष प्रकार की ताजगी लेकर पदार्पित हुई । उसकी सुगंध ने प्रयोगवादियों के सड़ांध से बचाने में अहम् भूमिका निभाई -''प्रयोगवादियों की सड़ाँध से बचने के लिए इस गुलाब को सूँघना जरूरी है । ''[19]

कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि दुष्यंत कुमार का यह संग्रह बौद्धिक नीरसता के बीच जीवनगत यथार्थ को लेकर आया । कवि अपने लेखन कर्म को लेकर कितने सजग है, यह इस संग्रह की कविताओं से प्रमाणित हो जाता है । कवि का यह संग्रह उनकी अपराजेय आस्था और जुझारू व्यक्तित्व का प्रतिफलन है ।

2.2 आवाजों के घेरे

अब तक कवि दुष्यंत की कई रचनाएँ 'कल्पना', 'ज्ञानोदय', 'धर्मयुग' आदि पत्रिकाओं में छप चुकी थी और उनके प्रथम काव्य-संग्रह 'सूर्य का स्वागत' का पाठकों और आलोचकों द्वारा गर्मजोशी के साथ स्वागत भी हो चुका था । साहित्यिक जगत में उनके प्रथम काव्य-संकलन की धूम मची हुई थी । वे पाठक वर्ग के लिए एक सुपरिचित चेहरा बन चुके थें । सबसे बड़ी बात यह थी कि सप्तकीय परम्परा से पृथक होने के बावजूद वे अपने समकालीनों के सामानांतर ख्याति प्राप्त कर रह थें । साहित्य-जगत में वे एक महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट कवि के

पद पर विराजमान हो चुके थें । 'आवाजों के घेरे' दुष्यंत कुमार का दूसरा काव्य–संकलन है । इसका प्रकाशन 1963 में हुआ । इस संग्रह में कतिपय प्रकाशित कविताएँ भी संग्रहित हैं । इस संग्रह की कविताओं को पढ़कर ऐसा लगता है कि कवि की जन–प्रतिबद्धता समाज के विरोधी चरित्र को देखकर और अधिक पुख्ता हो चुकी है । आहत मानवता के स्वर को सुनकर कवि के लिए मौन साध लेना असम्भव हो गया है –

" मौन साध लेता कैसे
रखकर मुँह में जुबान
प्रश्न जब सुने
आहत, विह्वल मनुष्यता के
उत्तर में मुझसे चुप रहा नहीं गया ।"[20]

'आवाजों के घेरे' संग्रह की कविताओं को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की सृजनात्मकता निरंतर मुखर होती जा रही है । कवि अपने ही बनाये हुए घेरे का अतिक्रमण कर सारे संसार के साथ खुद को जोड़ते हैं और नि:शब्द अत्याचार सहनेवालों की अंतहीन पीड़ा को शब्दबद्ध करते हैं । यह संग्रह उनके संघर्ष को चरितार्थ करती है । दुष्यंत कुमार का यह संग्रह उनके विद्रोही तेवर का प्रमाण है । इस संग्रह की कविताओं से निराशा का स्वर लुप्त है । कवि ने लिखा भी है –

‘‘ कुंठित शस्त्र भले हों हाथों में
लेकिन लड़ता हुआ मरूँ मैं ।’’[21]

इस संग्रह की कविताएँ कवि के आक्रोश, आत्मविश्वास, छटपटाहट और क्रांति चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान करती है । रोमानी दुनिया से निकलकर यथार्थ की तपती धरती पर पैर रखते ही कवि बापू की तरह ‘करो या मरो’ की स्थिति में आ जाते हैं । ‘दृष्टांत’,‘आग जलती रहे’,‘अच्छा–बुरा’,‘विवेकहीन’, ‘साथियों से’ आदि रचनाओं को देखकर ऐसा लगता है कि कवि अन्याय को प्रश्रय देनेवाली शक्तियों को नेस्तानाबूद करने के लिए पूरी तरह से कृतसंकल्प है । इस संग्रह में कवि की क्रांति–भावना देखते ही बनती है । कवि अन्याय सहनेवालों के प्रति सहानुभूति और आत्मीयता जताते हुए पूछते हैं –

‘‘ कौन सा सुनसान तुमको कोंचता है
कहो, बढ़कर उसे पी लू
या अधर पर शंख-सा रख फूँक दूँ
तुम्हारे विश्वास का जय–घोष
मेरे साहसिक स्वर में मुखर है ’’[22]

‘आवाजों के घेरे’ संग्रह का अवलोकन कर कांतिकुमार लिखते हैं – ‘‘ ‘आवाजों के घेरे’ की कविताओं में दुष्यंत ने अपने ही बनाए हुए घेरे को तोड़ने में सफलता प्राप्त की है । इस संग्रह में घायलों और पीड़ितों की आवाजें देखी जा सकतीं हैं ।

कवि स्थान–स्थान पर अंधकार की हदों को चीरता हुआ दिखाई पड़ता है ।''[23]

इस संग्रह की 'गली से राजपथ तक', 'आत्मकथा' जैसी कविताओं में राजनीतिक विद्रूपता को प्रभावशाली तरीके से चित्रित किया गया है । राजनेताओं की छद्मता और झूठी सहानुभूति से कवि अच्छी तरह परिचित थे । इस संग्रह की कई कविताओं में वे राजनेताओं के दोहरे मुखौटे को उघारते हुए नजर आते हैं । इस संग्रह की 'राह खोजेंगे' ऐसी ही एक रचना है जिसमें कवि कर्णधारों के दोहरे व्यक्तित्व का उद्घाटन करते हैं –

'' अँधेरे व्यक्तित्व को अंधी गुफाओं में
रोशनी का आसरा देकर
बड़ी आयोजना के साथ पहुँचाया
और अपने ही घरों में कैद करके कहा:
'लो तुम्हें आजाद करते हैं ।'[24]

राजनीतिक यथार्थ को कवि ने यहाँ बेबाक रुप में प्रकट किया है । शोषकों की चालाकियों को उघारने में कवि दुष्यंत बेहद पटु है । यह कविता इसका साक्ष्य है ।

गीत को जन्म देने की प्रक्रिया एक दर्दनाक प्रक्रिया है । वैसे भी सृजन प्रक्रिया एक कष्टसाध्य प्रक्रिया होती है । गीत का जन्म एक या दो दिन में नहीं होता । भावनाओं के जख्मी कोख में पड़ी गीत अभिव्यक्ति के लिए छटपटाती

है, घुटती है, लड़ती है, सृजनकार को अभिव्यक्ति के लिए विवश करती है, तब जाकर उसका सृजन होता है । दुष्यंत कुमार की कतिपय संग्रहित कविताएँ गीत की जन्म प्रक्रिया और उसके प्रभावोत्पादकता पर विचार करती है । ‘गीत का जन्म’, ‘विवश चेतना’ ‘आवाजों के घेरे’,‘असमर्थता’ आदि कविताएँ इसके उदाहरण है । ‘गीत का जन्म’ शीर्षक कविता में कवि लिखते है –

‘‘ मेरी भावनाओं की जख्मी कोख में
कोहनियाँ टिकाकर
नन्हें नाखूनों से खरोंचकर
लगातार छोटे–छोटे पाँवों से प्रहार कर
विवश कर दिया था इसने बंध्या अभिव्यक्ति को ।
और मुझे लगता है
अपने जनम के लिए शायद सब गीत
इसी तरह घुटते हैं
इसी तरह लड़ते है ’’[25]

इस संग्रह की कुछ कविताएँ में दिवंगत बापू को स्मरण किया गया है । ‘गांधीजी के जन्मदिन पर’ ऐसी ही एक रचना है । कवि बापू के पुर्नजन्म की परिकल्पना करते हैं ताकि समाज में फैली हुई अमर्यादा, हिंसा, कराह, विवशता, कातरता, चुप्पी मिटे और रामराज्य की स्थापना हो जाये ।

इस संग्रह की कुछ कविताएँ प्रेम की पीड़ा को व्यंजित करती हैं। अपने घर–परिवार से दूर होकर कवि को एकाकीपन का एहसास पीड़ा से भर देता है। 'सूना घर' कविता में इसी एकाकीपन की पीड़ा को अभिव्यक्ति मिली है। इसी तरह 'अपनी प्रेमिका से', 'छत पर:एक अनुभूति','दो मुक्तक','घूमने अकेले','अबोध शाप' आदि कविताओं में प्रेम की वियोगजन्य स्थिति का मार्मिक अंकन हुआ है। छायावादी कवि महाप्राण निराला की सरस्वती वन्दना बहुत चर्चित रही है। निराला की तरह कवि दुष्यंत कुमार भी सरस्वती-वन्दना करते हुई नजर आते हैं। कवि 'सरस्वती–वन्दना' शीर्षक कविता में ज्ञान की देवी माँ सरस्वती से अपने धृष्ट, उद्धत, दुस्साहस-युत आचरण के लिए क्षमा-याचना करते हुए दिखाई देते हैं। इस संग्रह की एक उल्लेखनीय कविता है – 'परम्परा-वियुक्त'। परम्परा के सार्थक मूल्यों को विस्मृत कर नई पीढ़ी किस तरह अकारण दु:ख झेलती है, इसे इस कविता द्वारा समझा जा सकता है। कमलेश्वर दुष्यंत कुमार के अभिन्न मित्र थे। अपने इस अभिन्न मित्र को सम्बोधित करके कवि ने 'एक मित्र के नाम' शीर्षक कविता लिखी है जो इस संग्रह में संग्रहित है। इसी तरह 'गौतम बुद्ध से' कविता में कवि साम्प्रतिक भयावह जीवन यथार्थ के मध्य 'अष्टांगिक मार्ग' और 'निर्वाण' की उपोगिता पर कई प्रश्न उठाते हैं।

अस्तु, कवि का यह संग्रह उनके आशावादी दृष्टिकोण और जुझारू व्यक्तित्वका परिचायक है। कवि युगीन संवेदना को व्यक्त करने में सफल रहे हैं।

वे अन्याय का प्रतिवाद करने के लिए आम नागरिक को जागरूक करते हैं । दुष्यंत कुमार का यह संग्रह विविध विषयों पर आधारित है । विषय चाहे जो भी हो, कवि की वैचारिकता उसमें दिखाई देती है ।

2.3 जलते हुए वन का वसंत

जलते हुए वन का वसंत दुष्यंत कुमार का तीसरा काव्य-संग्रह है । इस संग्रह में कवि का नया तेवर दिखायी पड़ता है । सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में बढ़ती हुई अराजकता और असंतोष को देख कर कवि के मन में व्यवस्था के प्रति गहरा आक्रोश और विद्रोह उत्पन्न होता है । समाज के इस जनविरोधी आचरण के उपचार हेतु कवि अपनी भाषा को नीम के कसैले स्वाद में परिवर्तित कर देते हैं –''एक नीम का स्वाद मेरी भाषा बना / जो सिर्फ तल्खी का नाम है ।''[26] दुष्यंत कुमार का यह पहला काव्य–संग्रह है, जिसमें उन्होंने भूमिका लिखकर पाठक वर्ग के साथ संवाद कायम करने की चेष्टा की है । उनकी यह भूमिका उनके रचना-कर्म की सामाजिक सोद्देश्यता और आम–जन के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को जाहिर करती है – ''ये कविताएँ इसी हद तक मेरी हैं कि मैंने इन्हें लिखा और भोगा है । यदि आपको इनमें पहचाना-सा स्वर, आत्मीय-सी भाषा और अपनी-सी बात नजर आए तो यह मेरी सफलता है । मेरे पास कविताओं के मुखौटे नहीं हैं । अंतर्राष्ट्रीय मुद्राएँ नहीं हैं और अजबनी शब्दों का लिबास नहीं है ।

मैं एक साधारण आदमी हूँ और इतिहास और सामाजिक स्थितियों के सन्दर्भ में, साधारण आदमी की पीड़ा, उत्तेजना, दबाब, अभाव और उसके संबंधों के उलझावों को जीता और व्यक्त करता हूँ।"[27] कविता किस तरह से उनके लिए राजनीतिक, सामाजिक और वैयक्तिक, हर स्तर, हर लड़ाई में सबसे भरोसेमंद हथियार रही है, इस संग्रह की कविताओं से जाना जा सकता है । कवि कविता रूपी हथियार से सामाजिक विषमता, अन्याय, धोखाधड़ी, वैषम्य को दूर करने के लिए पूरी तरह से प्रतिबद्ध है । इस संग्रह की कविताएँ युगीन राजनीतिक परिदृश्य को व्यापक फलक पर चित्रित करती है । इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ राजनीतिक हैं । राजनेताओं से कवि का करीबी रिश्ता रहा है । राजनेताओं के चरित्र की विलक्षणता को रेडियो की नौकरी के दौरान साक्षात्कार लेते हुए कवि ने अच्छी तरह से जाना और परखा था । उनकी शहदमिश्रित वाणी के अन्दर छिपे कड़वेपन से कवि भलीभाँति परिचित हुए थें । इस संग्रह के बारे में विजयबहादुर सिंह लिखते हैं – ‘‘राजधानी भोपाल और प्रदेश शासन की ठीक नाक के नीचे रहने वाले दुष्यंत ने उसी शासन के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द करनी शुरू की जो अप्रत्याशित रूप से क्रूर और हिंसक हो उठा था । जो कविताएँ इन दिनों लिखी जा रहीं थीं, वे बाद में ‘जलते हुए वन का वसंत’ में सन्’73 में संगृहीत होकर हिन्दी पाठकों तक पहुँची ।"[28] आलोचक के कथन से स्पष्ट है कि दुष्यंत के इस संग्रह में उनकी विद्रोही चेतना पराकाष्ठा पर है । इस संग्रह के माध्यम से कवि ने

आजादी के बाद के भारतीय समाज की क्रूर और हिंसक स्थिति की वास्तविकता की पड़ताल करने की चेष्टा की है ।

इस संग्रह की कतिपय कविताओं में कवि का नया रूप दृष्टिगत होता है । कवि चारों ओर की अराजक स्थिति को देखकर गाते-गाते चिल्लाने लगते हैं । गाते–गाते कवि का चिल्लाना वर्तमान व्यवस्था के प्रति उनकी असंतुष्टि को दर्शाता है । वे समाज के कर्णधारों द्वारा समाज को नष्ट करने की प्रक्रिया देखकर स्तब्ध हैं । समाज के तथाकथित रक्षक ही भक्षक बने हुए हैं । इन भक्षक रूपी रक्षकों के प्रति कवि ने कई कविताओं में तीखी प्रतिक्रिया जाहिर की हैं । कवि 'गाते-गाते' शीर्षक कविता में इनके प्रति व्यंगात्मक आभार प्रकट करते हैं–

" तुम्हारा आभारी हूँ रहनुमाओ!
तुम्हारी बदौलत मेरा देश,
यातनाओं से नहीं,
फूलमालाओं से दबकर मरा है ।"[29]

'सुबह : समाचार-पत्र के समय','आत्मालाप' ,'देश–प्रेम' 'जनता', 'तुलना', 'मंत्री की मैना',' एक चुनाव-परिणाम' ,'सवाल', 'युद्ध और युद्ध-विराम के बीच' आदि कविताओं में राजनीतिक सच्चाई तल्खी के साथ प्रकट हुई है । कवि राजनेताओं के दोहरे चरित्र को बेबाकी से उजागर करते हुए दिखते हैं ।

इस संग्रह में कवि ने कई समसामयिक ज्वलंत मुद्दों को उठाया है। बस्तर गोलीकांड पर लिखी गई कविता 'ईश्वर को सूली' इस संग्रह की अतिमहत्तवपूर्ण कविता है। कवि की निर्भयता और सामाजिक चिंता इस कविता में व्यापक रूप में उभरकर सामने आई है। बस्तर के आदिवासी नागरिकों के लिए राजा प्रवीरचन्द भंजदेव भगवान के समान थे। इस भगवान की तत्कालीन सरकार ने नियोजित ढ़ंग से एक गोलीकांड में हत्या करवा दी। सरकार द्वारा कराये गये इस नृशंस गोलीकांड पर इस जनकवि का आक्रोश इतने तीखे रूप में व्यक्त हुआ कि कवि को अपनी सरकारी नौकरी से निकाले जाने का डर भी नहीं रहा। इस कविता के बारे में कांतिकुमार लिखते हैं–" 'ईश्वर को सूली' वह कविता है जिसमें दुष्यंत वैयक्तिक बोध को सूली पर टाँगकर सामाजिक बोध के मसीहा बन जाते हैं।"[30] दुष्यंत कुमार ने इस विषय को केंद्रित करके एक आलेख भी लिखा है जिसका शीर्षक है –'बस्तर: अविश्वास का श्रोत'। इस आलेख में उन्होंने आदिवासियों के भगवान कहाये जाने वाले प्रवीर भंजदेव और राजनीतिक द्वंद्व के कारणों पर विस्तार से चर्चा की है।

'जलते हुए वन का वसंत' संग्रह की कविताओं में सामान्य जन की बेबसी, लाचारी को देखकर कवि हृदय में जो छटपटाहट होती है, उसे देखा जा सकता है। कवि ने भूमिका में ही स्पष्ट कर दिया है कि उनके लिए मनुष्य मात्र की अवमानना असहनीय है। आम आदमी की पीड़ा कवि को भीतर तक पीड़ित

करती है । 'कवि-धर्म' ,'एक सफर पर', 'परिचित आवाज' 'ईश्वर को सूली' 'जनता','तीन जख्म : तीन दर्द' , 'गाते-गाते','मंत्री की मैना' इस संग्रह की ऐसी कविताएँ हैं, जिनमें जीवन यथार्थ को कवि ने तल्खी के साथ प्रस्तुत किया है । 'स्व' की प्रमुखता ने आदमी को सम्पूर्ण रूप से बदल कर रख दिया है । आत्मीय संबंध, लगाव, संवेदना, सहानुभूति जैसे मूल्य धराशायी हो रहे हैं । मूल्यों का विघटन हो रहा है । भौतिकता के पीछे अंधी दौड़ लगाता हुआ मनुष्य मूल्यों को दरकिनार करने के कारण दिगभ्रमित है । इस संग्रह की कतिपय कविताएँ आधुनिकता की चकाचौंध से ग्रसित आधुनिक जीवन शैली, आचार–विचार, रहन–सहन आदि को रेखांकित करती है । 'कहाँ से शुरू करें यात्रा' ,'यात्रानुभूति' 'एक समझौता' 'अस्ति–बोध' आदि इसी तरह की रचनाएँ हैं ।

दुष्यंत कुमार ने लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ अर्थात् मीडिया में व्याप्त भ्रष्टाचार पर भी लेखनी चलाई है । जन सरोकारों को विस्मृत कर मीडिया भी नेताओं की तरह अपना स्वार्थ सिद्ध करने में व्यस्त है । वे वही प्रचारित कर रहे हैं, जो स्वार्थी नेता और पूँजीपति प्रचारित करवा रहे हैं । 'सुबह : समाचार–पत्र के समय', 'देश–प्रेम' जैसी रचनाओं में मीडिया की सच्चाई को उजागर किया गया है । इस संग्रह के बारे में गणेश तुलसीराम अष्टेकर ने लिखा हैं –''यह समूचा खंड एक विशेष तरह की जीवन-दृष्टि की छाप पाठकों के मन-अंत:करण पर अंकित कर जाता है । कुछ विशेष धारणाओं को उपजाता और दृढ़ कर देता है । कुछ

वैचारिक दिशाओं का संकेत कर उन दिशाओं में सोचने के लिए पाठकों को प्रेरित करता है । इस खंड की सबसे बड़ी विशेषता यही कही जा सकती है कि इसकी कविताओं का अवर समाजोन्मुखी चिंतन का है । इसमें यदि कुछ वैयक्तिकता भी है तो वह भी सामाजिकता में पर्यवसनीय ही है ।''[31]

कुल मिलाकर इस संग्रह के बारे में यही कहा जा सकता है कि यह संग्रह कवि दुष्यंत के विद्रोही तेवर और अपराजेय आस्था का परिचायक है । इस संग्रह की कविताओं की प्रेरणा भारत-चीन संघर्ष, नेहरू की मृत्यु के पश्चात् की चुनाव-प्रक्रिया, समाजवाद का धराशयी होना और सत्तासीन सरकार का जनता को झूठा आश्वासन देकर भरमाना आदि है । इन सब ने मिलकर दुष्यंत कुमार के कवि को आक्रोशित कर दिया जिसकी प्रतिक्रिया उनका यह संग्रह है ।

3. ग़ज़ल-संग्रह

ग़ज़लकार के रूप में दुष्यंत कुमार का पदार्पण हिन्दी ग़ज़ल के विकास और समृद्धि के लिए एक युगांतकारी घटना थीं । उनकी मृत्यु अल्पवय में ही हो गयी थीं । लेखन के अल्पकाल में ही 'साये में धूप' जैसी कृति देकर उन्होंने हिन्दी ग़ज़ल साहित्य को नई अर्थवत्ता और पहचान दी । यह उनका एकमात्र ग़ज़ल-संग्रह है । इस संग्रह के द्वारा दुष्यंत हिन्दी ग़ज़ल को सामाजिक यथार्थ से जोड़ते हैं । ग़ज़ल विधा को अपनाने के पीछे उन्होंने तर्क दिया– ''मैं महसूस करता

हूँ किसी भी कवि के लिए कविता में एक शैली से दूसरी शैली की ओर जाना कोई अनहोनी बात नहीं बल्कि एक सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया है । किंतु मेरे लिए बात सिर्फ इतनी नहीं है । सिर्फ पोशाक या शैली बदलने के लिए मैने गजलें नहीं कहीं । उसके कई कारण हैं जिनमें सबसे मुख्य है कि मैंने अपनी तकलीफ को...उस शदद तकलीफ, जिससे सीना फटने लगता है, ज्यादा से ज्यादा सच्चाई और समग्रता के साथ ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिए गज़ल कही है ।''[32]

उर्दू गज़ल की परम्परागत परिपाटी का त्याग करते हुए दुष्यंत कुमार ने गज़ल को इश्क़ और माशूक़ की रंगीन और सीमित दुनिया से उबारकर जीवन यथार्थ की कठोर और व्यापक दुनिया से परिचय करवाया । गज़ल के कथ्य में परिवर्तन कर दुष्यंत ने गज़ल को नई दिशा दी है । उनकी गज़लों के बारे में कमलेश्वर लिखते हैं – ''दुष्यंत कुमार की गज़लों ने एक बड़ी और ऐतिहासिक भूमिका निभाई है, और वह है सांस्कृतिक और इंसानी मूल्यों के एकीकरण और भाषायी सरमाए को साथ लाने की भूमिका । XXX नाजिम हिकमत, पाब्लो नेरूदा की कविताएँ अपने देशों में जो और जितना कर सकीं, उससे कहीं ज्यादा दुष्यंत की गज़लों ने भारतीय लोकतंत्र को बचाने में की है ।''[33] दुष्यंत कुमार ने अपनी गज़लों के द्वारा भारतीय समाज के जनविरोधी सूरत को बदलने की कोशिश की है । अपनी गज़लों का उद्देश्य बताते हुए वे लिखते हैं –

" सिर्फ हंगामा खड़ा करना करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिये ।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए ।"[34]

इसमें कोई शक नहीं कि गज़लकार अपने इस उद्देश्य की पूर्ति में पूरी तरह से सफल हुए हैं । उनकी गज़लें समसामयिक जीवन-सन्दर्भो को अभिव्यक्त करने में पूर्णत: सक्षम हुई हैं । इस संग्रह की प्रथम गज़ल ही सामाजिक यथार्थ को चित्रित करती है । मानवीय शोषण, उत्पीड़न, अभाव, बेबसी को अभिव्यक्त करके दुष्यंत कुमार ने आजादी पश्चात् के 'चिथड़े हुए हिन्दुस्तान' की सच्ची तस्वीर उकेरी है । आपातकाल को लेकर दुष्यंत कुमार ने अपने इस संग्रह में जो कुछ लिखा है, वह अनूठा है । तत्कालीन सरकार की नीतियों की आलोचना करने का जो साहस उस समय दुष्यंत कुमार कर पाए ,वह बड़े–बड़े दिग्गज कवि भी नहीं कर पाये । वे अपनी गज़लों द्वारा बड़ी खूबसूरती से तत्कालीन सरकार की नाकामी को जाहिर कर देते हैं –

" इस कदर पाबन्दी-ए-मजहब कि सदके आपके,
जब से आजादी मिली है मुल्क में रमजान है ।"[35]

इस संग्रह में दुष्यंत कुमार आम आदमी की पीड़ा और संघर्ष को साकार कर देते हैं । लोकतंत्र में आमजन भूख और गरीबी के कारण दम तोड़ने को

बाध्य है । सामान्यजन अपने कीमती वोट के एवज में खून चूसने वाले नेताओं को कुर्सी पर बैठाकर जीवन भर के लिए अभिशप्त हो जाता है । लोकतंत्रीय संविधान की विडंबना को इस संग्रह में गज़लकार ने बखूबी अंकित किया है ।

दुष्यंत कुमार के इस संग्रह में वैविध्य और विद्रोही तेवर दृष्टिगत होता है । सांस्कृतिक विघटन और नैतिक अवमूल्यन के कई चित्र हमें इस संग्रह में मिल जाते हैं । भोगवादी संस्कृति के वर्चस्व से एक ऐसी तहजीब को महत्ता मिलने लगी, जिसने आदमी को नरभक्षी बनाकर रख दिया है –

‘‘ अब नई तहजीब के पेशे-नजर हम,
आदमी को भूनकर खाने लगे हैं ।’’[36]

सरदार मुजावर दुष्यंत कुमार की गज़लों के बारे में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं – ‘‘जहाँ उन्होंने अपनी गज़लों के माध्यम से व्यक्ति एवं समाज की आँखें खोलने का प्रयास किया है, वहाँ उन्होंने समाज की बुराइयों को खत्म करने के लिए क्रांति की बात भी कही है । नि:सन्देह उनकी हर गज़ल हमें एक मशाल की तरह नजर आती है जिसके प्रकाश में चाहे व्यक्ति हो अथवा समाज हो – दोनों ही विकास के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं ।’’[37]

दुष्यंत कुमार अपने गज़ल संग्रह में संसद के पाखंड को जगह-जगह अनावृत्त करते हैं । वह आम आदमी, जो समाज का वृहत्तर और लोकतंत्रीय संविधान का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है, समाज व्यवस्था में हमेशा हाशिये पर रहता

है । उसे लेकर संसद में कई तरह के ताम-झाम किये जाते रहे हैं, पर उनकी स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहती है । उनके इस ग़ज़ल-संग्रह की एक अन्यतम विशेषता इसकी व्यंग्यात्मकता है । ग़ज़लकार ने बड़ी धारदार शैली में दोहरा चरित्र धारणकर अन्याय एवं अत्याचार करने वालों की खबर ली है । युग-सत्य और युग-बोध उनके इस संग्रह में पूरी तरह से परिलक्षित होता है ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि ग़ज़ल लिखकर दुष्यंत कुमार ने हिन्दी पाठकों को उपकृत किया है । उन्होंने ग़ज़ल का जो रूप हमारे सामने रखा, वह अकल्पनीय था । सबसे बढ़कर आपातकालीन तानाशाही की दुष्यंत कुमार ने जिस बैखोफ और बेबाक तरीके से आलोचना की है, वह अतुलनीय है । दुष्यंत कुमार ने ग़ज़ल को समसामयिक सन्दर्भों से संयुक्त कर उसे नई अर्थवत्ता प्रदान की है । उनकी ग़ज़लों में इतना जबर्दस्त आकर्षण है कि नेता, विद्यार्थी, फिल्म लेखक सभी उनके शे'रों को अपनी बात में शामिल करते हैं । उनकी ग़ज़लें क्रांति का स्वर मुखरित करती है । दिशाहारा को दिशा दिखाती है और भटकों को सही रास्ते पर लाती है । दुष्यंत कुमार ने अपने सृजन के बारे में ठीक ही लिखा है–

> ‘‘ मेरे गीत तुम्हारे पास सहारा पाने आएँगे ,
> मेरे बाद तुम्हें ये मेरी याद दिलाने आएँगे ।’’[38]

4. गीति नाट्य

'एक कंठ विषपायी' दुष्यंत कुमार का एकमात्र गीति-नाट्य है । यह गीति-नाट्य शिव और सती के प्रेम तथा सती-दाह के पौराणिक प्रसंग पर आधारित है । दुष्यंत कुमार ने इस पौराणिक गीति-नाट्य को समकालीन सच्चाईयों से सम्बद्ध करके इसे व्यापक आयाम प्रदान किया है । इस गीति-नाट्य के बारे में दुष्यंत कुमार ने देवीदास शर्मा को एक पत्र लिखा था जिसमें वे इस नाटक के कथ्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं – '' 'एक कंठ विषपायी' पौराणिक आख्यान पर आधारित होते हुए भी अपनी एप्रोच में आधुनिक है । उसमें कई प्रश्न एक साथ उठाये गये हैं । आधुनिक प्रजातांत्रिक पद्धति की शिथिलता...शासन या सत्ता की व्यक्तिगत सनक या लिप्सा के कारण युद्ध...युद्ध का औचित्य और उससे घुटता–टूटता हुआ सामान्य आदमी जिसका प्रतीक सर्वहत है लेकिन उसकी मूल संवेदना यह है कि परम्परा से जुड़ा हुआ व्यक्ति या समाज...उस परम्परा के टूटने को या जोड़े जाने को सहज स्वीकार नहीं करता, वह या तो विक्षुब्द और कुपित हो उठता है या स्वयं टूटता है XXX किंतु जो महान व्यक्तित्व होते हैं वे परम्परा से कटकर नये मूल्यों को अंगीकार कर लेते हैं । शंकर ने जिस प्रकार थोड़े ही समय में नयी स्थितियों को स्वीकार किया ... इसलिए उन्हें एक कंठ विषपायी कहा गया है ।''[39] दुष्यंत कुमार की मान्यता है कि परम्परा के जर्जर और अनुपयोगी होने के उपरांत उसको त्यागकर नये मूल्यों को सहर्ष स्वीकार कर लेने में ही व्यक्ति और

समाज की भलाई है । यह सत्य है कि परिवर्तन को स्वीकार करना किसी के लिए भी सहज नहीं होता किंतु परिवर्तन जड़ता को समाप्त करने के लिए अनिवार्य होता है । परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है । सभ्यता और संस्कृति का विकास परिवर्तन से ही होता है । इस काव्य-नाटक में परम्परावादी मानसिकता और आधुनिक मानसिकता के अंतर्विरोध को दुष्यंत कुमार ने बखूबी उकेरा है ।

यह नाटक आधुनिक जीवन की विडंबनाओं को चित्रित करने में पूर्ण समर्थ है । इस नाटक में आधुनिक प्रजातंत्र की विसंगतियों पर करारा प्रहार किया गया है । सर्वहत जैसे काल्पनिक पात्र की उद्भावना कर दुष्यंत कुमार ने आमजन के साथ अपने आंतरिक जुड़ाव को जाहिर किया है । सर्वहत इस काव्य-नाटक का महत्त्वपूर्ण पात्र है । उसके बारे में प्रेमशंकर ने लिखा है –‘‘एक कंठ विषपायी का राजनीतिक एहसास तीखा है और अपने सामयिक सन्दर्भो से उपज कर भी आगे बात कहता है । प्रजातंत्र से जुड़े हुए कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दे और कई जलते हुए सवाल यहाँ आए हैं और इसके लिए दुष्यंत ने सर्वहत जैसे सामान्य जन के पात्र को चुना है, सर्वहारा का समीपी । इसीलिए सर्वहत लगभग हर दृश्य में मौजूद है । पहले दृश्य में वह पक्षी को मुक्त करता है, दूसरे में वह छाया हुआ है, तीसरे में उसे मोहबद्ध शंकर के सामने गुंजाइश नहीं मिलती और चौथे दृश्य में वह देवलोक के नेताओं पर तीखे व्यंग्य करता है ।’’[40]

यह काव्य-नाटक बहुआयामी है । राजतंत्र, लोकतंत्र, शोषण, भूख,

महत्त्वकांक्षा आदि कई सन्दर्भो में इस काव्य-नाटक को दर्शाया गया है । इस नाटक की एक अन्यतम विशेषता इसमें व्यक्त युद्ध संबंधी विचार है । रचनाकार ने युद्ध के औचित्य-अनौचित्य पर काफी गम्भीर विवेचन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला हैं कि युद्ध के पीछे हमेशा एक ठोस और विवेकसम्म्त दृष्टिकोण होना चाहिये वरना युद्ध 'आत्मरक्षा' न होकर 'सामूहिक आत्मघात' हो जाएगा । 'प्राणों की आहुति' केवल 'जीवनरक्षा' की उपलब्धि के लिए ही देना चाहिए

''युद्ध –
अधिक से अधिक विशिष्ट परिस्थितियों में
समाधान का सम्भव कारण बन सकता है,
यही नियम है
–लेकिन कोई शासक मन में
स्वयं युद्ध को ,
किसी समस्या का किंचित भी
समाधान समझे तो भ्रम है ।''[41]

इस नाटक की पृष्ठभूमि भारत-चीन युद्ध है । कवि युद्ध की भयंकर विनाशलीला के साक्ष्य रहें । इसीलिए वे मानवता का हनन करनेवाली स्थितियों के विपक्ष में हमेशा खड़े रहें । नाटककार ने इस नाटक में नस्लवादी सोच और संस्कार पर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की है । दक्ष की नस्लवादी सोच पुत्री की भलाई और

आन्नद को दरकिनार कर अपने झूठे अभिमान में विनाश की स्थिति पैदा कर देती है । प्रतिहिंसा की भावना के कारण सती और दक्ष साम्राज्य का विनाश हो जाता है । समग्रत: दुष्यंत कुमार का यह नाटक अपने साम्प्रतिक यथार्थ को उजागर करने में सफल हुआ है । अपने समय के कई ज्वलंत प्रश्नों को उठाकर दुष्यंत कुमार ने इस गीति नाट्य को सार्थक बना दिया है । यह नाटक उनके सामाजिक सम्पृक्ति का प्रामाणिक दस्तावेज है ।

दुष्यंत कुमार एक कवि के साथ–साथ एक विशिष्ट गद्य लेखक भी थे । कविताओं के अलावा उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानी, संस्मरण-व्यक्तिचित्र, साक्षात्कार, रूपक, निबंध, आलोचना–रिव्यू, समसामयिक विषयों पर टिप्पणियाँ और वैचारिक लेख भी लिखे हैं । छोटे सवाल' और 'आँगन में एक वृक्ष' उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं । दुष्यंत कुमार ने कुछ अधूरे उपन्यास भी लिखे हैं जिनमें 'अन्ना केरेनिना' और 'एक अधूरी कवि-कथा' प्रमुख है । आघात','कलियुग' ,'मिस पीटर', 'छिमिया','मड़वा उर्फ माड़े ','हाथी का प्रतिशोध' और 'वह मुसाफिर', उनकी कुल सात कहानियाँ है । उनके सभी उपन्यास और कहानियाँ दुष्यंत रचनावली के तीसरे भाग में संग्रहित है । कहानी और उपन्यास के अतिरिक्त दुष्यंत कुमार ने दुष्यंत रचनावली के चौथे भाग में इनके संस्मरण–व्यक्तिचित्र, साक्षात्कार, रूपक, निबंध, आलोचना-रिव्यू, समसामयिक विषयों पर टिप्पणियाँ और वैचारिक लेख संग्रहित किये गये हैं । उनके द्वारा लिखा गया आलोचना-रिव्यू 'हिन्दी कविता

में प्रयोग' ,'नई कविता की उपलब्धियाँ', 'नई कहानी : परम्परा और प्रगति' और 'नई कविता' नयी कविता और नयी कहानी आन्दोलन की पृष्ठभूमि को समझने में सहायक है । ये आलोचना-रिव्यू कवि के समय में अत्यंत चर्चित थे । इनमें लेखक की गंभीर वैचारिक आलोचनात्मक दृष्टि दिखाई पड़ती है । दुष्यंत कुमार की आलोचना–रिव्यू –'नई कहानी : परम्परा और प्रगति' नई कहानी पर लिखा गया पहला दस्तावेजी आलेख है, जो 'आलोचना' पत्रिका में छपा था ।

समग्र अध्ययन के उपरांत यही कहा जा सकता है कि नई कविता के दौर के रचनाकारों में दुष्यंत कुमार ने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनायी है । उनकी रचनाएँ अपने समय को बड़ी बारीकी से पकड़ती हैं, उनपर गम्भीरता से विचार करती हैं । दुष्यंत अपने रचना-कर्म और सामान्यजन के प्रति कितने सच्चे, सजग और संवेदनशील है, इसका प्रमाण उनकी रचनाओं से मिल जाता है । कवि ने अपने आस–पास की परिस्थितियों का गहराई से अवलोकन कर, उसे शब्दाकार दिया है । उनकी कविताएँ उनके अनुभव की प्रामाणिकता को रेखांकित करती हैं । वैयक्तिक जीवन के आरोह-अवरोह के बीच रहकर भी वे सामाजिक हलचलों से अनभिज्ञ नहीं दिखते । जिस तरह से दुष्यंत कुमार ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जनविरोधी ताकतों से दो-दो हाथ किया, वह उनके लेखकीय निष्ठा को दर्शाता है । अपने समय के ज्वलंत प्रश्नों पर विचार करती हुई उनकी कविताएँ जनता का प्रतिनिधि बन लोकतंत्र के औचित्य पर केवल सवाल ही नहीं करती अपितु उससे

समाधान की माँग भी करती है । उनके समस्त काव्य-संसार पर अगर एक विहंगम दृष्टि डाले तो वहाँ प्रेम-सौंदर्य, स्वातंत्र्योत्तर आशा-निराशा, सामान्यजन का हास-रूदन, आपातकालीन तानाशाही की क्रूरता, मीडिया का दोहरा चरित्र, पूँजीपतियों और राजनीतिज्ञों का शोषण आदि की कई तस्वीरें नजर आती है । इस तरह उनकी कविताएँ यथार्थ के प्रति उनके तीव्र आग्रह का प्रामाणिक दस्तावेज हैं ।

सन्दर्भ-सूची :

01. सं.–विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 385

02. सं.–विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 127

03. सं.–विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग –1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 21

04. वही, पृष्ठ संख्या – 21

05. वही, पृष्ठ संख्या – 118

06. वही, पृष्ठ संख्या – 136

07. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 93

08. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 120

09. वही, पृष्ठ संख्या – 166

10. वही, पृष्ठ संख्या – 32

11. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 100

12. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 334

13. वर्मा धनंजय, एक आवाज : सबसे अलग दुष्यंत की रचनाशीलता, प्रस्तुति प्रकाशन, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या –67

14. वही, पृष्ठ संख्या –15

16. सिंह बनय, दुष्यंत कुमार और नयी कविता : एक अनुशीलन, साहित्यागार, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2000, पृष्ठ संख्या – 42

17. सं.- ज्ञानरंजन, पहल, अंक–86, जबलपुर, पृष्ठ संख्या – 145

18. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007, पृष्ठ संख्या – 378

19. उद्धृत वही, पृष्ठ संख्या –50

20. वही, पृष्ठ संख्या – 463

21. वही, पृष्ठ संख्या – 437

22. वही, पृष्ठ संख्या – 441

23. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 100

24. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग– 1 , किताबघर प्रकाशन , नई दिल्ली , द्वितीय संस्करण, 2007 , पृष्ठ संख्या – 454

25. वही, पृष्ठ संख्या – 448

26. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 146

27. वही, पृष्ठ संख्या – 139

28. वही, पृष्ठ संख्या – 08

29. वही, पृष्ठ संख्या –183

30. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 101

31. अष्टेकर गणेश तुलसी, दुष्यंत कुमार : रचनाएँ और रचनाकार, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1989, पृष्ठ संख्या – 68

32. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 237

33. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 120

34. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 272

35. वही, पृष्ठ संख्या – 288

36. वही, पृष्ठ संख्या – 262

37. मुजावर डा0 सरदार, दुष्यंत कुमार की गज़लों का समीक्षात्मक अध्ययन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003, पृष्ठ संख्या – 34

38. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 275

39. वही, पृष्ठ संख्या – 377

40. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 129

41. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 95

अध्याय-3

दुष्यंत कुमार की कविता में सामाजिक यथार्थ

1. आजादी और आमजन
2. लोकतंत्र
3. नेतागण और आश्वासनों का ढोंग
4. पूँजीवादी समाजवाद और शोषण
5. किसान और उसकी त्रासदायक स्थिति
6. महँगाई का जहर और आमजन
7. बेरोजगारी की भयावहता
8. नारी जीवन की त्रासदी
9. मूल्यों के क्षरण से उत्पन्न नई तहजीब

सन्दर्भ-सूची

राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विसंगति–विडम्बना से त्रस्त जनता ने हमेशा से समाज-चेता कवियों को आन्दोलित किया हैं । प्रत्येक सामाजिक चेतनासम्पन्न कवि इस बात के लिए सजग और चिंतित दिखलाई पड़ते हैं कि जिस परिवेश में वे रह रहे हैं, साँस ले रहे हैं, वह विषमता और विसंगतियों से पूरी तरह मुक्त रहें । समाज का प्रत्येक वर्ग अपनी मूलभूत जरूरतों से सम्पन्न होकर, सुख और आनन्द का पूर्ण उपभोग करें । उसका जीवन निरंतर उन्नयन के मार्ग पर अग्रसर हो और जीवन से संघर्ष की विषम, कटुदायक स्थिति का नामोनिशान मिट जाए , किंतु हमारी सामाजिक संरचना की निर्मिति हमेशा से विशिष्ट जन के पक्ष और आम जन के विपक्ष में रही है । जब से समाज की परिकल्पना सामने आई, तब से समाज का वर्गो में विभाजन भी सामने आया । एक वर्ग अर्थ और ताकत के बल पर शासक बन बैठा और दूसरा वर्ग अर्थाभाव और निर्बलता के कारण शोषित होता रहा । राजतंत्र में शासक ही सर्वोपरि रहा । वहाँ जनता का उपयोग केवल राजतंत्र की रक्षा और शासन-विस्तार के लिए आहुति देने में किया गया । लोकतंत्र में ‘लोक’ को महत्त्वपूर्ण पद पर रखा गया, बावजूद इसके लोकतांत्रिक मूल्यों को दरकिनार करते हुए जन-शोषण की प्रक्रिया अविरल गति से जारी रही । ‘लोकतंत्र’ ‘शोषणतंत्र’ के पर्याय के रूप में व्यवहृत होने लगा । जिस विसंगति, विषमता और विडंबना से जनता को बचाने की बात की गई, वह लोकतांत्रिक व्यवस्था में और भयावह रूप धारण करने लगी । ऐसा

लगने लगा जैसे इंसान रूप में वह नारकीय जीवन जीने के लिए चिरकाल से अभिशप्त हैं । जनता को ऐसी त्रासदायक स्थिति में देखकर कई जन कवि विक्षुब्ध हुए । उन्होंने समाज की शोषणमूलक व्यवस्था को उद्घाटित कर, जनता को उनके मूलभूत अधिकारों का उपभोग करने हेतु जागरूक करने का जिम्मा उठाया । नई कविता के कवि दुष्यंत कुमार ऐसे ही कवि हैं । स्वातंत्र्योत्तर परिवेश से उपजी विसंगति और विद्रूपता से त्रस्त समाज के यथार्थ को दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में बेबाक तरीके से स्पष्ट किया है । दुष्यंत कुमार जैसे संवेदनशील, जागरूक और मानवीय सरोकार के कवि के लिए सामाजिक–यथार्थ का सांगोपांग विवेचन, उनकी रचनाधर्मिता का अनिवार्य तत्व है ।

सृजन–कर्म के प्रारंभिक दौर से ही वे रचना-कर्म की सामाजिक उपादेयता और सत्य–प्रकाशन के प्रति बेहद गंभीर और सचेष्ट रहे हैं । नई कविता के उस दौर में जब अधिकांश कवि सृजन-कार्य को अपनी कुंठित मनोवृत्ति का सहज–सुलभ जरिया मानकर सृजन कार्य करने में तल्लीन थे, तब कवि दुष्यंत अपनी लेखनी के द्वारा 'तृषावंत जग' और 'तृषावंत मानव-जीवन' को अपनी 'मधु वीणा' से 'शांति सुधा-रस' पिलाकर आनन्द प्रदान करने और पीड़ित जग को कष्ट से मुक्ति दिलाने के लिए प्रतिबद्ध दिखते हैं । सृजन के आरंभिक दौर में वे अपने कवि को सृजन–कर्म के प्रति सचेत करते हुए लिखते हैं –

'' कवि तुम ऐसा गान सुना दो

मृदु सपनों का ह्रास न आए
दु:ख की कोई साँस न आए
इस नश्वर जीवन में सुख का
अनिश्वर सागर लहरा दो
टूटा दु:ख का पर्वत जिन पर
अस्त हो गया सुख का दिनकर
उनके घावों को सहलाकर
शापों को वरदान बना दो ''[1]

उपर्युक्त पक्तियाँ इस बात का प्रमाण है कि कवि युगीन परिस्थितियों से भलीभाँति परिचित थे । कवि की दृष्टि आरम्भ से ही सामाजिक शोषण, उत्पीड़न, व्यभिचार, मानवीय संहारक षड्यंत्रों, राजनीतिक कुचक्रों और पूंजीवादी दमन नीतियों के प्रति चौकन्नी रही हैं । कवि जनता की समस्याओं, उनके दु:ख–दर्द को अभिव्यक्त करके खामोश नहीं हो जाते, अपितु अपने रागात्मक लगाव और गहन उत्तरदायित्वबोध का परिचय देते हुए, उन समस्याओं से मुक्ति की छपटाहट भी उनके काव्य-जगत में दिखाई पड़ती है । उनकी आरम्भिक दौर की कुछ रचनायें भले ही अधूरी और अपरिपक्व रही हो, पर उनमें अभिव्यक्त यथार्थ चेतना और चिंतन का महत्त्व अक्षुण्ण है । इन कविताओं में आमजन के प्रति कवि की संवेदनशीलता व्यापक रूप में दृष्टिगत होती है । इसी तरह की कविता है–

'काश मैं भगवान होता' । नहटौर काल में लिखी गई यह कविता अधूरी और अपरिपक्व होकर भी पूँजीपतियों के शोषण चक्र को अनावृत्त करने में सक्षम हुई है । आर्थिक मदांधता में चूर पूँजीपति वर्ग के अमानवीय उत्पीड़न से त्रस्त जनता की पीड़ा इस कविता में साकार हो उठी है । कवि भगवान बनने की कामना करते हैं ताकि अपनी विशिष्ट शक्तियों के बल पर शोषण-चक्र को जड़ से समाप्त कर, पूँजीपतियों और शोषकों को उनके अमानवीय कृत्य के लिए दंडित कर सके । उत्पीड़ित जन के प्रति किशोर कवि की प्रतिबद्धता इस कविता की प्रत्येक पंक्ति में देखी जा सकती है –

> " तब न यों श्रम-स्वेद कण से
> लिप्त मानव काम करता
> तब न हंटर मार देना
> इस तरह आसान होता
> काश मैं भगवान होता
> तब न यों बन दीन मानव
> मार खाता कुद्ध रवि की
> तब न यों धनवान मानव
> आह पाता क्षुब्ध कवि की "[2]

धनवानों के प्रति कवि की क्षुब्धता श्रमशील, विपन्न मानव के प्रति उनके गहन प्रेम की प्रतिक्रिया है । कवि दुष्यंत के आरम्भिक दौर के कृतित्व के बारे में विचार करते हुए विजय बहादुर सिंह लिखते हैं –''इन दिनों लिखी उनकी कुछ अन्य रचनाओं से पता लगता है– जिनमें कुछेक कच्ची कहानियाँ भी हैं और सामाजिक जीवन के विसंगतिपूर्ण यथार्थ की कविताएँ भी– कि कवि एक ओर निजी संवेगों से आकुल-व्याकुल है तो दूसरी ओर लोकजीवन के प्रति अत्यंत सचेत और संवेदनशील । इससे यह अनुमान करना मुश्किल नहीं लगता कि कवि को उन दिनों चल रहे काव्यान्दोलनों और उनसे बहकर आनेवाली हवाओं की सूचना है । किसानों, मजदूरों, राजनेताओं की बदलती चाल-ढाल और रंग पर उन दिनों लिखी कविताओं में उनकी जनपक्षधरता भी स्पष्ट है और सत्तावादी राजनीति के प्रति तीखा आक्रोश और आक्रामक रवैया भी । भले ही इन कविताओं में एक मँजे हुए कवि की उत्कृष्ट अभिव्यंजना न हो, पर यथार्थ को पकड़ने, उसकी विभिन्न गतियों और भंगिमाओं को महसूस करने की कला तो कवि को आती है ।''[3] आलोचक इस महत्त्वपूर्ण तथ्य का अनावरण करते हैं कि दुष्यंत कुमार एक ऐसे कवि रहे हैं जिनकी कविताएँ आरम्भिक दौर से ही लोकजीवन और जनता के प्रति समर्पित रही है । जिस दौर के ज्यादातर कवियों की आरम्भिक कविताएँ स्वकेंद्रित और कल्पनाशील रही, उसी दौर में कवि दुष्यंत व्यष्टि के समानांतर समष्टि का चित्रण कर रहे थे । सच तो यह है कि निजी जीवन के आरोह-अवरोह से

विचलित होते हुए भी कवि अपने परिवेशगत यथार्थ से कभी मुँह नहीं मोड़ते हैं। वे किसान-मजदूर की अथाह पीड़ा से खुद को सम्पृक्त करते हैं। उनकी कविताओं में उनकी जनपक्षधरता विराट् रूप में दिखाई देती है। सामाजिक यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में विजयबहादुर सिंह इस बात पर विशेष बल देते हैं कि उनकी आरम्भिक कविताएँ भले ही कलात्मकता की कसौटी पर खरा न उतरता हो, किंतु भाव एवं विचार की कसौटी पर वे एक सच्चे जन-प्रतिबद्ध रचनाकार के रूप में खरे उतरते हैं। हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में देखें तो दुष्यंत कुमार के पूर्व के ऐसे कवि जिन्हें हम जनकवि मानते हैं, वे कभी भी भाषा या कलात्मक उत्कर्ष के फेर में नहीं रहे। चाहे वो कबीर हो या नागार्जुन। दुष्यंत कुमार 'जलते हुए वन का वसंत' संग्रह की भूमिका में स्पष्टत: लिखते हैं –''ये कविताएँ इसी हद तक मेरी है कि मैंने इन्हें लिखा और भोगा है। यदि आपको इनमें पहचाना–सा स्वर आत्मीय–सी भाषा और अपनी–सी बात नजर आए तो यह मेरी सफलता है।''[4] इस कथन से जाहिर है कि कवि अपनी कविताओं को सामाजिक सन्दर्भ में अभिव्यक्त करना चाहते हैं। उनके लिए वही रचना सार्थक है, जिसमें जनता को अपनी कहानी नजर आए। उसकी भाषा में अपनी भाषा दिखाई दे। इस तरह उन्होंने अपनी कविताओं में रचनाशीलता को सार्थक करने की चेष्टा की है। अनुभव की प्रामाणिकता उनकी कविताओं में सर्वत्र परिलक्षित होती है।

कवि दुष्यंत कुमार की रचनाओं से गुजरने पर उनके रचना-जगत

में सामाजिक यथार्थ के कई पहलूओं से साक्षात्कार होता है । आजादी पूर्व और पश्चात् की भ्रष्ट और नीतिहीन राजनीति हो, राजनेताओं का दोहरा चरित्र और अवसरवादी प्रवृति हो, संसदीय जनतंत्र की निरर्थकता हो, पूँजीवादी समाजवाद का घिनौना सच हो, किसान–मजदूरों की बेबसी और कीड़ों–सी कुलबुलाती जिन्दगी हो, महानगरीय जीवन की असंवेदनशीलता और उपयोगितावादी दृष्टि हो, पूँजीपति वर्ग की हृदयहीनता और क्रूरता हो, अकाल की भयावह परिणति हो, महँगाई और चोरबाजारी का काला सच हो, सरकारी तंत्र की चालबाजियाँ हो या नारी-उत्पीड़न का यथार्थ, उनकी पैनी, तीक्ष्ण और दूरदर्शी दृष्टि से कुछ भी अप्रत्यक्ष नहीं रहा । 'जहाँ भी अत्याचारों का नंगा नर्तन होता है' दुष्यंत का कवि वहाँ बेधड़क पहुँचकर प्रतिवाद का शंखनाद करने लगता है । वे समाज में किसी भी तरह की असमानता को मानने के लिए तैयार नहीं हैं, जिसका जो हक है, वह उसे मिलना ही चाहिए, वह भी सम्पूर्ण रूप में –

''ये बाग बुजुर्गो ने आँसू औ' श्रम देकर
पाले से रक्षा कर पाला है गम देकर
हर साल कोई इसकी भी फसलें ले खरीद
कोई लकड़ी , कोई पत्तों का हो मुरीद
किस तरह गवारा हो सकता है यह हमको
ये फसल नहीं बिक सकती है निश्चय समझो ''[5]

मानवता की रक्षा के लिए संकल्पित दुष्यंत कुमार का कवि अपने गीत और गज़लों के माध्यम से भारतीय समाज के परिवर्तित यथार्थ को सशक्त रूप से बेपर्द करने का बीड़ा उठाता है और उसमें सफल भी होता है । समाज में व्याप्त असमानताओं और अंतर्विरोधों को कवि ने अपनी सर्जनात्मक प्रक्रिया में अनेक स्तरों पर चित्रित करके अपनी सामाजिक सजगता और प्रतिबद्धता का परिचय दिया है । सामाजिक यथार्थ का जो बहुआयामी रूप उनकी रचनाओं में मौजूद है, वह केवल और केवल कवि की गहन अनुभूति और व्यापक जनोन्मुखी दृष्टि का प्रतिफलन है, किसी विचारधारा के पोषण का नहीं । उन्होंने समाज में घटने वाले क्रिया–व्यापारों का सूक्ष्मावलोकन किया, समाज के प्रत्येक कार्य को संवेदनशीलता के साथ महसूस कर जन–सापेक्ष नजरिये से विश्लेषण किया, फिर वैचारिकता की कसौटी पर कसते हुए, उसे अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया । उनकी कविता में निहित सामाजिक यथार्थ के निम्न पहलू मिलते हैं –

1. आजादी और आमजन

दुष्यंत कुमार की कविताएँ समकालीन राजनीतिक यथार्थ को तीखे तेवर के साथ प्रस्तुत करती है । उनकी प्रसिद्ध कृति 'साये में धूप' स्वातंत्र्योत्तर परिवेश के जनविरोधी यथार्थ को परत–दर–परत उघाड़ती है । इस संग्रह के अधिकांश शे'र आजादी की विडम्बना और त्रासदी की पूरी गाथा व्यक्त कर देते

हैं । भारत देश को विदेशी दासता से मुक्त कराने में लाखों गरीब किसान, मजदूर और निम्न वर्ग की कुर्बानी रही । 15 अगस्त 1947 को जब हमारा देश विदेशी दासता से मुक्त हुआ तो लाखों लोगों ने यह सोचकर चैन की साँस ली कि अब 'अपनों' के राज में उन्हें दुःख, विडम्बना और त्रासदी का शिकार नहीं होना होगा । जिस तरह वे गुलामी की पीड़ा से मुक्त हुए हैं, उसी तरह वे गरीबी और भूख की पीड़ा से भी मुक्त हो जाएँगे । एक सकारात्मक सोच के साथ चारों ओर आजादी का जश्न मनाया गया । परंतु कुछ दिनों बाद जो सच्चाई नजर आई, उससे सामान्यजन को आभास हो गया कि वे अभी भी गुलाम बने हुए हैं । 15 अगस्त 1947 को जो आजादी मिली थी, वह मुक्ति का सच्चा रूप नहीं था । सही अर्थों में यह आजादी अंग्रेजी सत्ता की 'फूट डालो और राज करो' शोषण नीति का भारतीय संस्करण था । भारत की आजादी स्वार्थ, हिंसा, कूटनीति, साम्प्रदायिक भेदभाव, अधिकार–लोलुपता से परिपूर्ण थी । इसमें सामान्यजन की भूमिका मूक दर्शक की तरह रही । कवि आजाद भारत में अपनी स्थिति को देखकर आश्चर्यचकित है –

" हमको पता नहीं था हमें अब पता चला,
इस मुल्क में हमारी हुकूमत नहीं रही । "[6]

आजादी के उपरांत आमजन निश्चिंत था कि अंग्रेजी राज की तबाही उन्हें अब और झेलनी नहीं होगी, परंतु उस आमजन को पीड़ित करने में तथाकथित 'अपनों'

ने कोई कोर कसर नहीं छोड़ी । जिस तबाही से मुक्ति की आशा में आजादी का आनन्दोत्सव मनाया गया, वह तबाही 'अपनों' के राज में सरेआम होने लगी –

" जिस तबाही से बचते थे
वो सरे आम हो रही है अब ।"[7]

14 अगस्त 1947 की आधी रात को जब भारतीय सत्ता का हस्तांतरण हुआ, तब आजाद भारत के प्रथम प्रधानमंत्री ने देशवासियों को सम्बोधित करते हुए कहा –"बहुत वर्ष पहले हमने किस्मत के साथ बाजी लगायी थी । अब वह समय आ गया है । हमें उन सभी प्रतिज्ञाओं को आधे–अधूरे ढंग से नहीं, बल्कि ठोस रूप से पूरे करने हैं । आधी रात को ज्यों ही घड़ी की सुई 12 पर आएगी हमारे जीवन की नयी यात्रा प्रारम्भ होगी । सारा संसार सो रहा है लेकिन इसी घड़ी में भारत एक नया एवं स्वतंत्र जीवन लेकर उदित हुआ है । इतिहास में ऐसा क्षण बहुत कम आता है जब हम पुराने युग से नये युग में प्रवेश करते हैं । जब एक उम्र समाप्त होती है, एक राष्ट्र की सुसुप्त और दमित आत्मा जाग्रत होती है । ऐसे पवित्र ऐतिहासिक क्षण में हम शपथ लेते हैं कि हम सब भारत राष्ट्र, उसके कोटि-कोटि जन और सम्पूर्ण मानवता के लिए पूर्ण समर्पण भाव से कार्य करेंगे ।"[8]

आजादी के उपरांत सबसे ज्यादा प्रताड़ित 'कोटि-कोटि जन' ही हुआ । उसके सपने, उसकी आकांक्षाएँ सब पर व्रजपात हो गया । सामाजिक

यथार्थ के कुशल चितेरे कवि दुष्यंत कुमार जब गुलाम और आजाद भारत की तुलना करते हैं तो पाते हैं कि गुलाम भारत में सामान्यजन ज्यादा सुखी था । आजाद भारत में 'अपनों' ने जो चोट पहुँचाई, सुखद सपनों को जिस निर्ममता से तोड़ दिया, उस पीड़ा और अपमान की तुलना में अंग्रेजो से प्राप्त पीड़ा और अपमान सुखद थी । वे विदेशी थे, भारतीयों से उन्हें लगाव नहीं था, इसीलिए भारतीयों को उन्होंने यातनाएँ दीं, किंतु अपने को भारतवासियों का प्रतिनिधि बताकर सत्ता की कुर्सी पाने के पश्चात् कैसे वे अपने जन के साथ छल कर पाये? कवि सामान्यजन के सन्दर्भ में आजादी की निरर्थकता को व्यंजित करते हैं –

''मूरत सँवारने में बिगड़ती चली गई ,
पहले से हो गया जहाँ और भी खराब ।''[9]

जितने ठोस तरीके से बड़े–बड़े वायदे किए गए, उतने ठोस तरीके से उनका निर्वाह नहीं हुआ । वर्तमान तो दुःखद है ही भविष्य भी अंधकारमय दिखने लगा । कवि को भविष्य क्षत–विक्षत स्थिति में दिखाई देने लगा–

''किसी प्रेम सदृश्य
आज वह भविष्यत
फर्श पर टुकड़ों में बिखरा हुआ है
क्षत–विक्षत ! ''[10]

अंग्रेजो की गुलामी से मुक्त होते ही आजादी की एक नई परिभाषा गढ़ी जाने लगी । इस नई परिभाषा के अनुसार आजादी का अर्थ भूख, बेरोजगारी, महँगाई या शोषण से मुक्ति नहीं थी । विशिष्ट वर्ग ने आजादी का नया अर्थ गढ़ा–भ्रष्टाचार, शोषण, घोटाला, कालाबाजारी, लूट आदि को खुलेआम करने की आजादी । आजादी के इस नये जनविरोधी अर्थ को कवि बदलना चाहते हैं, किंतु 'तफसील' में जाने पर कवि को लगता है कि आजादी का यह नया अर्थ सहज बदलनेवाला नहीं है –

'' तफसील में जाने से ऐसा तो नहीं लगता ,
हालात के नक्शे में अब रद्दोबदल होगी ।''[11]

दुष्यंत कुमार की कविताओं में आजाद भारत की सच्ची तस्वीर मिलती हैं । वह आजाद भारत जिसे कुछ लोगों की स्वार्थपरता ने पूरी तरह से खोखला कर दिया है । कवि का मानना है कि स्वार्थ प्रेरित राजनीति और राजनीतिज्ञों के कारण आजाद भारत का सही विकास नहीं हो सका । वे भारत के नेताओं को 'जहरीला विषधर' संबोधित करते हैं जो अपनी क्षुधापूर्ति के लिए अपने युग को ही काटने पर आमादा है –

''कदम कदम पर सुनता हूँ
बजती खतरे की घंटी
आगत बोल रहा है

प्रगति-पथ की हर सीढ़ी पर
बैठा है जहरीला विषधर
अपना जबड़ा खोल रहा है,
मैं इससे संत्रस्त सजग करता हूँ युग को
ये चाहे 'इजिप्ट में काटे' होता मुझको क्लेश है ''[12]

आजाद भारत में आमजन जीवित रहकर भी मृतप्राय था । अपने जीवन के अभाव और विडंबनाओं से वह कभी भी मुक्त नहीं हो सका । कवि ने लिखा है –

''मैं हूँ जीवित या ये भी कोरा भ्रम है
कोई न बताता सभी मौन रहते हैं
मैं समझ गया दुनिया में मानव की
जो होती जिन्दा मौत, इसे कहते हैं ''[13]

इस तरह कहा जा सकता है कि कवि ने आजाद भारत की उस तस्वीर को हमारे सामने लाया है, जो भयावह और कुरूप होते हुए भी यथार्थोन्मुख है । कवि ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक यथार्थ की गहराई से पड़ताल की हैं । कवि की चेतना के केंद्र में सामान्यजन है, यही वजह है कि वे हर चीज को सामान्यजन के सन्दर्भ में रखकर ही परखते हैं । आजादी की सार्थकता को भी कवि ने सामान्यजन के सन्दर्भ में ही देखा और परखा है । कवि दुष्यंत कुमार की यह एक खास विशिष्टता है ।

2. लोकतंत्र

स्वतंत्रता पश्चात् हमारा अपना संविधान निर्मित हुआ । इस संविधान की सबसे उल्लेखनीय विशेषता थी-इसकी लोकतंत्रीय प्रवृति । देश की आजादी में लोक की भूमिका महत्वपूर्ण रही, इसी भूमिका को ध्यान में रखकर लोकतंत्रीय संविधान की स्थापना की गई । लिखित रूप में भारतीय संविधान में 'लोक' को सबसे ऊँचा स्थान दिया गया किंतु सच्चाई कुछ और दिखी । लोकतंत्रीय संविधान में 'लोक' को केवल 'वोट बैंक' की तरह इस्तेमाल किया गया । 'लोक' को मिलनेवाली सुविधाओं का उपभोग विशेष वर्ग ने किया । खगेंद्र ठाकुर लोकतंत्र में 'लोक' की विडम्बनापूर्ण स्थिति पर आलोकपात करते हुए लिखते हैं –''जनतंत्र की एक अत्यंत प्रचलित परिभाषा अब्राहम लिंकन की, जिसे विश्वव्यापी मान्यता प्राप्त है । वह परिभाषा यह है – जनतंत्र जनता के द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन (सरकार) है । इस परिभाषा के व्यवहारिक रूप में यह हकीकत है कि भारतीय जनतंत्र अब तक जनता के द्वारा तो है, क्योंकि उसी के मताधिकार से सरकारें बनती–बिगड़ती रही हैं, लेकिन यह सरकार या जनतंत्र न जनता के लिए है और न जनता का है । केवल मताधिकार जनतंत्र को जनता का शासन नहीं बनाता ।''[14] यहाँ आलोचक ने भारतीय जनतंत्र की असलियत को ही अनावृत्त नहीं किया है, वरन् जनतंत्र के त्रासदायक व्यवहारिक पक्ष से भी परिचित करवाया है । भारतीय जनतंत्र असल में जनतंत्र के नाम पर शोषणतंत्र को विस्तार देने का

सुरक्षित और कारगर अस्त्र है । दुष्यंत कुमार की कविताओं में लोकतंत्र के इस वीभत्स पहलू पर कई अर्थो में विचार किया गया है । कवि को लगता है कि लोकतंत्र एक छलावा है, जनता को भरमाये रखने का षड्यंत्र हैं । कवि लोक को आगाह करते हुए कहते हैं –

‘‘ ये रोशनी है हकीकत में एक छल लोगों ,
कि जैसे जल में झलकता हुआ महल लोगो ।’’[15]

अगर हक की बात की जाए तो सरेआम जनता को हक मुहैया कराने की बात बार–बार भावात्मक तरीके से की गयी और अंततः उसी जनता को चालाकी से हक से बेदखल कर दिया गया । सामान्यजन को भारतीय लोकतंत्र हाथी के दाँत के समान प्रतीत होता है, खाने के लिए कोई और, दिखाने के लिए कोई और । दुष्यंत कुमार लिखते हैं –

‘‘ दरख्त हैं तो परिन्दे नजर नहीं आते ,
ओ मुस्तहक हैं वही हक से बेदखल लोगो ! ’’[16]

लोकतंत्र में ‘लोक’ के सारे मौलिक हक छीनकर खास वर्ग रात को भी दिन बनाए हुए हैं, वहीं हक से बेदखल सामान्यजन के जीवन से रात–दिन का फर्क मिटता जा रहा है –

‘‘ किसी भी कौम की तारीख के उजाले में ,
तुम्हारे दिन हैं किसी रात की नकल लोगों ।’’[17]

रेडियो की नौकरी के दौरान नेताओं का साक्षात्कार लेते हुए कवि उनके दुहरे व्यक्तित्व, उनकी कुटिलता और छद्मता से परिचित हुए । कवि समझ चुके थे कि सत्तासीनों की व्यक्तिगत लालसाओं के समक्ष जनाधिकार ऐतिहासिक पन्नों में एक ऐतिहासिक दस्तावेज बनकर रह गया हैं । सत्तालोलुप और स्वार्थी नेताओं के लिए लोकतंत्र वह 'झुनझुना' हैं, जिसे बजाकर वे जनता को बहलाने की कोशिश में लगे हुए हैं । सामान्यजन को खाने के लिए अन्न, पहनने के लिए कपड़ा और रहने के लिए घर देने में वे असमर्थ, असहाय हैं पर बार-बार संविधान में लिखित जरूरतों की बात करते हैं, संविधान की दुहाई देते हैं । कवि इस बारे में लिखते हैं –

'' सामान कुछ नहीं फटेहाल है मगर,
झोले में उसके पास कोई संविधान है ।''[18]

लोकतंत्र का उपयोग लोकहित के लिए होना चाहिए था पर हुआ कुर्सीहित के लिए । कुर्सीहित के आगे लोकहित गैरजरूरी हो गया । कुर्सीहित के लिए लोकतंत्र का दुरूपयोग कवि के लिए असहनीय थी । सत्ता में काबिज रहने के लिए लोकतांत्रिक मूल्यों को विस्मृत कर, जनविरोधी कार्यो में संलग्न रहनेवाले नेताओं और पूँजीपतियों के यथार्थ को कवि ने अपनी कविताओं में व्यापक रूप में अनावृत किया है । लोकतांत्रिक मूल्यों को पैरों तले रौंदनेवाली नीतिहीन, मूल्यहीन ताकतों से दुष्यंत कुमार हर कदम पर मुठभेड़ करते हुए दिखाई देते हैं ।

आपातकाल भारतीय लोकतांत्रिक राजनैतिक इतिहास की जनाधिकार को कुचलने वाली एक बहुत बड़ी घटना है । जिस तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी ने गरीबों का हमदर्द बनने का स्वाँग रचा, देश से गरीबी को जड़ सहित उखाड़ फेंकने की बात की, उसी प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी ने आपातकाल की घोषणा कर जनता को उनके संवैधानिक अधिकारों से वंचित कर दिया । आपातकालीन समय में जनता पर कई जुल्म ढाये गये । अपने अधिकारों की माँग करनेवाले हाथ को निष्ठुरतापूर्वक कुचलकर रख दिया गया । व्यवस्था की तानाशाही के विरूद्ध में उठी आवाज को तत्काल खामोश कर दिया गया । लोकतंत्र में सामान्यजन की इस दुरावस्था को देखकर कवि को प्रतीत होता है कि इन असंवेदनशील, स्वार्थी शासकों को अपना मत देकर कुर्सी पर बैठाने की सजा वे आपातकाल के रूप में पा रहे हैं –

“ किससे कहें कि छत की मुँडेरों से गिर पड़े ,
हमने ही खुद पतंग उड़ाई थी शौकिया ।”[19]

लोकतांत्रिक संविधान की विफलता को कवि ने उपर्युक्त पंक्तियों के सहारे बखूबी दर्शाया है । लोकतांत्रिक संविधान जिसकी पहली प्रतिबद्धता लोक की सुरक्षा है, उसी संविधान के माध्यम से आपातकालीन समय में लोक को भयभीत और असुरक्षित किया गया ।

कवि को लगता है कि सत्तासीनों की प्रवृति और प्रकृति ‘साँप’ की

तरह होती है । साँप जिसे हम देवता मानकर दुग्धपान कराते हैं, श्रद्धा और भक्ति के साथ पूजते हैं, वही नाग देवता हमारी श्रद्धा और भक्ति को विस्मृत कर अपने विषैले दाँतों से एक दिन हमें डँस लेते हैं । साँप की ही तरह हमारे उद्धारक, सर्वेसर्वा, ़जिन्हें अपना कीमती वोट देकर हम अपनी प्रतिबद्धता, श्रद्धा और भक्ति का प्रमाण देते हुए, हर्ष के साथ उन्हें देश की बागडोर थमा देते हैं, देशवासियों के समुचित विकास और कल्याण की अहम् जिम्मेदारी सौंपते हैं, वही उद्धारक और सर्वेसर्वा लोकतंत्र की आड़ लेकर अपनी विषैली नीतियों से हमें डँसते हैं, हमारा विनाश करते हैं । 'साँप' शीर्षक कविता के प्रथमांश में कवि नेताओं के चरित्र की इस खूबी को बखूबी दर्शाते हैं –

'' हमने पाले साँप आस्तीनों में
दुध पिलाया
खुले हुए आँगन में छोड़ा
पक्का फर्श उखाड़
बनाया उनके लिए रास्ते
उनको अपना माना
पर ये साँप रहे
उनके दाँतों से विष न गया
हमने तोड़े नहीं

इन्होंने उन्हें प्रयोग किया ''[20]

अपने समय की धड़कन से पूर्णरूपेण परिचित कवि दुष्यंत कुमार के काव्य में लोकतंत्र की विडम्बना बार-बार उभरकर आयी है । आमजन को लोकतंत्रीय संविधान से कोई लाभ तो नहीं मिला पर हानि बहुत हुई । कवि दुष्यंत कुमार लिखते हैं –

'' खड़े हुए थे अलावों की आँच लेने को ,
सब अपनी–अपनी हथेली जलाके बैठ गए ।''[21]

कवि को अनुभव होता है कि लोकतंत्र में आमजन की भागीदारी नगण्य है । आमजन के स्थान पर शासन और सत्ता पर पूँजी का ही वर्चस्व है । इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि जहाँ अमीरों का वर्चस्व होगा, वैसे लोकतंत्र में गरीबों के दुःख–दर्द को कौन और क्यों समझेगा । वैसे भी विलासिता मनुष्य की दृष्टि और चिंतन, दोनों को संकीर्ण बना देती है । आजादी के बाद सत्ता का लाभ कुछ विशिष्ट व्यक्तियों तक सीमित रह गया । प्रत्यक्ष तौर पर लोकरक्षा को अपना साध्य बतानेवाले हमारे उद्धारक स्वरक्षा में ही तल्लीन दिखाई दिए –

'' कहाँ तो शहर सुलगने लगे हैं धू-धू कर,
कहाँ लपट भी तुम्हारे मकान तक न गई ।''[22]

उपर्युक्त शे'र में कवि ने नेताओं की आत्मरक्षा की चालाकी का बहुत सुन्दर तरीके से अनावरण किया है । इस सन्दर्भ में छायावादी कवि महाप्राण निराला की एक

प्रसिद्ध कविता 'राजे ने अपनी रखवाली की' का सहज स्मरण हो आता है । 'राजे ने अपनी रखवाली की' कविता में निराला ने एक राजा की आत्मरक्षा की चालाकी को खूबसूरत ढ़ंग से अनावृत्त किया है । स्वयं को जनता का सच्चा रक्षक घोषित करनेवाला एक राजा बड़ी चालाकी से जनता को भरमाते हुए अपनी आत्मरक्षा के लिए जनता को बलि का बकरा बनाती है । भोली-भाली नतमस्तक जनता राजा के सभी आदेशों को बिना किसी प्रश्न के मानती जाती है । कुछ समय के अंतराल के बाद जनता को राजा की चालाकी का पता चलता है । राजा द्वारा किला का निर्माण करवाना, सुरक्षा के लिए बड़ी–बड़ी फौजें रखना, चापलूस अयोग्य सामंतों को उत्तरदायित्व देना, पोथियों से जनता को बाँधनेवाले ब्राह्मणों को राजमहल में आश्रय देना, कवियों से अपनी वीरता की प्रशस्ति गीत गँवाना, लेखकों से प्रशस्ति लेख लिखवाना, नाटकों के मंचन द्वारा जनता के मध्य शासक के जनविरोधी चरित्र को छिपाना आदि सभी उपक्रम जनता को सच्चाई से दूर रखने का कुटिल प्रयास था । इन सारे तामझाम में जनता की भलाई की चिंता कहीं भी अंतर्निहित नहीं थी । वास्तव में ये सारे उपक्रम राजा द्वारा मात्र अपनी सत्ता और आत्मरक्षा के लिए था । महाप्राण निराला शासक वर्ग के चरित्र की इस खूबी को दर्शाते हुए लिखते हैं –

''जनता पर जादू चला राजे के समाज का ।
लोक–नारियों के लिए रानियाँ आदर्श हुई ।

धर्म का बढ़ावा रहा धोखे से भरा हुआ ।
लोहा बजा धर्म पर, सभ्यता के नाम पर ।
खून की नदी बही ।
आँख–कान मूँदकर जनता ने डुबकियाँ ली ।
आँख खुली – राजे ने अपनी रखवाली की ।''[23]

आजादी के बाद सामान्यजन को जिस नारकीय जीवन और समस्याओं का सामना करना पड़ा, उसे देखकर यही लगता है कि लोकतंत्रीय संविधान भी सत्ता वर्ग की चालाकी है ताकि जनता सत्य से दूर रहकर सत्ता वर्ग के हितचिंतक होने का भ्रम पालती रहे । 'लोकतंत्र की अवधारणा और आज का सच' लेख में आलोचक कृष्ण किशोर इसी गम्भीर सच पर विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं – ''नागरिक स्वतंत्रता (Civil Liberties) हमारे संविधान में भरपूर है, लेकिन व्यवहारिक रूप में नागरिकों के किसी अधिकार की रक्षा नहीं की जाती । आम नागरिक और शक्तिशाली नागरिकों के जीवन का अंतर यही है । सरकार का व्यवहारिक स्वरूप (Functioning of Govt.) सबसे अधिक दोषी है । भ्रष्टाचार वहीं से शुरू होता है । शक्ति का सारा दुरूपयोग वहीं से शुरू होता है । संवैधानिक सत्ता-केंद्र वहीं से उपजते हैं । जिनके लिए नीतियाँ बनती हैं, वही लोग वंचित रह जाते हैं ।''[24]

खगेंद्र ठाकुर जनतंत्र के स्वरूप पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हुए जनतंत्र में 'जन' की स्थिति को रेखांकित करते हुए लिखते हैं –''संसदीय जनतंत्र

को लागू करते समय शुरू में जनतांत्रिक विचारकों ने सोचा था कि बालिग मताधिकार के जरिए धरातल पर पड़े हुए लोग भी ऊपर उठकर सत्ता में भागीदारी करेंगे । इस प्रकार सत्ता और शासन में आम जन गण की भागीदारी होगी । लेकिन लगभग साठ वर्षों के अनुभवों ने यह दिखा दिया है कि धनबल और बाहुबल रखनेवाले ही जनता के नाम पर सत्ता में काबिज रहे हैं । आज हालत यह है कि भारत की लोकसभा के पाँच सौ सैंतालीस सदस्यों में तीन सौ पच्चीस सदस्य कम–से–कम करोड़पति हैं ।''[25]

लोकतंत्र की इस सच्चाई को दुष्यंत कुमार ने अपनी रचनाओं के केंद्र में रखा है । आम जन की सबसे बड़ी जरूरत है – रोटी । इस जरूरत को पूरा करने का दायित्व हमारे संविधान ने हमारे कर्णधारों के कंधे पर डाला हैं किंतु हमारे कर्णधारों ने सिर्फ लुभावने भाषणों और संसद में बहसों के जरिये रोटी की जरूरत को पूरा करने की कोशिश की है । कवि लिखते हैं –

‘‘ भूख है तो सब्र कर रोटी नहीं तो क्या हुआ,
आजकल दिल्ली में है जेरे बहस यह मुद्दा ।''[26]

जब भारत परतंत्र था और लोकतंत्रीय संविधान निर्मित नहीं हुआ था, तब भी आमजन उपेक्षित और बुरी स्थिति में था और स्वतंत्रता के पश्चात् जब लोकतंत्र का तमाशा रचा गया, तब भी व्यवहारिक रूप से आमजन के लिए वहाँ कुछ भी उपयोगी नहीं था । परोक्ष रूप से आमजन वहाँ भी उपेक्षित हो गया ।

कवि लिखते हैं –

‘‘ यों पहले भी अपना–सा यहाँ कुछ तो नहीं था,
अब और नजारें हमें लगते हैं पराए ।’’[27]

दुष्यंत कुमार ने लोकतंत्रीय संविधान के जनविरोधी चरित्र की बखिया उघेड़ कर रख दी है । कवि देखते हैं कि इस लोकतंत्र में लोक जब तंत्र से अपने अधिकारों की माँग करते हुए उसके विरोध में खड़ी होती हैं, तब यही रक्षक तंत्र भक्षक बनकर उन्हें कुचलने की पुरजोर कोशिश करने लगती हैं –

‘‘ आपके टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाएँगे पर ,
आपकी ताजीम में कोई कसर होगी नहीं ।’’[28]

कांति कुमार कवि की लोक-चेतना के बारे में लिखते हैं – ‘‘स्वतंत्र भारत के आम नागरिक को जिन अन्यायों, अत्याचारों या कदाचारों से मुकाबिल होना पड़ा था, दुष्यंत स्वयं को एक कवि के रूप में उनके मुकाबले में खड़ा पाते हैं ।’’[29]

‘ईश्वर को सूली’ दुष्यंत कुमार की एक प्रसिद्ध कविता है । यह कविता ऐतिहासिक ‘बस्तर गोलीकांड’ को केंद्रित करके लिखी गई है । कविता में कवि लोकतंत्र की वास्तविकता को जिस तरह से बेखौफ होकर चित्रित करते हैं, वह अतुलनीय है । उन्होंने इस ऐतिहासिक घटना पर ‘बस्तर : अविश्वास का श्रोत’ नामक एक लेख भी लिखा है । इस लेख में कवि बस्तर के गोलीकांड की घोर निन्दा करते हैं । दुष्यंत कुमार के लिए यह महज एक घटना नहीं थी, यह

लोकतांत्रिक अधिकारों पर हमला था । यह जनता में सत्ता की अमानवीयता के प्रति उठ रहे विद्रोह के स्वर को मौन करने की कोशिश थीं । अपने लेख में वे आक्रोश के साथ लिखते हैं – ‘‘ बस्तर में चली एक–एक गोली प्रजातंत्र के सीने पर लगी है और मृत्यु का लक्ष्य प्रवीरचंद्र भंजदेव नहीं, बल्कि शासन का विरोध करने वाली वह दो टूक वाणी बनी है, जिसने सत्ता से समझौता नहीं किया ।’’[30] इस सन्दर्भ में विजयबहादुर सिंह के विचार भी अवलोकनीय है –‘‘खतरों से खेलने की अपनी इन्हीं पुरानी और जानी–पहचानी आदतों के चलते उन्होंने ‘ईश्वर को सूली’ जैसी कविता बस्तर में सरकार द्वारा नियोजित ढ़ंग से कराए गए नृशंस गोलीकांड के विरूद्ध लिखी । बस्तर के आदिवासियों के ईश्वरतुल्य उनके राजा प्रवीरचन्द भंजदेव सरकार की गोलियों से निहत्थे मार डाले गए थें । शासकीय अधिकारी दुष्यंत ने न केवल कविता लिखी, बल्कि इतने सारे अप्रसन्न काजियों और ईर्ष्यालुओं के प्रति लापरवाही दिखाते हुए उसे ‘कल्पना’ त्रैमासिक(हैदराबाद) में प्रकाशित भी करवा लिया ।’’[31] इस कथन से स्पष्ट है कि जनविरोधी तत्वों से कवि कितने रूष्ट होते थें । इतना ही नहीं उन तत्वों के विरूद्ध बगावत की आवाज उठाते हुए वे कभी भी भयभीत नहीं हुए और न ही अपने कवि को कभी समझौता करने दिया । शासकीय अधिकारी दुष्यंत कुमार हो या कवि दुष्यंत कुमार, दोनों की चिंता के केंद्र में सामान्यजन ही रहा । उनकी भलाई के लिए वे कोई भी ‘रिस्क’ लेने को तैयार थे, कोई भी कीमत चुका सकते थें ।

अंतत: यही कहा जा सकता है कि दुष्यंत कुमार आमजन की भावनाओं से खिलवाड़ करनेवाले लोकतंत्रीय संविधान की खामियों की तीखे तेवर के साथ आलोचना करते हैं। वर्तमान समय में लोकतंत्र लोक के सरोकारों से बहुत दूर जा चुका है। सामान्य जन के लिए प्रतिबद्ध हमारे संविधान में बदलाव लाने की दरकार है। उसे व्यवहारिक रूप से जनोपयोगी बनाने की जरूरत है।

3. नेतागण और आश्वासनों का ढोंग

आश्वासनों से जनता को बहलाना, हमारे देश के नेताओं का प्रिय कार्य है। हमारे देश की राजनीतिक स्थिति पर नजर डालें तो यह तथ्य बार-बार उभरकर सामने आया है कि हमारे प्रिय नेताओं के पास आश्वासनों के अलावा न कोई अन्य सशक्त हथियार है और न ही राजनीति में बने रहने का कोई दूसरा विकल्प। स्वतंत्राता पूर्व और पश्चात्, दोनों ही समयों में हमारे नेताओं ने कई सुनहरे आश्वासनों द्वारा 'आमजन' अर्थात् 'वोट–बैंक' को अपने पक्ष में करने का प्रयास किया। जनता इन आश्वासनों पर भरोसा जताकर, इनके पूरे होने का इंतजार करने लगी। वक्त तीव्र गति से गुजरता गया, किंतु आश्वासनों से जनता को बहलाने का प्रयास आज तक जारी है। कुछ आश्वासन पूरे तो हुए लेकिन सतही तौर पर। कहने का आशय यही है कि योजनाएँ या तो फाइलों से निकलकर क्रियांवित होने के लिए संघर्षरत रहती है या फिर भ्रष्टाचार की शिकार होकर

आमजन के पास पहुँचने से पहले ही दम तोड़ देती है । इसकी मूल वजह यह है कि नेतागण निष्पक्ष और भ्रष्टाचाररहित होकर अपने आश्वासनों को पूरा करने के प्रति गम्भीर नहीं रहते । जनता की समस्याएँ राजनीतिज्ञों के लिए सिर्फ एक 'मुद्दा' हैं, जिसके बल पर वे राजनीति का खेल खेलते हैं । अगर सारे आश्वासन पूर्ण हो जाये तो नेताओं के समक्ष जनता को भरमाने और राजनीति का खेल खेलने के लिए कुछ शेष नहीं बचेगा । आश्वासनों के द्वारा नेतागण जनता में अपनी जरूरत को बनाये रखते हैं । भूख, गरीबी, बेरोजगारी, महँगाई जैसी समस्याएँ हमेशा से राजनेताओं के पक्ष में रही है । ये कुछ ऐसे मुद्दे हैं जो सत्ता को बदलने की क्षमता रखते हैं । यही वजह है कि राजनेता झूठे आश्वासनों से अपनी कुर्सी को मजबूत आधार प्रदान करते हैं । समाज में बढ़ रहे भ्रष्टाचार से आमजन आक्रांत हो रहा है पर सरकार इसे कम करने के मुद्दे पर वाचिक आश्वासन देकर मौन हो जाती है । दुष्यंत कुमार लिखते हैं – ''सरकार को इस प्रश्न पर सोचना चाहिए था । सरकार विधायकों का मुँह बन्द करने में लगी रही और प्रश्न समाधान का मुहताज बना रहा । भ्रष्टाचार की कहानियाँ अमर बेल की तरह बढ़ती रहीं । अफसरशाही फलती–फूलती रही । जनता का पैसा ठेकेदारों की जेब में जाता रहा और सारे विचार–विमर्श और बहस–मुबाहसे के बावजूद समस्या ज्यों की त्यों बनी रही ।''[32]

आजाद भारत में समाजवाद लाने का, गरीबी मिटाने का आश्वासन कई बार दिया गया । आमजन के सरोकार से मुक्त पूँजीवादी समाजवाद लाकर इस

आश्वासन को पूरा किया गया । गरीबी आज भारत देश की वैश्विक पहचान बनी हुई है । गरीबी-उन्मूलन की कई योजनाएँ चलाने के बावजूद आज भी करोड़ों लोग गरीबी-रेखा के नीचे गुजर-बसर करने को बाध्य है । इसका मूल कारण यह है कि व्यवहारिक धरातल पर योजनाओं को सही ढ़ंग से क्रियांवित नहीं किया जाता है । दुष्यंत कुमार ने अपनी कई रचनाओं में नेताओं के आश्वासनों के यथार्थ को बेपर्द किया है । उनकी कथनी और करनी के अंतर की समीक्षा की है । 'साये में धूप' संग्रह का प्रथम शे'र ही आश्वासनों की सच्चाई को विस्तार से व्यंजित करता है । हर एक घर को रोशनी से जगमगा देने के वायदे के पीछे की सच्चाई कुछ और ही है –

> '' कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए ,
> कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए ।''[33]

दुष्यंत कुमार की एक कविता है –'आश्वासनों का सूर्य'। इस कविता में कवि आश्वासनों के यथार्थ को बड़े ही सुन्दर ढ़ंग से वर्णित करते हैं । वर्षों से आश्वासनों के सूर्य देव उदय और अस्त होकर एक चमत्कार, एक मायाजाल की सृष्टि कर रहे हैं, किंतु आश्वासनों के पूर्ण होने की स्थिति कवि को नहीं दिख रही । कवि आश्वासनों को सत्य की कसौटी पर कसते हैं और देखते हैं कि –

> '' डूब जाएगा पुन: आश्वासनों का सूर्य

भाषणों की धूप में तपते हुए चेहरे
विदा लेंगे
फिर अंधेरा घेर लेगा घरों को
चुपचाप, हारे हुए अपने आपसे
सब लोग अपने हाथ और हथेलियाँ सहलाएँगे ।
जो सभाओं में तालियों का शोर करने
जोर से नारे लगाने को उठाए गए थे
उत्साहवश या विवश करके
वहाँ लाये गये थे
वो लोग थककर बैठ जाएँगे
फिर किसी मनहूस दल के चिहन–सी जीवन-पताका
झुकेगी या थरथराकर टूट जाएगी ''[34]

क्या वजह है कि जिन भाषणों में जनता को आश्वस्त किया जाता है कि उनकी समस्याएँ अब शीघ्र समाप्त हो जाएगी, उन भाषणों के प्रति जनता में कोई आग्रह दिखाई नहीं पड़ता ? क्यों भाषणों में निरर्थक शोर करने और तालियाँ बजाने के बावजूद, भाषणों की समाप्ति पश्चात् थककर बैठ जाते हैं, हताश, निराश होकर अपनी हाथ और हथेलियाँ सहलाते हैं ? कवि जनता की इस प्रतिक्रिया का कारण बताते हुए लिखते हैं –

‘‘ एक तालाब–सी भर जाती है, हर बारिश में ,
मैं समझता हूँ ये खाई नहीं जानेवाली ।’’[35]

कवि ने यहाँ प्रभावी ढ़ंग से नेताओं के कथनी और करनी के पार्थक्य को स्पष्ट किया हैं । चुनावी बरसात आते ही प्रत्येक नेता के तालाब रूपी एजेंडे में कई लुभावने, मनमोहक आश्वासनों की झड़ी लग जाती है, परंतु समस्या रूपी खाई कभी भी नहीं जाती । कवि दिखाते हैं कि समस्या रूपी खाई इसलिए नहीं मिटती क्योंकि हमारे उद्धारक नख-शिख तक भ्रष्टाचार में डूबे हुए हैं । दुष्यंत कुमार लिखते हैं –

‘‘ इस सड़क पर इस कदर कीचड़ बिछी है ,
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है ।’’[36]

कवि जब आसपास देखते हैं तो उन्हें यह देखकर क्रोध आता है कि लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ अखबार भी नेताओं के झूठे आश्वासनों को सच साबित करने पर तुला हुआ है। जनता का साथ देने के बजाए नेताओं के झूठ में शामिल होकर गलत बात का प्रचार कर रहा है । कवि अखबारों के इस ढोंग, दिखावे और झूठ को देखकर आक्रोश के साथ लिखते हैं –

‘‘ रोज अखबारों में पढ़कर ये ख्याल आया हमें ,
इस तरफ आती तो हम भी देखते फस्ले-बहार ।’’[37]

शिव कुमार मिश्र ने लिखा है –‘‘हमारे सामाजिक जीवन का यथार्थ

यह है कि जहाँ समाज के नवधनाढ्यों-नव मध्यवर्ग का एक छोटा तबका बाजार द्वारा लाये गये सुखभोगवाद के स्वर्ग में आराम मुग्ध जीवन के सारे सुख भोग रहा है, समाज का बड़ा हिस्सा, साधारण–जन जिन्दा रहने भर के लिए न केवल संघर्ष कर रहे हैं, बल्कि अपने चन्द देशवासियों के सुखभोगवाद को महज देखने के लिए अभिशप्त हैं । आदमी की हबस उसे कितना लोभी, स्वार्थी, लम्पट, आत्मकेंद्रित, संवेदनशून्य और निर्भय बना सकती है, यह हमने अपने समय के सामाजिक जीवन में अपनी आँखों से देखा और अनुभव किया है । आदमीयत का जिनता क्षरण हमारे समय में हुआ है, शायद उतना पहले कभी नहीं हुआ था ।''[38]

कवि देखते हैं कि जनता का प्रतिनिधि बनकर जब वे सत्तावर्ग से उनके आश्वासनों को लेकर प्रश्न करते हैं, तब सत्तावर्ग चालाकी से सारा दोष आमजन पर मढ़ देती है । वह जबाव देने के बजाए उलटा जन-प्रतिनिधि से प्रश्न करने लगती है । कवि सत्तावर्ग की इस चालाकी को उजागर करते हुए उनपर आक्रोश व्यक्त करते हैं –

'' जिस तरह तुम्हें आज याद नहीं
कि तुम कितनी बार झूठ बोले हो,
कितने तड़पते हुए लोगों की साँसें चुराई हैं ?
एक क्षण की हँसी के लिए
कितनी पीढ़ियों को रोने के लिए मजबूर किया है ,

या कितनी लड़कियों को
कब और कैसे इशारे किए हैं !
यह भी मुमकिन है
कि एक बार फिर हँसने के लिए ही
तुमने मेरी बेचारगी से छेड़खानी की थी ।''[39]

कवि भलीभांति जानते हैं कि आश्वासनों से न तो पेट भरता है और न ही प्यास बुझती है । कवि अभावग्रस्त आमजन के इस दर्द को गहराई से महसूस करते हैं और साधारण जन को शारीरिक और आत्मिक पीड़ा देने के लिए नेताओं पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं –

'' हम बहुत सो चुके आशाओं के झूले पर
पेटों पर पत्थर रखकर साढ़े तीन वर्ष
तन की तो क्या मन की भी भूख न बुझा सके ''[40]

आम–जनता तन और मन दोनों से अतृप्त है, भूखी है, प्यासी है फिर भी हर बार नेताओं के झूठे आश्वासनों के झाँसे में आकर अगले चुनाव में पुन: इन नेताओं को निर्वाचित कर देती है । कवि को इस बात से अत्यंत कष्ट होता है । कवि दु:खी होकर अपने मनोभाव को व्यक्त करते हैं –

'' रहनुमाओं की अदाओं पे फिदा है दुनिया
इस बहकती हुई दुनिया को सँभालो यारों ।''[41]

अस्तु, दुष्यंत कुमार ने नेताओं द्वारा दिए गये आश्वासनों के यथार्थ को स्पष्ट कर आम–जनता को जगाने का प्रयत्न किया है ।

4. पूँजीवादी समाजवाद और शोषण चक्र

पूँजीवादी समाजवाद पूरी तरह से पूँजी पर आधारित समाज व्यवस्था है । स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने भारतीयों को लुभाने के लिए 'समाजवाद' का नारा दिया । वर्षो तक भारतवासी टकटकी लगाये 'समाजवाद' के आने का इंतजार करते रहें ताकि एक बेहतर जीवन जीने की जो लालसा वे बरसों से हृदय में संजोए हुए थे, वह लालसा पूर्ण हो जाए । पर समाजवाद को जन की मनोकामना पूर्ण करने के लिए न आना था और न आया । नेताओं ने जिस 'समाजवाद' से जनता को बहलाने की कोशिश की और 'समाजवाद' को जिस रूप में जनता के समक्ष लाया गया, वह समाजवाद का असली चेहरा नहीं था और न ही उसका लक्ष्य सामान्यजन का हित था । जो 'समाजवाद' लाया गया, वह पूँजी की पक्षधर थी । उसके विशाल हृदय में जब सामान्यजन ने अपनी जगह देखनी चाही तो उनके हाथ केवल मायूसी ही आयी । पूँजीपतियों द्वारा परिचालित समाजवाद में सामान्यजन केवल उपेक्षित ही नहीं हुआ, पूरी तरह से टूट भी गया । उसके सारे सपने चकनाचूर हो गये । पूँजीवादी समाजवाद व्यक्तिगत हित का समर्थन करता है । इसकी केंद्रिय चिंता है 'लाभ',

चाहे उसके लिए निचले स्तर तक ही क्यों न जाना पड़े, उससे कोई गुरेज नहीं। स्वातंत्र्योत्तर पूँजीवादी समाजवाद के जनविरोधी चरित्र को उजागर करने में कवि दुष्यंत कुमार समर्थ जान पड़ते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से पूँजीवादी समाजवाद की कुटिलताओं, षड्यंत्रों और विसंगतियों को तीखे तेवर के साथ रूपायित किया है। इस व्यवस्था से आक्रांत विश्व का दृश्य खींचते हुए कवि लिखते हैं –

> ''पूंजीपतियों की चपतों से
> सकल विश्व तड़फड़ा रहा है
> पिंजड़ों में बन्दी जो युग का
> मानव पर फड़फड़ा रहा है ''[42]

किस तरह पूँजीपतियों ने कुटिल चाल चलकर 'मानवता' को बन्दी बना लिया है, इसका खुलासा कवि ने तीखे तेवर के साथ किया है। पूँजीवादी समाज व्यवस्था में सामान्यजन की स्थिति बद से बदतर होती दिख रही थी। गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी आदि कम होने के बजाए तेजी से बढ़ती ही जा रही थी। नेताओं के सारे हितचिंतक वायदे खोखले सिद्ध होने लगे। अमीर पूँजी का साथ लेकर सामान्यजन के साथ शोषण का संहारक खेल खेलकर आनन्दमग्न हो रहा था और गरीब धनाभाव में मौलिक जरूरतों को पूरा करने की जद्दोजहद में काल–कल्वित होता जा रहा था। पूँजीपति वर्ग की क्रूरता और संवेदनहीनता की कई तस्वीरें हम

कवि दुष्यंत कुमार के काव्य-संसार में देख सकते हैं ।'सवाल ये है', 'गाते-गाते','कहाँ से शुरू करे यात्रा', 'सवाल' ,'मंत्री की मैना', 'तुलना', 'जनता' आदि कविताओं में पूँजी परिचालित समाजवाद के शोषक चरित्र को अनावृत्त किया गया है ।

दुष्यंत कुमार ने पूँजी के मद में सराबोर इस वर्ग की काली करतूतों को व्यापक स्तर पर जाहिर किया है । इस वर्ग के लिए गरीबों की अस्मत के साथ खिलवाड़ करना मात्र एक मनोरंजनात्मक क्रिया-व्यापार है । इस वर्ग में यह धारणा व्याप्त है कि पैरों तले रहनेवाले इन निर्धनों की अपनी कोई इज्जत नहीं होती । इन निर्धनों के बहू–बेटी की आबरू पूँजीपतियों के खेलने की वस्तु-मात्र है । पूँजीपतियों की विकृत मानसिकता और मानवता को शर्मसार करनेवाली घिनौनी हरकतों को कवि क्षुब्ध होकर प्रकट करते हैं –

'' तब न धन के गर्व में यों
सूझती मस्ती किसी को
तब न अस्मत निर्धनों की
सूझती सस्ती किसी को ''[43]

आजाद भारत में आर्थिक भेदभाव मिटाकर 'समानता' स्थापित करने की बात बार-बार भाषणों में दी गई पर वास्तविकता उससे बिल्कुल अलग थी । रोटी की फिकर में मजदूर खुद को बेचने के लिए बेबस हो गया । यह अमानवीय

स्थिति पूँजीपतियों के शोषण की पराकाष्ठा का प्रमाण है –

‘‘ तब न यों मजदूर पैसे
के लिए मजबूर दिखता
तब न रोटी की फिकर में
इस तरह मजदूर बिकता ’’[44]

इस सन्दर्भ में सोलजी के विचार को देखा जा सकता है –‘‘पूँजीवादी शोषण व्यवस्था का लक्ष्य मजदूरों की भलाई नहीं बल्कि अपनी भलाई है । उनकी मुनाफाखोरी मानसिकता मजदूरों के संगठित संघर्ष को बेहरमी से कुचलने की है ।’’[45]

पूँजीवादी समाज–व्यवस्था में मजदूरों की करूणावस्था पर कवि ने अपनी लेखनी चलाई है । वे उनकी दयनीय स्थिति से साक्षात्कार करते हैं । एक ओर पैसे के बल पर पूँजीपति वर्ग आरामदायक जीवन का उपभोग कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर अपनी विपन्नता के कारण मजदूर ‘कीड़ों-सी कुलबुलाती हुई’ नारकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं । एक तरफ आलीशान बड़े–बड़े हवादार कमरे हैं, जिनके किनारे-से पेड़ों से सजे हुए इतने लम्बे-चौड़े रास्ते हैं कि कई मजदूर इन रास्तों पर घर बनाकर एक बेहतर जीवन जी सक्ते हैं । वहीं दूसरी तरफ बदबूदार संकरी गलियाँ, तीखी गर्मी, सीलन और संकीर्ण अंधकार रास्ते हैं, जिनमें एक जानवर भी जीवन यापन करने में झिझके । ऐसी बदबूदार, संकीर्ण, धूपरहित गलियों

में गरीब मजदूर अपना जीवन व्यतीत करने को विवश है । एक ओर अमीर वर्ग की थाली है, जिसमें कई तरह के सुस्वादु व्यंजन है, दूसरी ओर गरीब मजदूर की थाली है जिसमें से रोटी और नमक तक गायब है, है तो सिर्फ बेबसी, अव्यक्त दर्द और जीते-जी शव बनने का सामान । कवि ने मजदूरों के जीवन यथार्थ को व्यापक स्तर पर चित्रित किया है । टीन के कनस्तरों की बस्ती में जीवन यापन करनेवाले गरीब बेबस मजदूरों की पीड़ा और उनके नारकीय जीवन के अंकन द्वारा कवि मजदूरों की दयनीय दुर्दशा और लोकतंत्रीय भारत के बेमेल विकास के कड़वे, घिनौने यथार्थ को अनावृत्त करते हैं –

‘‘ मेरा रथ मोड़ो पहले
टीन के कनस्तरों की बस्ती में
बदबू से भरी हुई, उन सँकरी गलियों में
आँगन की सीलन जहाँ
खून की हरारत
और गर्मी सोख लेती है
दीवारों की छाँह जहाँ
माथे के तनावों
और आँखों के चिरागों पर राख पोत देती है
भूख जहाँ आदमी पर

चीलों-सी घिरती है

....

लाश जहाँ घर–घर में

जीती है, चलती है

मोमबत्तियों-सी जहाँ

युवा उम्र जलती है ''[46]

प्रसिद्ध विचारक कार्ल मार्क्स समाज को आर्थिक दृष्टिकोण से पूँजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग में विभाजित करके देखते हैं । सर्वहारा वर्ग के जीवन में केवल अभाव और संघर्ष ही हैं । पूँजीपति वर्ग के जीवन में संघर्ष और अभाव का नामोनिशान तक नहीं है । यह वर्ग जिस वस्तु की कामना करता है, पूर्ण हो जाता है । कवि दुष्यंत कुमार इस पूँजीपति वर्ग के बारे में लिखते हैं –

'' कुछ लोग इस जमीन में

जहाँ खोदते हैं

चार हाथ पर पानी निकल आता है

अँगूठे से कुरेदते हैं रेत

तो रेत पानी से भींग जाता है ।''[47]

अपने समय के पूँजीवादी चेहरे को दुष्यंत कुमार ने बखूबी पहचाना है । सामान्यजन की दयनीय स्थिति के कई कारूणिक दृश्य हम उनकी रचनाओं में

देख सकते हैं । प्रस्तुत शे'र में पूँजीवादी समाज व्यवस्था की भयावहता को देखा जा सकता है –

“ आदमी होंठ चबाए तो समझ आता है
आदमी छाल चबाने लगे, ये तो हद है ”[48]

सर्वहारा वर्ग के जीवन में संघर्ष और अभाव का कोई अंत नहीं । जीवनपर्यंत कष्ट भोगते हुए, भूख की असहनीय पीड़ा को झेलते हुए वे काल–कल्वित हो जाते हैं । सर्वहारा वर्ग की इस भयावह सच्चाई को कवि ने तीखे तेवर के साथ प्रकट किया है –

“ लेकिन कुछ हाथ इसी जमीन में
जिन्दगी भर खुदाई करते रहे
और कुछ सूखी पापड़ियों वाले होंठ
पानी–पानी चिल्लाते हुए
खामोश हो गए ?”[49]

कवि दुष्यंत कुमार का साहित्य करोड़ों लोगों की आशा–आकांक्षा, सुख-दुख, भय-चिंता आदि से जुड़ा हुआ है । सामान्यजन की बेबसी, घुटन, हताशा, छटपटाहट सभी उनकी लेखनी से जीवंत हो गये हैं । कवि देखते हैं कि पूँजी के मद में चूर पूँजीपति वर्ग के दोनों कान सामान्यजन की पीड़ा का रूदन सुनने में अक्षम हो चुके हैं । यह वर्ग थोड़ा ऊँचा सुनती है । इसीलिए इस वर्ग तक

अपनी बात पहुँचाने के लिए मीठे बोल के बजाए तीखे बोल बोलने पड़ेंगे । इतना ही नहीं यह पूँजीपति वर्ग सामान्य जन की भाषा भी नहीं समझती, इसीलिए उनसे उन्हीं की भाषा में बात करनी होगी, तभी बात बनेगी । कवि सामान्यजन से आग्रह करते हुए लिखते हैं –

‘‘ गिड़गिड़ाने का यहाँ कोई असर होता नहीं
पेट भरकर गालियाँ दो, आह भरकर बद्दुआ ।’’[50]

अस्तु, दुष्यंत कुमार ने पूँजीवादी समाज की निरंकुशता और निष्ठुरता की तस्वीर को अपनी कविताओं में साकार कर दिया है । पूँजी परिचालित समाजवाद ने समाजवाद के जन-स्वरूप को पैरों तले कुचलकर रख दिया है । समाजवाद के द्वारा एक स्वस्थ समतामूलक समाज की परिकल्पना आज भी स्वप्न है । आज भी सामान्यजन पूँजीपति वर्ग के कुचक्र का शिकार होकर अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए संघर्षरत है और यह संघर्ष शायद ही कभी अपने अंत तक पहुँचे ।

5. किसान और उनकी त्रासदायक परिणति

भारत एक कृषि प्रधान देश है । किसान इस कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है । भारतीय अर्थव्यवस्था का अतिमहत्त्वपूर्ण अंग होते हुए भी किसान भारतीय समाज में हमेशा से क्रूरता और संवेदनहीनता का

शिकार होता रहा है। जमींदार और पूँजीपति वर्ग द्वारा हमेशा से किसानों की महत्ता को अनदेखा किया गया है। श्रम के बदले में किसानों को उनकी मूलभूत जरूरतों से वंचित कर उनके दैहिक, मानसिक और आर्थिक शोषण की प्रक्रिया अनवरत गति से जारी है। उन्हें निरन्न मरने के लिए छोड़ दिया जाता है। कितनी बड़ी विडंबना है कि दूसरों के मुँह में निवाला डालने का उद्यम करनेवाला किसान खुद कुपोषण के कारण प्राण त्याग देता है। अपनी आर्थिक तंगी और अन्नभाव से संत्रस्त होकर आत्महत्या करने को बाध्य हो जाता है। किसानों के इस वीभत्स यथार्थ को कवि दुष्यंत ने आक्रोश के साथ अपनी कविताओं में व्यक्त किया है।

कवि का किसानों के साथ नजदीकी रिश्ता रहा है। दुष्यंत कुमार भूमिहार ब्राह्मण थे। उनके पिता चौधरी भगवतसहाय अपने क्षेत्र के बहुत बड़े जमींदार थे। इस वजह से खेत–खलिहानों से कवि का नाता बचपन से ही जुड़ गया था। उनके पिता एक नरमदिल जमींदार थे। अपने आसामियों के साथ उनका रवैया प्रेमपूर्ण था। किंतु उस समय कुछ ऐसे भी जमींदार थे जो किसानों को पददलित समझते थें। उनपर तरह–तरह के अत्याचार करते थे। अन्याय और अत्याचार के बल पर जबरन काम करवाने में ये क्रूर जमींदार अपनी शान समझते थे। दुष्यंत कुमार ने अपनी आँखों से इनपर होनेवाले अत्याचार को देखा था। अपने पिता की तरह कवि भी किसानों के प्रति संवेदनशील थे। कवि चाहते थे कि समाज इनके प्रति मानवीय रवैया अपनाये। उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार

करें । उन्हें नारकीय जीवन जीने के अभिशाप से मुक्त करें । कवि अपनी कविता रूपी हथियार से अत्याचारी जमींदार और पूँजीपतियों पर वार करते हैं । वे किसानों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक और सचेत करते हैं । उनका मानना है कि किसानों को अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए खुद जागृत होना होगा, उसे अपनी महत्ता का एहसास करना होगा, जब तक वह खुद आगे बढ़कर अपने पर होने वाले अन्याय और अत्याचार के प्रत्युत्तर में प्रतिवाद का स्वर नहीं उठाएगा, तब तक वह उत्पीड़न, उपेक्षा और शोषण का शिकार होता रहेगा । दूसरों की उदरपूर्ति के लिए खून-पसीना बहाते हुए खुद भूख-प्यास से वंचित होकर मरने को विवश होता रहेगा । जिस किसान के बल पर धनवान ऐश्वर्य और रईसी का जीवन जीते हैं, विभिन्न तरह के स्वादिष्ट व्यंजनों और भौतिक सुखों का सपरिवार आनन्द उठाते हैं, उन धनवानों द्वारा किसानों की दुर्गति कवि दुष्यंत को असह्य है । इसीलिए वे किसानों को जागृत होकर अपनी पहचान करने के लिए कहते हैं –

‘‘ जाने किस माया में खोया
कर अपनी तो पहिचान अरे
तू हैं भारत की निधि महान
कर अपने पर अभिमान अरे
हीरे, मोती, रूपए पैसे
जिनके चरणों में पड़े हुए

तू सोच तनिक सब के सब
ही है तेरे बल पर खड़े हुए
तू निश्छल भोला-भाला है
तूने जिनके भरता उदर
उन्हीं के अत्याचारों का निशान
उठ जाग आज तो हे किसान ''[51]

कवि को किसानों का नि:शब्द अत्याचार रहते रहना पसन्द नहीं । किसानों की भाग्यवादी सोच उन्हें व्यथित करती है । वे यह मानने को बिल्कुल तैयार नहीं है कि किसानों की इस दुर्दशा की मूल वजह 'नियति' है । कवि देखते हैं कि समाज के कुछ मुट्ठी भर लोग अपने धन और वर्चस्व के बल पर किसानों के साथ जानवरतुल्य व्यवहार कर रहे हैं । भर पेट भोजन देने की नैतिक जिम्मेदारी से मुँह मोड़ने वाले ये सम्पन्न वर्ग किसानों से घोर श्रम करवा रहे थे जैसे इनपर उनका मौलिक अधिकार हो । समाज के ऐसे क्रूर इंसान रूपी हैवानों से कवि को घृणा है । कवि किसानों को इस क्रूरता का जबाव देने के लिए कहते हैं किंतु किसानों की अतिशय सहनशीलता इस क्रूरता को कम होने नहीं दे रही । कवि को एहसास है कि किसान निराश और हताश होकर इस अत्याचार को सह रहे हैं । वे किसानों में आशा और शक्ति का संचार करते हुए लिखते हैं –

'' माना तुमने कंटकाकीर्ण पथ

पर आना-जाना सीखा
दुःख की ठोकर खा लेने पर
भी तुमने मुस्काना सीखा
x x x
पर सोच! नहीं हो सकता है
परिवर्तित ऐसे भाग्य तेरा
तू घूमेगा निरभ्र नभ में
लेकर सपनों के ही विमान ''[52]

अपने कई शे'रों में दुष्यंत कुमार किसानों के जीवनाभाव और दारिद्रय का यथार्थ अंकन करते हैं । कितनी बेबसी व्याप्त है इनके जीवन में । ऐसा लगता है जैसे कवि ने इनके जीवन का रेशा–रेशा उघाड़कर रख दिया है । उनकी बेबसी को कवि ने शब्दाकार देते हुए लिखा है –

'' न हो कमीज तो पावों से ढँक लेंगे ,
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफर के लिए ।''[53]

पेट को कमीज के अभाव में पाँव से ढँकने की चेष्टा किसानों के जीवन के अभाव को ही चित्रित नहीं करती बल्कि एक गैरजिम्मेदार और अमानवीय समाज व्यवस्था की सच्चाई को भी उघाड़कर रख देती है ।

हमारे देश में किसान अत्यंत संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं । न

खाने को अन्न, न पहनने को वस्त्र और न रहने को घर, फिर भी इनकी जिजीविषा कम नहीं होती है । जीवन के दारिद्र्य को ओढ़कर और अभाव से नि:सृत आँसू को पीकर खुले आसमान को अपना घर बनाकर ये अपना गुजारा करते हैं –

‘‘ तैने कब अपने जीवन में
शय्या खस की टट्टी देखी
पृथ्वी ही तब स्तरिमा है
है नील गगन तेरा वितान ’’[54]

कवि हृदय को यह प्रश्न व्यथित करता है कि किसान क्यों सहजता से ऐसी नारकीय व्यवस्था को स्वीकार कर लेता है ? क्यों वह प्रतिवाद का स्वर मुखरित नहीं करता? सच्चाई यह है कि किसानों द्वारा उठाये गए प्रतिवाद के स्वर को मुखरित होने से पहले ही दबा दिया जाता है । किसानों द्वारा अन्नाभाव और आर्थिक तंगी से परास्त होकर आत्महत्या करना, हमारे लोकतांत्रिक संविधान की खामी को दर्शाता है । इस खामी को छिपाने के लिए किसानों के खिलाफ साजिश रची जाती है । सच को झूठ के रंग में रंगकर, झूठ को सच बना दिया जाता है । उनकी मृत्यु का सच ‘नये सच’ के साथ सामने आता है –

‘‘कई फाके बिताकर मर गया, जो उसके बारे में ,
वो सब कहते हैं अब, ऐसा नहीं ऐसा हुआ होगा ।’’[55]

गरीबी–उन्मूलन योजनाओं के माध्यम से किसानों की दशा सुधारने

का हंगामा किया जाता है । प्रत्येक सत्तासीन और विरोधी पार्टी अपने गुड़ मिश्रित भाषणों और वायदों से किसानों की अवस्था में बदलाव लाने की बात करती हैं पर ये सारे वायदे, ये सारे उपक्रम दिवास्वप्न की तरह होते हैं । साम्राज्यवादिता का नंगा नाच दिखानेवाले ढ़ोगी, पाखंडी नेताओं पर कवि तीव्र आक्रोश व्यक्त करते हैं–

‘‘ भूल गये वो अपनेपन को याद नहीं पिछली बातें
जिन कृषकों को ललचाया था करतें हैं उन पर घातें
क्या यह भी साम्राज्यवादिता का नंगा नाच नहीं
आज कृषक अपनी पीठों पर चिर–परिचित कोड़े खाते
पीड़ित हृदयों की आहों का कैसे बोझ सम्हाले हैं ’’[56]

कवि को किसानों की दुर्व्यवस्था में परिवर्तन की गुंजाइश नहीं दिखती । जब तक शोषण आधारित सामाजिक व्यवस्था चरमराकर गिरेगी नहीं, तब तक परिवर्तन और सुधार की बात औपचारिकता के अलावा और कुछ नहीं है । जब तक शोषण की ‘काई’ जमी रहेगी, तब तक स्थिति पूर्ववत बनी रहेगी –

‘‘ देख दहलीज से काई नहीं जानेवाली ,
ये खतरनाक सचाई नहीं जानेवाली ।’’[57]

कवि समझ गए हैं कि किसानों के विकास और अवस्था परिवर्तन की बात महज एक मुद्दा है, जिसे ‘स्प्रिंग’ की भांति आज भी खींचा जा रहा है । किसान अपने

जीवन के सफर में अकेले ही चले हैं, उनकी दयनीय स्थिति पर कभी किसी की मेहरबानी नहीं रही –

" हमने तमाम उम्र अकेले सफर किया ,
हम पर किसी खुदा की इनायत नहीं रही ।"[58]

कवि दुष्यंत खुद खेती–बाड़ी के कार्य से घनिष्ठ तौर पर जुड़े हुए थे । अत: किसानों के जीवनाभाव, घुटन, बेचारगी के वे प्रत्यक्ष साक्ष्य रहे । यही वजह है कि किसान–जीवन की करूण व्यथा–कथा उनकी रचनाओं में जीवंत हो उठी है । स्वांतत्र्योत्तर किसान-जीवन की झलक हम उनकी कविताओं में वृहत्तर स्तर पर देख सकते हैं ।

6. महँगाई का जहर और आमजन

सामाजिक यथार्थ के विविध पहलूओं की जो अभिव्यक्ति हमें कवि दुष्यंत कुमार के काव्य-जगत में मिलती है, वह सामाजिक सरोकार और गहन रचनात्मक दायित्वबोध का परिणाम है । कवि समाज का बारीक मुआयना करते हैं, अपनी विवेकसम्मत दृष्टि से उसके सामाजिक कार्यो की परख करते हैं और जब वह देखते हैं कि समाज में विषमता, व्यभिचार, अनाचार, भ्रष्टाचार ही सर्वत्र विस्तार पा रहा है, तो उनका कवि हृदय व्यथित होकर अपने समय का साक्ष्य देने के लिए उत्कंठित होने लगता है । अपने एक लेख 'आज के साहित्य में सामयिक

अभिव्यक्ति' में कवि अपनी इस बैचेनी को प्रकट करते हुए लिखते हैं –'' कोई भी संवेदनशील लेखक अपने समय की अपनी परिस्थितियों की और अपने हालात की उपेक्षा करके नहीं जी सकता । वह चाहे कवि हो या गद्यकार, अपने समय का साक्ष्य देने के लिए अविकल है ।''[59]

दुष्यंत कुमार एक भावुक, संवेदनशील और सच्चे जन-रचनाकार है । इसलिए समसामयिक यथार्थ की उपेक्षा करके वे अपनी लेखनी को कुंठित नहीं कर सकते । जब चारों तरफ की गलियों, दरवाजों से उत्पीड़न, अभाव और अत्याचार की चीखें और कराहें निकल रही हो, परिवेश विषाक्त, जनविरोधी और समस्याओं से घिर गया हो, तब एक जन–सर्मपित यथार्थवादी रचनाकार इन चीखों और कराहों को कैसे अनसुना कर पाएगा ? दुष्यंत कुमार ने अपने को 'भूखी मानवता का कवि' संबोधित किया है । अत: जब मानवता भूख, अभाव, उत्पीड़न, महँगाई जैसी समस्याओं से ग्रसित हो, तब यह कवि नेताओं और पूँजीपतियों की तरह मात्र वाचिक संवेदना कैसे अभिव्यक्त कर सकता है ? ऐसा करना अपने जन सरोकार से मुँह मोड़ना है । वे अपने कवि से पूछते हैं –

'' ये जो उठती चीखे–कराहें
सब गलियों सब दरवाजों से
सच कहना क्या बचकर जा सकते थे
तुम इन आवाजों से ?''[60]

कवि दुष्यंत कुमार का काव्य जनता के सरोकारों के प्रति प्रतिबद्ध है । जनता का सर्वप्रमुख सरोकार 'रोटी' है और महँगाई ने 'रोटी' को दुर्लभ बना दिया है । आजादी के बाद महँगाई रूपी अजगर ने आम-आदमी को निगलना शुरू किया। तत्कालीन सरकार की स्वार्थपरता, कालाबाजारी, अकाल और बांग्लादेशी शरणार्थियों के आगमन के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था चरमराने लगी । दैनिक वस्तुओं के दाम आसमान छूने लगे । इस स्थिति का सबसे ज्यादा खामियाजा साधारण लोगों को भुगतना पड़ा । आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न परिवार के रसोईघर में महँगाई का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, किंतु विपन्न परिवार जो पहले से ही अभाव की चक्की में पिस रहे थे, उनके लिए अपने और अपने परिवार को जीवित रखना एक कठिन चुनौती बन गई । गरीब घर की गृहणियाँ दैनिक जरूरतों के साथ जूझती हुई तनाव का शिकार होने लगी । महँगाई ने उनके जीवन को जीते-जी नरक बना दिया । कवि निर्धनों के रसोईघर में पड़े महँगाई के प्रभाव को चित्रित करते हुए लिखते हैं–

'' तुमने देखा–
झुग्गियों और मकानों में
चीखें और कराहें बढ़ रही हैं
औरतें घरों में
जरूरतों के साथ झगड़ रही है,

बदबूदार साँस, धुँए-सा ,
थम-थमकर निकल रहा है,
ऐसा लगता है
जैसे शरीर के भीतर
कोई मुरदा जल रहा है ।''[61]

महँगाई और आर्थिक तंगी से बेहाल आम आदमी का कारूणिक यथार्थ हम उनकी 'हे होली के त्यौहार हमें माफ करो' में देख सकते हैं । दैनिक जरूरतों के लिए संघर्षरत कवि के लिए होली, दीपावली जैसे उमंग और उत्साह के त्यौहारों का कोई अर्थ नहीं रह गया । महँगाई और आर्थिक तंगी के कारण इन त्यौहारों को मनाना एक सपने जैसा हो गया है । जब पेट में रोटी के अभाव के कारण भीषण ज्वाला धधक रही हो और रोटी का प्रश्न बार-बार हृदय को कचोट रहा हो, तब इन त्यौहार का होना बेमायने हो जाता है –

'' जीवन की घोर विषमताओं से
भरे हुए बीहड़ पथ पर
अब हमसे चला नहीं जाता भूखे पेटों
हमको पहिले खाली पेटों को भरना है
पहिले ये रोटी का मसला हल करना है
हम न गा सकेंगे गीत तुम्हारे स्वागत के

है क्योंकि तुम्हारी पावक से

अपनी जठराग्नि कहीं प्यारी

हमें तुम माफ करो

हे होली के त्यौहार हमें तुम माफ करो ''[62]

महँगाई की दहशत से हर आम-आदमी आक्रांत है । इस महँगाई से जुझते–जुझते यौवन का सारा उल्लास बुझने लगा है, चेतना, बुद्धि सब संज्ञाहीन होते जा रहे हैं । भयावह परिणति तो यह है कि व्यक्ति इन स्थितियों में उलझता हुआ स्वयं को विस्मृत करता जा रहा है । इस विडंबनापूर्ण स्थिति पर कवि प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं –

'' है आज पेट में समाधिस्थ भीषण ज्वाला

जिसकी लपटों में जलकर पिघल गया

ये मोम सदृश्य उत्साह हृदय का

औ' यौवन

जो नागिन–सी डँस गई हमारी

ज्ञान–चेटना बुद्धि सभी

जिसकी दहशत से

भूला गये हम खुद को भी

तुमको तो क्या

अब भूल गये उन सपनों को

जिनसे यौवन के

खाली दिन बहलाते थे ''[63]

दुष्यंत कुमार ने देखा था कि राजनीतिज्ञ महँगाई के मूल में संसाधनों की कमी का रोना रोते हैं । पर वास्तविकता इससे भिन्न है । सन् 1967 के बंगाल के भीषण अकाल ने कालाबाजारी और महँगाई में वृद्धि ला दी । अनाज की कमी का रोना रोकर व्यापारियों ने सभी वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि कर दी । सरकार जनता के प्रत्यक्ष में संसाधन की कमी का रोना रोती रही और परोक्ष रूप से कालाबाजारी को प्रश्रय देती रही । महँगाई नियंत्रित करने के बजाए उसे बनाये रखने का षड्यंत्र रचा गया ताकि इस मुद्दे को उठाकर पक्ष और प्रतिपक्ष एक–दूसरे पर छींटाकशी कर वोट–बैंक की सहानुभूति प्राप्त कर सकें । महँगाई नियंत्रण के लिए जिस ईमानदारी और उचित प्रबंधन की दरकार थी, वह नहीं हुआ । कवि मानते हैं कि अकाल जहाँ एक प्राकृतिक आपदा है, वहीं महँगाई सरकार की एक सोची-समझी चाल है, एक षड्यंत्र है । कवि सरकार की इस जनविरोधी साजिश से जनता को आगाह करते हैं –

'' ये साजिश है ये किस्मत की नवाजिश हो नहीं सकती

कि हर कश्ती किनारे पर पहुँचते ही उलट जाए ।''[64]

इस महँगाई की वजह से आम आदमी के जीवन से सुख और आनन्द का लोप हो

गया है । उनके पास दुख और परेशानियों के सिवाय और कुछ नहीं बचा –

‘‘ दु:ख को बहुत सहेज के रखना पड़ा हमें ,
सुख तो किसी कपूर की टिकिया–सा उड़ गया ।’’[65]

आजादी के बाद का यथार्थ सामान्यजन के लिए भयभीत और निराश करनेवाला था । जीवन की मूलभूत जरूरतों के सहज पूर्ण होने का जो स्वप्न सामान्यजन ने देखा, वह आज तक स्वप्न ही बना हुआ है –

‘‘ लेकर उमंग संग चले थे हँसी–खुशी,
पहुँचे नदी के घाट तो मेला उजड़ गया ।’’[66]

कवि उस सामाजिक व्यवस्था से क्षुब्ध दिखते हैं ‘जहाँ पेट अन्न के बिना खाली है और इंद्रियाँ भूख से जड़ हो गई है या मर गई है’ । कवि को महसूस होता है कि विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारतदेश में सामान्यजन की जिन्दगी बहुत सस्ती है । विडम्बना यह है कि लोकतंत्रीय व्यवस्था में सामान्यजन की जिन्दगी की वास्तविकता यही है –

‘‘ सोचा था उनके देश में महँगी है जिन्दगी,
जिन्दगी का भाव वहाँ और भी खराब ।’’[67]

कवि इस जनविरोधी साजिश के विरूद्ध हंगामा खड़ा करना चाहते हैं, ताकि आमजन को उसका मौलिक अधिकार सहजता से प्राप्त हो सके –

‘‘ पक गई हैं आदतें, बातों से सर होगी नहीं,
कोई हंगामा करो ,ऐसे गुजर होगी नहीं ।’’[68]

अंततः यही कहा जा सकता है कि जनविरोधी महँगाई से त्रस्त आम–आदमी की अंतहीन व्यथा, असहनीय पीड़ा को शब्द देकर कवि ने सामान्यजन से अपने आत्मिक जुड़ाव का एहसास कराया है ।

7. बेरोजगारी की भयावहता

बेरोजगारी आर्थिक यथार्थ का एक वीभत्स पहलू है । कवि दुष्यंत के रचनाकाल में बेरोजगारी एक प्रमुख समस्या बनकर उभर रही थी । सक्षम और योग्य होते हुए भी युवा नौकरी की तलाश में दर–दर भटक रहा था । इसकी मुख्य वजह थी– नौकरी आवंटन में भाई-भतीजावाद । केवल राजनीतिक कुर्सी प्राप्त करने में ही नहीं बल्कि नौकरी आवंटन में भी राजनेताओं और पूँजीपतियों का दखल रहा । केवल किसान-मजदूर ही नहीं बल्कि निम्न और मध्यवर्गीय परिवार के कुशल युवा वर्ग भी आजादी पश्चात् की सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था से आक्रांत हुए । बेरोजगारी की पीड़ा से पीड़ित युवावर्ग की बेबसी, टूटन, खीझ, घुटन, मानसिक बिखराव, पारिवारिक दबाब की अनुभूति को कवि दुष्यंत कुमार ने स्वयं अनुभूत किया था । धर्मवीर भारती दुष्यंत कुमार को याद करते हुए लिखते हैं –''हम सबों में अकेला दुष्यंत था जो इलाहाबाद में जब पढ़ने गया, उसके पहले ही पति और पिता बन चुका था । पढ़ते हुए आजीविका कमाने की समस्या लगभग हम सबों के सामने रही, पर परिवार साथ होने के कारण दुष्यंत के सामने कुछ अधिक

भी थी ।''[69]

बेरोजगारी की अवस्था में पारिवारिक और सामाजिक अपेक्षाओं के दबाब को झेलने वाले कवि दुष्यंत कुमार ने एक बेरोजगार की मनोव्यथा को अपनी कविताओं में साक्षात् कर दिया है । देखा जाए तो शिक्षित युवा वर्ग के लिए बेरोजगारी प्रत्यक्ष नरक है । बेरोजगारी की दशा में पारिवारिक और सामाजिक अपेक्षाओं में जकड़ा युवक हर पल मानसिक और शारीरिक रूप से प्रताड़ित होता रहता है । कठोर उपक्रम से अर्जित डिग्रीयाँ बेमायने होकर भीतर ही भीतर घुन की तरह उसका क्षय करती रहती है । युवावस्था का सारा जोश और उत्साह निराशा और हताशा में तब्दील हो जाता है । जनसंख्या विस्तार, दूषित शिक्षा प्रणाली, भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद आदि कई कारणों से बेरोजगारी की समस्या दिन-प्रतिदिन भयावह रूप धारण कर रही है । कवि अपनी कविता 'बेरोजगार : एक अनुभूति' में एक छोटी सामान्य–सी घटना को आधार बनाकर बेरोजगार युवक की मानसिक व्यथा का मार्मिक चित्र उकेरते हैं । कड़कड़ाती हुई तेज धूप में हाथ में डिग्रीयों की फाइल संभाले एक युवक रोजगार की तलाश में काफी भटकने के उपरांत सुस्ताने के लिए एक खंभे का सहारा लेता है । तेज गर्मी के कारण उसका तन और मन दोनों बुरी तरह से थक चुका है । तभी उसे आँखों के सामने अँधेरा नजर आने लगता है । उसके सामने खड़ा एक रिक्शावाला उसे बेसुधावस्था में देखकर प्रश्न करता है – ''बाबू कहाँ चलेंगे ?''। रिक्शावाला द्वारा किया गया यह

सामान्य-सा प्रश्न बेसुध बेरोजगार युवक के मन-मस्तिष्क को पूरी तरह से झकझोर कर रख देता है । अपने आर्थिक अभाव को महसूस कर वह अचेत युवक एकाएक सचेत हो उठता है । प्रश्न के प्रत्युत्तर में युवक पहले अपनी जेब को और फिर अपने मन को टटोलता है । उसे दोनों ही स्थानों पर रिक्तता दिखाई पड़ती है । इस रिक्तता से आहत युवक पहले अपनी किस्मत को कोसता है, फिर खीझकर गाली बकने लगता है । भले ही यह रोजमर्रा की सामान्य-सी घटना हो, भले ही रिक्शाचालक का प्रश्न सामान्य हो पर यह सामान्य प्रश्न ही बेरोजगारी के सन्दर्भ से जुड़कर एक असामान्य और गंभीर प्रश्न बन जाता है । यह सामान्य प्रश्न युवक के अस्तित्व और पहचान तथा डिग्रीयों की सार्थकता के सन्दर्भ में एक बहुत बड़ा प्रश्न बनकर उभरती है । कवि स्वयं को युवक की मन:स्थिति के साथ संयुक्त कर, उसकी मनोव्यथा को वाणी देते हैं –

‘‘ पर मुझको अखरा
सिर पर छाया का अभाव
सुख का जीवन में
आँख मुँद गई
संज्ञाए कुछ क्षीण हो चलीं ’’[70]

इस कड़वी सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि अन्य की तुलना में उच्च डिग्रीधारी बेरोजगार युवकों की पारिवारिक और सामाजिक स्थिति

ज्यादा दयनीय है । अपेक्षाओं की कसौटी पर बार-बार असफल होने पर परिवार और समाज, दोनों ही उसका तिरस्कार करना शुरू कर देते हैं । परिवार और समाज दोनों के लिए वह बोझ बनने लगता है । भविष्य का भयावह अंधकार जहाँ उसे दिशाहीन बना देता है, वहीं हर बार मिल रही असफलता, निराशा और तिरस्कार उसकी कार्य–क्षमता को क्षीण करती जाती है । उसका आत्मविश्वास उत्साह, सहयोग और उमंग के अभाव में डगमगाने लगता है और अंततः हताश और निरूपाय होकर वह भाग्यवादी बन जाता है । कवि बेरोजगार युवक की इस दु:खद परिणति का हृदयस्पर्शी अंकन करते हैं –

‘‘ पहले अंगिनती पथभ्रष्ट
थके हारों की आकृतियाँ–सी उभरी
औ’ फिर गूँज उठे स्वर–
कहाँ चलेंगे ? कहाँ चलेंगे?
कहाँ चलेंगे ?
उन ध्वनियों में मेरी भी ध्वनि थी
मैं सहसा सजग हो गया जैसे
फिर कुछ पश्चात्
एक जर्जर औ’ पीला हाथ उठा
निज मुट्ठी खुली युग्म अधरों की शक्ल में

पेट दिया जिसने वह भोजन भी देता है

इच्छा के साथ पूर्ति-साधन भी देता है ।''[71]

बेकार, बेरोजगार युवक की पारिवारिक और सामाजिक पहचान बस इतनी ही रह जाती है – 'काम का न काज का, दुश्मन अनाज का' । अपनी इस नये अनचाहे पहचान को मिटाने के लिए युवक वह कार्य भी करने लगता है, जिसमें न तो उसकी रूचि होती है और न ही सृजनात्मकता । कवि दुष्यंत कुमार भी बेरोजगारी के दिनों में आर्थिक अभाव से मुक्ति पाने और अपने जीवन में व्याप्त जड़ता को तोड़ने के लिए कई अनर्गल कविताओं की रचना करने के साथ–साथ गाइड लिखने को बाध्य हुए । यह कार्य उनके लिए रचनात्मकता के स्थान पर बेबसी और लाचारी अधिक थी । अपनी इसी लाचारी को उन्होंने 'बेरोजगारी' नामक चार पंक्तियों की एक कविता में व्यक्त किया है –

'' जीवन में यदि कुछ है तो जड़ता ही है

यों तो पथ जड़ता का भी बढ़ता ही है

ये कविताएँ मेरी इच्छा का फल क्या

खाली होने पर लिखना पड़ता है ''[72]

कवि ने बेरोजगार युवक की मानसिक अवस्था का मनोवैज्ञानिक धरातल पर अंकन किया है । जिस भविष्य को डिग्रीयों के माध्यम से सजाने-सँवारे का प्रयास किया गया, वह भविष्य नौकरी के अभाव में क्षत-विक्षत हो चुका है ।

चतुर्दिक निराशा और भटकाव व्याप्त है । कवि बेरोजगारों की दुर्दशा और भटकाव का मार्मिक बिम्ब खींचते हैं –

‘‘ भूत–पूत वाली गलियों से गुजर गिरा कुएँ में
वर्तमान फुँकता जाता है सिगरेट के धुएँ में
है भविष्य तम का कि डिग्रीयाँ रखी ताक पर सुशोभित
जीवन का ही दाँव लगा है जीवन के जुए में ’’[73]

बेरोजगारी उन्मूलन योजनाएँ हो या ऋण राशि का आवंटन, बेरोजगारी मिटाने वाली सभी योजनाएँ मात्र कागजी संवेदना ही प्रकट करती है । प्रत्येक योजना घोटाले की वजह से क्रियांवित नहीं होती और होती भी है तो उनपर वर्चस्व विशेष वर्ग का ही रहता है । नेतागण बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, परंतु उन बातों की सच्चाई कुछ और ही होती है –

‘‘ नौकरियाँ आ रही हैं नेतागण बुला रहे हैं
कल आप देखेंगे हम सब मुस्करा रहे हैं
तबीयत बहलाइए साहित्य से, क्या जल्दी है
पाँच वर्ष ये आए, ये आ रहे हैं ’’[74]

दुष्यंत कुमार की संवेदना के केंद्र में है – ये बेरोजगार युवक । ये युवक शिक्षित है, सुयोग्य है पर निर्धन हैं, सिफारिश नहीं है इनके पास । इनके जीवन की यही कमी इन्हें बेबस और लाचार कर देती हैं । युवावर्ग कुंठा का शिकार होकर मानसिक

बिखराव के कारण या तो गलत रास्ते पर चल पड़ते हैं या आत्महत्या कर लेते हैं । दुष्यंत कुमार के काव्य में बेरोजगार युवक के जीवन संघर्ष के कई रूप दिखाई पड़ते हैं । सामाजिक यथार्थ के प्रति उनकी सजगता ही है कि वे इन युवकों के अंत:संसार में प्रवेश कर उनकी पीड़ा को गहराई से महसूस करते हैं ।

8. नारी जीवन की त्रासदी

विश्व में भारत एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ प्रत्येक विशिष्ट वस्तु को 'माँ' यानि नारी का सम्मानीय दर्जा हासिल हुआ है । यह धरती जिसका आधार लेकर हम अपना विकास करते हैं, उसे हम 'धरती माता' कहते हैं । नदियों में पवित्र देवनदी गंगा को हम 'माँ' सम्बोधित करते हैं । उसकी पवित्रता की पूजा करते हैं । धार्मिक मान्यतानुसार जिसने अपने जीवन में एक बार भी गंगा नदी में डुबकी लगा लिया हो, गंगा माँ उसके सारे पाप–कर्म को धो डालती है । मृत्यु शैया पर लेटे हुए व्यक्ति के मुख में गंगा–जल डाला जाता है ताकि मृत्यु पश्चात् उसे मुक्ति मिल जाए । पशुओं में गाय को 'माँ' मानते हैं और गौ–हत्या को सबसे बड़ा पाप । गौ के अन्दर तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं का वास माना जाता है । विधिवत रूप से हिन्दू धर्म में गौ माता की पूजा भी की जाती है । यहाँ तक कि कई स्थानों पर गौ माता को पहली रोटी खिलाने का भी रिवाज है । पौधों में हम तुलसी के पौधे को माता कहते हैं । उसे घर के आँगन में स्थान देकर रोज

उसकी पूजा-अर्चना करते हैं । इन सारी वस्तुओं को 'माँ' का दर्जा देकर हम अत्यंत प्रसन्न होते हैं परंतु हाड़-मांस की वास्तविक नारी के प्रति हमारा नजरिया बिल्कुल विपरीत है । जहाँ इन रूपों में नारी को हम सम्मान देते हैं, उसे पवित्र और अनिवार्य मानकर उसकी पूजा करते हैं, वहीं हाड़-मांस की वास्तविक नारी को उसका आधिकारिक सम्मान देने में हम कतराते हैं । उसे केवल भोग–विलास की सामग्री समझा जाता है । भारतीय समाज में व्याप्त पुरूष वर्चस्ववादी सोच नारी को पददलित करने, उसका दैहिक, आत्मिक और मानसिक शोषण करने में ही अपने पुरूषत्व की सार्थकता समझता है । भारतीय समाज में नारी की सक्षमता को हमेशा हेय दृष्टि से देखा गया है । जिस पुरूष की वह जन्मदात्री है, वही उसका शोषण कर अपने पुरूषत्व को तुष्ट करता है । पुरूषतांत्रिक समाज द्वारा चिरकाल से नारी-शक्ति का हनन कर, नारी को अपने द्वारा निर्मित नियमों, परम्पराओं की जकड़न में जकड़कर कमजोर करने का षड्यंत्र रचा गया है और आज भी रचा जा रहा है । नारी के बारे में शास्त्रों में प्रचलित है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता:' अर्थात् जहाँ नारी को सम्मान होता है, वहाँ देवता का निवास होता है । नारी समाज का महत्त्वपूर्ण अंग है । सामाजिक विकास की परिकल्पना नारी के बिना अधूरी ही नहीं, असम्भव है । नारी पुरूष के लिए अपरिहार्य है । फिर भी नारी की अवहेलना, उसका दमन और शोषण अविरल गति से जारी है । नारी के प्रति सम्मानीय दृष्टिकोण रखनेवाले कवि दुष्यंत कुमार नारी की सामाजिक दुर्दशा

देखकर व्यथित और चिंतित है । वे नारी को उसका उचित पद और सम्मान देने के पक्षधर है । नारी को घर के प्राचीरों तक सीमित और संकुचित कर उसे उसके अस्तित्व और पहचान से वंचित रखने का कुचक्र रचनेवाले सामाजिक व्यवस्था से कवि को घृणा है । वे ऐसी व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हैं । नारी को भोग्या मानकर उसका अपमान करनेवाले समाज को उन्होंने 'उस समाज में' शीर्षक कविता में तीखे तेवर के साथ व्यंजित किया है –

> '' उस समाज को कौन रसातल में जाने से रोक सकेगा
> जिस समाज में नारि जाति को अबला का अपमान दिया है
> जिस समाज में नारि जाति का जी भरकर अपमान किया है
> अपने घर की प्राचीरों तक उसका सीमित क्षेत्र बनाकर
> जिस समाज ने उसको अपनी राहों से अनजान किया है
> उस समाज को कौन अरे ठोकर खाने से रोक सकेगा ''[75]

नारी को अबला और भोग-मात्र की वस्तु समझने वालों पर टिप्पणी करते हुए दुष्यंत कुमार अपने एक गद्यात्मक लेख में लिखते हैं– ''प्राचीन इतिहास उठाकर देखिए, वह नारियों की पावन गाथाओं से भरा पड़ा है । उसके पृष्ठ–पृष्ठ पर उनके वीरिचित कार्यों का उल्लेख है । किंतु आज की नारी 'अबला' है, 'दुर्बल' है । क्यों ? क्यों दिया गया उसे यह नाम ? इसलिए कि आज के अधिकतर मनुष्य उसे वासना की पूर्ति का साधन समझते हैं । ऐसा दीप समझते हैं, जिसे जब चाहें

फूँक मारकर बुझा दिया जाए । ''[76]

कवि नारी को उसकी ऐतिहासिक पहचान से परिचित करवाकर, उसे अबला की उपाधि से निरस्त करना चाहते हैं । अगर हम प्राचीन इतिहास के पृष्ठों को पलटकर देखेंगे तो वहाँ हमें स्त्री-पुरूष के समकक्ष दिखाई देती है । वैदिक काल में स्त्रियों के बिना यज्ञ को अधूरा समझता जाता था । वे पुरूष के साथ कंधा से कंधा मिलाकर सभी सामाजिक कार्यों में हिस्सा लेती थी । कवि स्त्रियों की इस पहचान को समाज में पुनर्स्थापित करने के इच्छुक दिखते हैं । वे समाज की मानसिकता में बदलाव लाने की चेष्टा करते हैं ।

विधवा स्त्रियों की दशा भी समाज में अत्यंत कारूणिक है । समाज का रवैया उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिये था, किंतु ऐसा नहीं है । सती–प्रथा जैसी अमानवीय प्रथा के समाप्त होने के बावजूद समाज विधवाओं के प्रति संवेदनशील नहीं है । पति-वियोग के दंश को झेलती विधवा नारी आजीवन एक कठोर तपस्या के समान जीवन जीती है । पति के अभाव में उसे सारे आनन्द और ऐश्वर्य से वंचित कर दिया जाता है । पति के अभाव में उसकी अपनी आशा-आकांक्षाओं का कोई मोल नहीं रह जाता । विधवा नारी के प्रति उपेक्षित दृष्टि रखनेवाले समाज के यथार्थ का चित्र खींचते हुए कवि लिखते हैं –

'' जिस समाज में विधवाओं पर अत्याचार किए जाते हैं
जिस समाज में व्यंग्यों के कटु कोड़े चार दिए जाते हैं

जिसका मानस बना हुआ हो ज्वालामुखी का रूप दूसरा
जिस समाज में उसको यों जलते अंगार दिए जाते हैं
उस समाज को कौन मृत्यु-तल को पाने से रोक सकेगा ''[77]

दुष्यंत कुमार की एक कविता है–'परिणति' । यह कविता स्त्री-जीवन की संकीर्ण परिधि को विस्तार से व्याख्यायित करती है । पारिवारिक उत्तरदायित्व के पैरों तले उसके सारे सपनों, आशा-आकांक्षाओं को बेरहमी से कुचल दिया जाता है । कवि स्त्री की इस विडंबना पर लिखते हैं –

'' सपनों के उद्वेलन
बचपन के खेल बनकर रह गए ;
शुष्क सरिता का अंतहीन मरूस्थल
स्थिर.... नियत ...पूर्वनिर्धारित–सा जीवन–क्रम
तोष–असंतोष–हीन, ''[78]

स्त्री के जीवन को घर-गृहस्थी, बाल-बच्चे तक सीमित कर दिया जाता है मानो उसका जन्म मात्र यही सब करने के लिए हुआ है । उसकी सार्थकता, उसके सपनों, आशा–आकांक्षाओं का दमन कर चूल्हा-चौका, बच्चे पालने, लोरियाँ गाने में सिद्ध की जाती है । कवि स्त्री की इस दुख:द परिणति को मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त करते हैं–

'' शब्द गए
केवल अधर रह गए ;

सुख–दुःख की परिधि हुई सीमित
गीले-सूखे ईधन तक,
अनुभूतियों का कर्मठ ओज बना
राँधना-खिलाना
यौवन के झनझनते स्वरों की परिणति
लोरियाँ गुनगुनाना
(मुन्ने को चुपाने के लिए !) [79]

कवि दुष्यंत कुमार समाज का बारीकी से अध्ययन ही नहीं करते हैं, समाज में व्याप्त विरोधाभासों और क्रूरताओं का विश्लेषण भी करते हैं । इसी वजह से वे सामाजिक यथार्थ का सशक्त चित्रण करने में पूर्ण समर्थ हुए हैं । इस सन्दर्भ में धर्मवीर भारती का मत प्रस्तुत है –''अजीब किस्म की यह दुनिया हो चली थी जिसे दुष्यंत बड़ी अंतरंगता से, बड़ी बारीकी से और बहुत नजदीक से देख रहा था । उसके सारे अंतर्विरोध, उसका सारा भोंडापन, उसकी सारी क्रूर विषमताएँ चाहे जितने शब्दजाल से ढँक दिये जाने की कोशिश हों, लेकिन कवि उस चादर के पार अन्दरूनी असलियत देखता है और आहिस्ता से बड़े व्यंजनापूर्ण ढंग से कहने में चूकता नहीं .....''[80]

नारी जीवन के यथार्थ पर लिखी गई कविताओं की मात्रा काफी कम है पर जितनी भी है वे सब नारी की त्रासदायक सामाजिक स्थिति को व्यापक रूप

से उजागर करती है । सामंती व्यवस्था के समाप्त होने के बावजूद, नारी के प्रति सामंती दृष्टिकोण परिवर्तित नहीं हुआ है । आज भी उसे देह के दायरे में ही रखकर देखा जा रहा है । पूँजीवादी व्यवस्था में भले ही नारी घर की चारदीवारी को लांघ रही है, परंतु उसपर आज भी अत्याचार हो रहे हैं । इस व्यवस्था ने नारी को 'वस्तु' का पर्याय बना दिया है । दुष्यंत कुमार ने अपने समय में नारी पर होनेवाले जिन अत्याचारों का साक्षात्कार किया, उसे लेखनी में उतार लिया । वे नारी की सामाजिक स्थिति के बदलाव की आकांक्षा रखते हैं ताकि नारी भी बेखौफ साँस ले सके, अपनी नई पहचान गढ़ सके ।

9. मूल्यों के क्षरण से उत्पन्न नई तहजीब

दुष्यंत कुमार के काव्य में मूल्यों के क्षरण का यथार्थ भी वर्णित हुआ है । स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय जीवन शैली में विराट् परिवर्तन आया । पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति के प्रभावस्वरूप भारतीय जीवन-मूल्यों में भी परिवर्तन घटित हुआ । वैज्ञानिक उन्नति, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, नई तकनीकों के विकास के फलस्वरूप व्यक्ति की सोच में व्यापक बदलाव आया । उसके सोचने, रहने, खाने-पीने, बोलने सभी में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा । व्यक्ति हृदय के स्थान पर बुद्धि को प्रमुख मानने लगा । संयुक्त परिवार बिखरकर एकल परिवार में सिमटने लगा । सामाजिकता की अवधारणा संकुचित होने लगी । व्यक्ति का दायरा सिर्फ

निजी स्वार्थ तक सिमटकर रह गया । भावनात्मक संबंध हाशिये पर आ गये । सामूहिकता का स्थान वैयक्तिकता ने ले लिया । 'हम', 'हमारा' की जगह पर 'मैं', 'मेरा' प्रमुख हो गया । कहा जा सकता है कि आधुनिक जीवन–मूल्यों ने पारम्परिक जीवन-मूल्यों को ध्वस्त कर दिया । रिश्ते-नाते, आत्मीय संबंध, मित्रता, प्रेम, नैतिकता और मानवीयता की प्रचलित परिभाषाओं को बदलकर नई परिभाषाएँ गढ़ी जाने लगी । सभी को 'अर्थ' और 'व्यक्तिगत लाभ' की कसौटी पर आँकने की प्रवृत्ति प्रबल हुई । नगरीकरण और औद्योगिकीकरण ने इस प्रवृत्ति को और विस्तार दिया । मनुष्य के हृदय प्रदेश के विकास की गति धीमी पड़ने लगी और बुद्धि प्रदेश द्रुत गति से निरंतर विकास करता हुआ यांत्रिक होने लगा । जिसका व्यापक प्रभाव आत्मीय संबंधों पर पड़ा । आत्मीय संबंधों से उष्मा और उत्साह का लोप हो गया और नये स्वार्थाधारित कृत्रिम आत्मीयता लिए हुए संबंध त्वरित गति से निर्मित होने लगे । कवि दुष्यंत ने अपनी कविताओं में मूल्यों की गिरावट को स्थान–स्थान पर व्यंजित किया है ।

दुष्यंत कुमार अपनी कई रचनाओं में अवसरवादी मनुष्य के चारित्रिक क्षरण को उजागर किया है । स्वातंत्र्योत्तर परिवेश ने व्यक्ति को स्व-केंद्रित बनाया, अनुकूल अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाना सिखाया । अपनी अंतहीन भौतिक लालसाओं की पूर्ति के लिए छल-कपट व्यक्तित्व की खास विशेषता बन गई । अस्तित्व को बनाये रखने के नये-नये तर्क दिये जाने लगे । सब नाजायज व्यवहार

जायज ठहराये गये और इसे समय के साथ चलना बताया गया । समाज में पनप रही इस नये तरह की संवेदनहीन, स्व-केंद्रित, सुविधापरस्त जीवन शैली को अपनाने वालों के चरित्र का कवि गहराई से विश्लेषण करते हैं और पाते हैं कि यह नया तथाकथित आधुनिक जीवन-शैली जीने वाले मनुष्य का वास्तविक चरित्र साँप की तरह दोमुँहा है । अपनी महत्वकांक्षाओं को पूर्ण करते हुए समाज में अपने वास्तविक चरित्र को छिपाये रखने का 'टेक्टिस' वह बखूबी जानता है । समाज में रहते हुए, खुद को समाज से कैसे दूर रखा जाता है, उसे भलीभाँति पता है । कवि लिखते हैं –

‘‘ मैंने बच्चों को युवा बनाने के लिए
एक दफ्तर में नौकरी कर ली ।
फोटो खिंचवाने के लिए
थोड़ी-सी हँसी माँग लाया ।
अखबार में चेहरा छिपाकर एक सत्य पढ़ लिया
जैसे उस दिन, दिवार गिर पड़ी थी एक बच्चे पर ,
किसी ने कहा-आओ देखें ।
मैंने घड़ी देखी नौ बजकर तीस हो चुका था ।
मेरा चेक बैंक में रूका था ।
मुझे शाम को फिल्म देखने जाना था ।’’[81]

मनुष्य के असामाजिक होने की त्रासदी को कवि ने यहाँ 'बच्ची के ऊपर दिवार गिरने और शाम को सिनेमा देखने' के सन्दर्भ में दिखलाकर पाठकों को सोचने के लिए मजबूर किया है कि इंसान होकर भी हम इंसानियत से खुद को पृथक कर किस ओर जा रहे हैं ? हमारी संवेदनहीनता, हमारी असामाजिकता कहीं हमसे मनुष्य होने का गौरव न छिन लें । कवि की सृजनात्मकता की एक विलक्षण बात यह है कि वे यथार्थ को बड़ी सहजता से उद्घाटित कर देते हैं । व्यक्ति की संवेदनहीनता, उसकी स्वार्थपरता, वैयक्तिकता का जो चित्र उपर्युक्त कविता में उकेरा गया है, वह प्रभावोत्पादक है । कवि देखते हैं कि वैयक्तिक, संवेदनहीन और घोर स्वार्थपरक होने के बावजूद, यह वर्ग अपने को सामाजिक सिद्ध करने पर तुला हुआ है । इस वर्ग का तर्क है कि वह जीवन जीने में रस लेता है । जीवन का असली आनन्द इसी प्रकार उठाया जा सकता है –

'' मैं कोई कायर आदमी नहीं हूँ, जीने में रस लेता हूँ ''[82]

कांति कुमार दुष्यंत कुमार की इस तरह की कृतियों के सन्दर्भ में लिखते हैं – ''जीवन के उदात्त मूल्यों की उपेक्षा कर आम भारतीय का भौतिक सुविधाओं एवं समृद्धि की नहर काटकर अपने आँगन तक ले आने की उसकी बेताबी और बेशर्मी हमारा हर दिन का सामान्य अनुभव है । फलत: आम भारतीय को इस दोमुँहेपन, स्वयं की बेइमानी का निरंतर अहसास उसे सीनातान कर, माथा ऊँचा कर जीने की शक्ति नहीं देती अपितु उसे समझौताकारी और 'टैक्टफुल' बना

देती है ।''[83]

नैतिक मूल्यों में आई गिरावट से कवि दुष्यंत कुमार क्षुब्ध दिखते हैं । अपने सभी संबंधों को खास माननेवाले कवि बेहद निजी संबंधों में होने वाले विघटन की प्रक्रिया को देखकर विस्मित है । हमें जन्म देने वाले माता–पिता, हमारी अच्छी परवरिश, शिक्षा-दीक्षा, कैरियर आदि के लिए ना जाने कितने बलिदान देते हैं । हमें हमारे पैरों पर खड़ा होने का गुर सिखाने वाले, हममें आत्मविश्वास गहराने वाले माता–पिता को जब हमारे सहारे की दरकार पड़ती है, तब हम अपने कर्तव्यों को विस्मृत कर, आगे बढ़ने की होड़ में, उन्हें जीते–जी मरने के लिए छोड़ देते हैं । संबंधों की इस त्रासदायक विडम्बना को अनावृत करते हुए कवि लिखते हैं –

'' बच्चे छलांग मार के आगे निकल गये,
रेले में फँसके बाप बिचारा बिछुड़ गया ।''[84]

प्रेम, जिसे मनुष्य की कोमलतम अनुभूति कहा जाता है, उसपर भी नई सभ्यता और संस्कृति का व्यापक असर पड़ा । व्यक्ति की निजत्व भावना ने प्रेम के प्रति प्रतिबद्धता को च्युत कर दिया है । व्यक्ति की समझौतावादी प्रवृति प्रेम जैसे भावुक संबंधों में भी समाहित हो गयी । प्रेम संबंधों में स्थायित्व और प्रतिबद्धता की बात बेमायने हो गयी । नैतिक अवमूल्यन इस कदर जारी रही कि छोटी-छोटी बातों पर संबंध सहजता से टूटने लगे । कवि विस्मित है यह देखकर कि संबंधों के टूटने की कसक और टीस इन्हें नहीं कचोटती । 'एक समझौता'

शीर्षक कविता में हृदय के सबसे कोमलतम भाव 'प्रेम' के दुख:द परिणति को अभिव्यंजित कर कवि व्यक्ति के जीवन यथार्थ को साक्षात् कर देते हैं –

" वह .....
अब मेरी प्रेमिका नहीं है ।
हमें जोड़ने वाला पुल
बाहरी दबाबों से टूट गया ।
अब हम बिना देखे
एक-दूसरे के सामने से निकल जाते हैं ।"[85]

इस तरह कहा जा सकता है कि अपने समय के सांस्कृतिक विघटन को कवि ने व्यापक स्तर पर चित्रित किया है ।

समग्रत: दुष्यंत कुमार के काव्य में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति अत्यंत सशक्त ढ़ंग से हुई है । उनका सामाजिक बोध व्यापक स्तर तक विस्तारित है । बकौल रोहिताश्व –" वे न केवल समकालीन घटनाक्रम, शासक वर्ग और आम जनता के संघर्ष के बीच पक्षधरता का रूख अपना लेती हैं, बल्कि अपनी रचना-दृष्टि और मानवीय उदात्तता के बल पर कालजयी मूल्यों की धरोहर बन जाती है ।"[86]

कवि समाज में घटने वाले प्रत्येक क्रिया-व्यापार को अपनी जन-सापेक्ष दृष्टि से देखते हैं, उसके अंतर्विरोधों को विश्लेषित करते हैं । समाज और

सामाजिक व्यवस्था व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए बेहद जरूरी है । एक इकाई के रूप में व्यक्ति हमेशा अपूर्ण रहता है । समाज व्यक्ति को पूर्ण करता है । समाज के सम्पर्क में आकर व्यक्ति अपनी मौलिक जरूरतों को पूरा करता है । अपने जीवन को बेहतर से बेहतर बनाता है । समाज उसे खुलकर जीने का, अपनी इच्छाओं को पूरा करने का मौका देती है । किंतु यही समाज और समाज-व्यवस्था जब व्यापक व्यक्ति वर्ग के विरूद्ध होकर, अपने को कुछ विशेष लोगों तक संकुचित कर लेती है, तब समाज में अव्यवस्था, अराजकता, असमानता, विसंगति और विद्रूपता का उद्‌भव होता है । दुष्यंत कुमार ने अपनी रचनाओं में इसी असमानता से उत्पन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विसंगति और विद्रूपता को केंद्रित किया है । कवि के चिंतन की परिधि व्यापक है, यही वजह है कि उनकी कविताओं में समसामयिक सामाजिक यथार्थ का हरेक पहलू चित्रित है । उनकी छोटी-छोटी कविताएँ यथार्थ के विराट् रूप को उजागर करने में पूरी तरह से समर्थ हैं । वे सामाजिक यथार्थ के समग्र चितेरे कहे जा सकते हैं ।

सन्दर्भ-सूची :

1. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग– 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 125

2. वही, पृष्ठ संख्या – 120

3. वही, पृष्ठ संख्या – 23

4. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007 , पृष्ठ संख्या – 139

5. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007 , पृष्ठ संख्या – 378

6. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 264

7. वही, पृष्ठ संख्या – 287

8. उद्धृत सुधीर डॉ. वेददान, भारतीय संविधान और राजनीति, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 01

9. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 282

10 सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 349

11. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 255

12. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 385

13. वही, पृष्ठ संख्या – 226

14. सं.– अरूण कमल, आलोचना, सहस्त्राब्दी अंक–38, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 113

15. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 271

16. वही, पृष्ठ संख्या – 271

17. वही, पृष्ठ संख्या – 271

18. वही, पृष्ठ संख्या – 289

19. वही, पृष्ठ संख्या – 269

20. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 382

21. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 267

22. वही, पृष्ठ संख्या – 254

23. सं.– डॉ. रघुवंश, आधुनिक कवि: निराला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999, पृष्ठ संख्या – 58

24. सं.– अरूण कमल, आलोचना, सहस्त्राब्दी अंक–38 , नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 108

25. वही, पृष्ठ संख्या – 116

26. सं.– विजय बहादुर सिंह , दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 266

27. वही, पृष्ठ संख्या – 280

28. वही, पृष्ठ संख्या – 284

29. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 103

30. सं.– विजय बहादुर सिंह , दुष्यंत रचनावली भाग–4 , किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 172

31. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–1 , किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 68

32. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–4, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 203

33. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई

दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 261

34. वही, पृष्ठ संख्या – 121

35. वही, पृष्ठ संख्या – 263

36. वही, पृष्ठ संख्या – 270

37. वही, पृष्ठ संख्या – 291

38. इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य : समय,समाज और संवेदना, सं. – रवींद्रनाथ मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2011, पृष्ठ संख्या – 03

39. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 133

40. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 204

41. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 283

42. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –214

43. वही, पृष्ठ संख्या – 119

44. वही, पृष्ठ संख्या – 119

45. सोलजी, समय के सरोकार, शिल्पायन, दिल्ली, 2004, पृष्ठ संख्या – 115

46. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –147

47. वही, पृष्ठ संख्या – 228

48. वही, पृष्ठ संख्या – 286

49. वही, पृष्ठ संख्या – 228

50. वही, पृष्ठ संख्या – 266

51. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –142

52. वही, पृष्ठ संख्या – 143

53. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 261

54. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –142

55. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 262

56. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –166

57. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –263

58. वही, पृष्ठ संख्या – 264

59. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–4, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 277

60. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 488

61. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 217

62. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 203

63. वही, पृष्ठ संख्या – 203

64. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –245

65. वही, पृष्ठ संख्या – 277

66. वही, पृष्ठ संख्या – 278

67. वही, पृष्ठ संख्या –282

68. वही, पृष्ठ संख्या –282

69. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 65

70. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 403

71. वही, पृष्ठ संख्या – 404

72. वही, पृष्ठ संख्या – 285

73. वही, पृष्ठ संख्या – 285

74. वही, पृष्ठ संख्या – 286

75. वही, पृष्ठ संख्या – 134

76. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–4, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –158

77. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –134

78. वही, पृष्ठ संख्या –348

79. वही, पृष्ठ संख्या –348

80. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 67

81. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई

दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –165

82. वही, पृष्ठ संख्या –165

83. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या –104

84. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –277

85. वही, पृष्ठ संख्या –201

86. रोहिताश्व, काव्य-सृजन और शिल्प-विधान, रोहिताश्व, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2006,पृष्ठ संख्या –87

अध्याय-4

दुष्यंत कुमार की कविता में व्यंग्य

1. व्यंग्य
2. व्यंग्य का उद्देश्य
3. राजनीतिक व्यंग्य
4. सांस्कृतिक व्यंग्य
5. साहित्यिक व्यंग्य

सन्दर्भ-सूची

स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक परिवेश से उपजी विडंबना और विसंगति के कारण भारतीय समाज में व्याप्त मानवीय मूल्य और आदर्श हाशिए पर चले गये । आजादी के पश्चात् राजनीति सत्ता–लिप्सा, अवसरवादिता और भाई–भतीजावाद का पर्याय बन गया । 'रामराज्य' का सपना दिखाकर जनता की सहानुभूति प्राप्त करनेवालों ने सत्तासीन होते ही 'रावण-राज्य' के दर्शन करा दियें । गांधीजी के 'हरिजनों' को हरि के भरोसे छोड़ दिया गया । समाजवाद के नाम पर जनता को भरमाकर 'पूँजीवादी समाजवाद' लाया गया और पूँजीपतियों को प्रसन्न किया गया । वह ऐसा समय था, जब आम–जन की आशा-आकांक्षाएँ, उनकी मूलभूत जरूरतें राजनेताओं की स्वार्थ-सिद्धि के आगे होम कर दी जा रही थीं । आजादी उपरांत तथाकथित अपनों द्वारा आम-जन का जो शोषण हुआ, जिस तरह से उनकी भावनाओं को छला गया, उनके अधिकारों का हनन किया गया, उससे आमजन में भारतीय राजनीति और राजनेताओं के प्रति गहरा क्षोभ और आक्रोश उत्पन्न हुआ । फलत: समाज में मोह भंग की स्थिति आ गई । राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य पर जो उथल-पुथल मची हुई थी, उसने तत्कालीन जन प्रतिबद्ध रचनाकारों को आन्दोलित किया । आमजन से जुड़े हुए रचनाकारों के लिए समाज की यह दुर्दशा स्वीकार्य नहीं हुई । फलत: उन्होंने प्रतिक्रिया जाहिर की । आक्रोश और विद्रोह की अभिव्यक्ति में इन कवियों का स्वर प्रहारात्मक हो गया, जिसे व्यंग्य कहा गया । आरम्भ में व्यंग्य का प्रयोग एक शैली के रूप में होता था, पर वर्तमान

समय में यह साहित्य की एक स्वतंत्र और प्रमुख विधा है । स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में सामाजिक यथार्थ अंकन को बल मिलने के साथ ही व्यंग्य प्रचलित होने लगा । व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक यथार्थ सशक्त ढ़ंग से अनावृत्त हो पाता है । अत: कहा जा सकता है कि व्यंग्य सामाजिक यथार्थ को प्रकट करने के लिए अनिवार्य हैं ।

1. व्यंग्य

विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने ढ़ंग से व्यंग्य को परिभाषित किया है । आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में व्यंग्य के बारे में लिखा हुआ है –‘‘व्यंग्य वह पद्य अथवा गद्य-रचना है जिसमें प्रचलित दोषों अथवा मूर्खताओं का, कभी-कभी कुछ अतिरंजना के साथ मजाक उड़ाया जाता है । इसका अभीष्ट किसी व्यक्ति-विशेष अथवा व्यक्तियों के समूह का उपहास करना होता है ; अर्थात, जो एक व्यक्तिगत आक्षेप-लेख के समान होता है ।’’[1] इस परिभाषा के अनुसार व्यंग्य वह विधा है जिसमें हँसी-मजाक द्वारा गलती की आलोचना की जाती है । हास्य व्यंग्य का एक गुण है और यह आक्रोश को व्यक्त करने का धारदार तरीका भी है ।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी व्यंग्य के बारे में लिखते हैं –‘‘व्यंग्य वह है, जहाँ कहनेवाला अधरोष्ठों में हँस रहा है और सुननेवाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहनेवाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो

जाता हो ।''[2] द्विवेदीजी मानते हैं कि व्यंग्य में ऐसी प्रहारात्मक शक्ति होनी चाहिए कि जिसपर प्रहार किया गया हो वह असहाय और निरूत्तर हो जाए । उनकी दृष्टि में सार्थक व्यंग्य वही है, जिसकी चोट नासूर बनकर हमेशा आत्मा को कचोटती रहे ।

हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई व्यंग्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं – ''व्यंग्य जीवन से साक्षात्कर कराता है, जीवन की आलोचना करता करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का परदाफाश करता है ।''[3] परसाईजी मानते हैं कि व्यंग्य के माध्यम से समाज की समीक्षा बेहतर ढ़ंग से हो पाती है । व्यंग्यकार आलोचनात्मक रवैया अपनाते हुए समाज में सामान्य-सी दिखने वाली परिस्थितियों के मूल में छिपे शोषण और विसंगति को उघारकर हमें समाज का वास्तविक चेहरा दिखाने का कार्य करता है । व्यंग्य हमारी चेतना को उद्‌बुद्ध कर हमें हमारी सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक और सचेत करता है ।

भवेश कुमार महतो 'व्यंग्य वार्ता' पत्रिका में प्रकाशित अपने एक आलेख में लिखते हैं – ''व्यंग्य विद्रूपताओं से उपजता है । चेतना के लिए बात करता है । परिस्थिति को सचित्र दिखाने का कार्य करता है ।''[4] भवेश कुमार महतो मानते हैं कि व्यंग्य हमें चेतनाशील बनाता है ।

बेढब बनारसी व्यंग्य के संबंध में लिखते हैं – ''जब किसी व्यक्ति

या समाज की बुराई या न्यूनता को सीधे शब्दों में न कहकर उल्टे या टेढ़े शब्दों में व्यक्त किया जाता है तब व्यंग्य की सृष्टि होती है ।''[5]

सुवास कुमार व्यंग्य में 'शिकारी या खोजी कुत्ता' की विशेषताओं को देखते हैं –''व्यंग्य समय की सारी जटिलताओं की सरल पहचान कराता है, कुछ वैसे ही, जैसे शिकारी या खोजी कुत्ता अपराध–स्थल को सूंघकर अपराधी का ठीक सुराग लगा लेता है । इस तरह व्यंग्य का अनिवार्य रिश्ता समय और समाज की गड़बड़ियों से होता है । व्यंग्यकार गड़बड़ियों से टकराता तो वर्तमान में ही है मगर वर्तमान के उलझे सूत्रों को सुलझाते हुए भूत-भविष्य से भी निरंतर 'संवाद' स्थापित करता रहता है ।''[6] आलोचक यहाँ व्यंग्य को परिभाषित करते हुए उसके कार्यो की व्याख्या करते हैं । व्यंग्य मूलत: समाज के प्रति व्यंग्यकार की घनिष्टता का परिचायक है । व्यंग्य के द्वारा परिस्थितियों का मूल्यांकन भूत-भविष्य और वर्तमान तीनों सन्दर्भ में किया जा सकता है । खोजी प्रवृति व्यंग्य की सर्वप्रमुख विशेषता होने की वजह से समस्या और विसंगतियों के मूल में छिपे हुए कारण परत-दर-परत उघड़कर प्रत्यक्ष हो जाते हैं ।

मेरिडिथ व्यंग्यकार के बारे में लिखते हुए उसके कार्यो पर विचार करते हैं – ''व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है । बहुधा वह समाज की गन्दगी की सफाई करने वाला होता है । इसका कार्य सामाजिक विकृतियों की सफाई करना होता है ।''[7] (The satrist is a moral agent, often a social

seavenger working on a storage of Biles) मेरिडिथ मानते हैं कि व्यंग्य के माध्यम से समाज में विसंगति, मिथ्याचारण, व्यभिचार, असामंजस्य, जो भी अनीतिपूर्ण आचरण कार्य करते हैं, वह परिष्कृत हो जाता है । व्यंग्य नीति का समर्थक होता है । वह रेचक की तरह कार्य करता है इसीलिये उसका निशाना हमेशा सामाजिक विकृति फैलाने और अनैतिक कार्य करनेवाले व्यक्ति ही होते हैं ।

ए. निकोल व्यंग्य के तीखेपन और आक्रामक रवैये को केंद्रित करते हुए लिखते हैं – ‘‘व्यंग्य बहुत तीखा वार करता है । इसमें कोई नैतिक बोध नहीं होता । इसमें दया, विनम्रता एवं उदारता का लेशमात्र भाव भी नहीं होता । व्यक्ति के शारीरिक गठन पर कभी–कभी पूरी निर्दयता से प्रहार करता है, यह व्यक्तियों के चरित्र पर आक्रमण करता है । यह युग की समूची परिस्थितियों की धज्जियाँ किसी को भी क्षमा किये बगैर उड़ाता है ।’’[8] आलोचक का मानना है कि व्यंग्य की प्रवृति प्रहारात्मक होती है । प्रहार व्यंग्य का सर्वप्रमुख कार्य है । व्यंग्य का स्वरूप कठोर होता है क्योंकि व्यंग्य विसंगतियों की उपज होती है ।

इसी तरह सदरलैंड व्यंग्यकार को न्यायधीश के पद पर बैठाते हुए लिखते हैं –‘‘व्यंग्यकार का कार्य न्यायधीश की भाँति न्याय-पालन कराने का तथा शिष्ट समाज की मर्यादाओं की रक्षा करना है । उसका कार्य नर-नारियों को नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक, एवं अन्य कसौटियों पर खरे उतरने के लिए सचेत करने का है ।’’[9] प्रो. सदरलैंड व्यंग्य के सामाजिक परिप्रेक्ष्य की ओर इंगित करते हैं । व्यंग्य

व्यक्ति के विवेक को जागृत कर उसे सही और गलत का भेद करना सिखाता है। इसकी टीस व्यक्ति को झकझोर कर रख देती है।

समग्रत: व्यंग्य रचनाकार की सामाजिक चिंता से निसृत: एक प्रतिबद्ध भावना है। यह मानवतादी रचनाकार के लिए वह सृजनात्मक हथियार है, जिसके द्वारा वह समाज में निहित मानव-विरोधी प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार करता है और हमें भी गम्भीरता से विचार करने के लिए बाध्य करता है। व्यंग्य अनावृत्त सत्य को सहजता से आवृत करने में समर्थ हैं। व्यंग्य की सृष्टि तभी होती है, जब रचनाकार व्यक्ति और समाज के साथ हुए अन्यायों को स्वयं गहराई से महसूस करता है और उसे दूर करने के लिए कटिबद्ध होता है। अत: यही कहा जा सकता है कि व्यंग्य मूलत: मानवीय दृष्टि है। उसका ध्येय और प्रदेय केवल और केवल समाज की इकाई मनुष्य की बेहतरी है।

2. व्यंग्य का उद्देश्य

व्यंग्य मूलत: विसंगति और विडंबनाओं की उपज होता है। समाज में जो भी अंतर्विरोध, विसंगति और विडंबना व्याप्त है, उस पर आक्रोश और विद्रोह प्रकट करने का सबसे सशक्त माध्यम व्यंग्य ही है। व्यंग्य में टीस पैदा करने की अद्भुत शक्ति होती है। उसकी इसी शक्ति के द्वारा रचनाकार अपनी बेलाग प्रतिक्रिया का स्वर सशक्त कर पाता है। व्यंग्य का मूल उद्देश्य अपने समय के

यथार्थ को प्रकट करना है । इस सन्दर्भ में विनोद तिवारी का कथन उद्‌धृत है– ‘‘व्यंग्य की सबसे बड़ी ताकत होती है वह यह है कि उसके द्वारा परम्परा, रूढ़ि, अंधविश्वास, छल, छद्‌म, मूर्खता आदि को उद्‌घाटित करने के लिए विडम्बना, हास, उपहास, कटूक्ति का सहारा लिया जाता है । X X X यथार्थ के निर्मम उघाड़ के लिए व्यंग्य जैसी सशक्त प्रविधि दूसरी हो ही नहीं सकती ।’’[10]

मदालसा व्यास का मानना है –‘‘यह एक ऐसी विधा है, जो अपनी अभिव्यक्ति से ऐसे–ऐसे कार्य सम्पन्न कर सकती है जो अन्य विधाओं द्वारा सम्भव नहीं ।’’[11] सुवास कुमार तो सभी श्रेष्ठ रचनाओं को व्यंग्य मानते हैं – ‘‘व्यंग्य श्रेष्ठतम लेखन की आंतरिक प्रकृति होता है । श्रेष्ठ रचना चाहे वह किसी भी विधा में क्यों न हो, अनिवार्यत: और अंतत: व्यंग्य होती ही है ।’’[12]

रचनाकार जब भी समाज में कुछ असंगत, अनुचित, अव्यवस्थित और अन्यायपूर्ण होता हुआ देखता है, तो उसके दिलो-दिमाग में हलचल मच जाती है । उसकी वाणी तब तल्ख का रूप ग्रहण कर लेती है । राधेमोहन शर्मा लिखते हैं– ‘‘कवि व्यंग्य का प्रयोग तब करता है जब उसका हृदय बाह्य और आंतरिक विसंगतियों से विलोड़ित हो उठता है । व्यंग्य के द्वारा अर्थगत प्रहार होता है । व्यंग्य की मूल चेतना यही है ।’’[13]

सूर्यकांत नागर व्यंग्य के उद्देश्य के बारे में लिखते हैं –‘‘व्यंग्य का काम सामाजिक बुराईयों की आलोचना कर समाज को शिक्षित करना है, ताकि

विसंगतियों-विषमताओं के विरूद्ध एक वाजिब गुस्सा पैदा हो । इस दृष्टि से व्यंग्य आलोचनात्मक यथार्थ है । एक तरह की सामाजिक प्रतिबद्धता । इसमें जनहित की भावना निहित है ।''[14] किसी भी संवेदनशील और जन-प्रतिबद्ध रचनाकार के लिए समाज की दुर्दशा देखकर चुप रहना कठिन ही नहीं, नामुमकिन होता है । उसके हृदय का आक्रोश अभिव्यक्ति के लिए छटपटाने लगता है और इसी क्रम में उसका स्वर व्यंग्यात्मक हो उठता है । व्यंग्य सही अर्थों में रचनाकार की सक्रियता का प्रमाण है । वह सक्रियता जिसके सहारे वह घुटनशील समाज पर आलोचनात्मक प्रहार करता है ।

व्यंग्य समस्या का समाधान भी है । स्मिता चिपलूणकर लिखती है– ''व्यंग्य के आईने में व्यक्ति तथा समाज अपने आपको देख सकता है तथा अपनी कुरूपताओं, विकृतियों को स्पष्ट देखकर उससे मुक्त होने का प्रयत्न कर सकता है ।''[15] ऊपर से साफ-सुथरा और मानवीय दिखनेवाला समाज भीतर से कितना घिनौना और अमानवीय है, यह व्यंग्य के द्वारा ही सटीक ढ़ंग से व्यक्त हो पाता है । रचनाकार समाज के इस वीभत्स अनावृत्त सच की ओर व्यंग्यात्मक तरीके से हमारा ध्यान आकर्षित कर हमें जागरूक करता है । यह समाज में बदलाव लाकर, एक बेहतर समाज के निर्माण के लिए हमें प्रेरित करता है । हमारी चेतना को जगाना व्यंग्य का मूल ध्येय है ।

दुष्यंत कुमार मानते हैं कि व्यंग्य का स्वाद नीम की तरह कसैला

होता है । स्वाद में कसैला होकर भी यह अत्यंत प्रभावकारी है । जिस तरह नीम शारीरिक विकृतियों को दूर करने में सहायक है, उसी तरह व्यंग्य सामाजिक विकृतियों को दूर करने में सहायक होता है । कवि लिखते हैं – ‘‘एक नीम का स्वाद मेरी भाषा बना, जो सिर्फ तल्खी का नाम है ।’’[16]

दुष्यंत कुमार के सृजन-संसार में व्यंग्य का व्यापक स्वरूप दिखाई पड़ता है । आरम्भ से ही उनके हृदय में अन्याय, अत्याचार, विसंगति, असमानता आदि देखकर विक्षोभ उत्पन्न होता रहा है । आम जन की पीड़ा, उत्तेजना, अभाव, बेबसी, घुटन को कवि करीब से देखते हैं, उनके साथ तादात्मय स्थापित करते हैं, उनकी पीड़ा को महसूस करते हैं और पाते हैं कि समाज का रवैया आम-जन के प्रति अत्यंत क्रूर है । समाज का क्रूर रवैया उनके भीतर विद्रोह की वृत्ति को जन्म देता है । ‘जलते हुए वन का वसंत’ संग्रह की भूमिका में वे लिखते हैं – ‘‘मेरे लिए मनुष्य-मात्र की अवमानना सबसे अधिक कष्टप्रद है । उस पर मेरी प्रतिक्रिया नितांत व्यक्तिगत ढ़ंग से होती है ।’’[17] कवि के लिए प्रत्येक जनविरोधी स्थिति असहनीय है । वे अपनी सृजनशीलता को आम जन के पक्ष तथा शोषक वर्ग के विपक्ष में खड़ा करते हैं –

‘‘ मुझमें रहते है करोड़ो लोग चुप कैसे रहूँ ,
हर गज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है ।’’[18]

विजय बहादुर सिंह कवि दुष्यंत के बेलागपन को देखकर उन्हें 'दु:साहसी कवि' सम्बोधित करते हैं। सामाजिक प्रतिबद्धता से निष्पन्न उनका यह दु:साहस उनकी रचनाओं में पराकाष्ठा पर हैं। चाहे राजनीतिक विसंगति हो, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक या फिर साहित्यिक विसंगति, कवि ने बेखौफ और बेलाग तरीके से उसपर प्रहार किया है। देखा जाए तो दुष्यंत कुमार कबीर, निराला और नागार्जुन जैसे निर्भय व्यंग्यकारों की परम्परा की अगली कड़ी है। यहाँ कवि दुष्यंत कुमार के काव्य में निहित व्यंग्य के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक सन्दर्भों पर अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

3. राजनीतिक व्यंग्य

राजनीतिक गलियारों से दुष्यंत कुमार अच्छी तरह वाकिफ थे। रेडियो की नौकरी के दौरान दुष्यंत का बावास्ता कई राजनेताओं और सरकारी अधिकारियों से पड़ा। उनसे साक्षात्कार के दौरान कवि उनके दोहरे व्यक्तित्व से बखूबी परिचित हुए। दुष्यंत ने देखा कि आम जन के प्रति राजनेताओं की संवेदनशीलता और सहानुभूति अपने 'वोट बैंक' को बढ़ाने का कूटनीतिक चाल मात्र है। कोई भी राजनेता जनता के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को लेकर गम्भीर नहीं हैं। उनके लिए कुर्सी पर बैठने का मूल ध्येय है – अपनी आंकाक्षाओं को किसी भी सूरत में पूर्ण करना। दुष्यंत कुमार को किसी भी पार्टी से कोई विशेष

लगाव नहीं रहा क्योंकि वे देख रहे थें कि राजनीति के शीर्ष पर वही लोग विराजमान है, जो मानवता के पद से नीचे आ चुके हैं । इस सियासी रूप पर दुष्यंत लिखते हैं –

‘‘ मस्कहत आमेज होते हैं, सियासत के कदम
तू न समझेगा सियासत, तू अभी इंसान है ’’[19]

कवि आज के मनुष्य के प्रति प्रतिबद्ध है । उन्होंने लिखा भी है – ‘‘मैं प्रतिबद्ध कवि हूँ .... यह प्रतिबद्धता किसी पार्टी से नहीं, आज के मनुष्य से है ।’’[20] इस सन्दर्भ में धर्मवीर भारती का विचार प्रस्तुत है –‘‘प्रेमचन्द की तरह वे मानते थे कि साहित्य राजनीति और सभ्यता के आगे चलने वाली मशाल है, न कि उसका पालतू अनुचरत्व । इसीलिए उन्होंने अपनी चेतना को कभी किसी पार्टी या संगठन के पास न तो गिरवी रखा, न ही किसी के प्रति अपने पूर्वाग्रह पाले । विपरीत इसके उन्हें जहाँ भी मनुष्यता संकटग्रस्त दिखी, उसके कारणों में गये, मनन चिंतन किया और चिन्हित शत्रुओं को रेखांकित कर अवाम को सावधान और जागरूक किया ।’’[21]

दुष्यंत इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं थे कि राजनीतिज्ञ चाहे किसी भी विचारधारा के समर्थक क्यों न हो, जनता के प्रति उनकी सच्ची संवेदना भाषणों तक ही सीमित रहती है । जनता की भलाई के लिए किए गये सारे प्रण भाषण समाप्ति के पश्चात् हवा में विलीन हो जाते हैं । जनता झूठी आशा और हमदर्दी

लेकर घर वापस लौट जाती है और नेता अपनी जीत पर अट्टहास करता हुआ जनता को भरमाये रखने की नई नीति तैयार करने में व्यस्त हो जाता है । लेखन के आरंभिक दौर में लिखी गई एक अधूरी कविता 'क्यों अपने प्रण को भूल गये' में कवि झूठे वायदों से भोले–भाले मजदूरों को बहलाने वाले नेताओं की अच्छी खबर लेते हैं –

''हम सोशलिस्ट है, भारत में
मजदूर राज्य दिखला देंगे
पूँजीपतियों के छीन सभी
आसन, किसान बिठला देंगे
हैं तोड़ दिए सब नियम आज
जो कभी बनाए बापू ने
हैं छोड़ दिए सब मार्ग आज
जो कभी दिखाए बापू ने
क्या यही स्वराज्य, हमारा है
जिसके हित 'शेखर' चले गए
श्री वीर बोस और भगत सिंह
अभिलाषा लेकर चले गए
क्यों अपने प्रण को भूल गए
जो किए कभी मजदूरों से ।''[22]

चुनाव पूर्व अपने वोट बैंक को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए नेतागण कई मनमोहक योजनायें लेकर वोटर के सामने यकायक अवतरित हो जाते हैं । उनकी योजनाओं में आम जन की दारूण व्यथा को कम करने का 'जादुई मरहम' रहता है । ताजुब्ब की बात यह है कि सत्तासीन होते ही इस 'जादुई मरहम' की डेट अनायास 'एक्सपायर' हो जाती है । सच तो यह है कि राजनीति में भ्रष्टाचार इस कदर फैल चुका है कि योजनाएँ या तो अपने गंतव्य (सामान्य जनता) तक पहुँचने से पहले ही सरकारी कार्यालय की फाइलों में घुटकर दम तोड़ देती है या उसकी दिशा बदलकर अंतत: पूँजीपति और नेताओं को ही लाभांवित किया जाता है । 'नदियों के ठहराव' और 'पानी के सुखने' जैसे बिम्ब के माध्यम से कवि दुष्यंत इन भ्रष्ट नेताओं की चालाकियों पर व्यंग्य कसते हैं –

'' यहाँ तक आते-आते सूख जाती है नदियाँ
मूझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा होगा ।''[23]

कवि मानते हैं कि समाज में व्याप्त अव्यवस्था, भूख, गरीबी, बेरोजगारी आदि के मूल में इन राजनेताओं की स्वार्थपरता ही है । जिस सरकारी धन का उपयोग इन समस्याओं को मिटाने के लिए होना चाहिए, उसका उपयोग राजनेताओं के भोगवाद को तुष्ट करने के लिए किया जा रहा है । इस अराजकता के कारण ही आम जन अपनी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष करने

को विवश है । आजादी उपरांत की गरीबी पर दुष्यंत कुमार आक्रोश व्यक्त करते हुए लिखते हैं –

‘‘ इस कदर पाबन्दी–ए–महजब कि सदके आपके
जब से आजादी मिली है मुल्क में रमजान है ।’’[24]

दुष्यंत कुमार के राजनीतिक व्यंग्य में एक तीव्र आक्रोश सहज दृष्टिगत है । उनका राजनीतिक व्यंग्य सीधे–सीधे आघात करनेवाला है । उसका नुकीलापन चुभाने की अद्‍भुत क्षमता रखता है । जिसका श्रेष्ठ उदाहरण आपातकालीन समय में लिखी गई रचनाएँ हैं । आपातकालीन तानाशाही के उस दौर में सत्ता के विपक्ष में बोलना अपने लिए खतरा मोल लेना था । ऐसी संकट की स्थिति में दुष्यंत चुपचाप हाथ बाँधकर कलम को विराम देकर सत्ता के सम्मुख नतमस्तक होने के बजाए प्रतिवाद का बिगुल बजाते हैं । वे तमाशाबीनों पर आक्रामक प्रहार करते हैं –

‘‘ मैं बेपनाह अंधेरे को सुबह कैसे कहूँ ,
मैं इन नजारों का अंधा तमाशबीन नहीं । ’’[25]

जिस आपातकाल में कवि और पत्रकार को पंगु बनाया जा रहा, उसी समय में कवि दुष्यंत अपना स्वर तेज करने में लगे हुए थें –

‘‘ यह जुबा हमसे सी नहीं जाती
जिन्दगी है कि जी नहीं जाती ।’’[26]

आपातकालीन समय में लिखा गया शेर –

‘‘ एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या यों कहो –
इस अंधेरी कोठरी में एक रोशनदान है ।’’[27]

ने तत्कालीन सत्तासीन सरकार को हिलाकर रख दिया था । एक सरकारी कर्मचारी होकर इस तरह की मुखर अभिव्यक्ति कवि के लिए काफी महँगी पड़ सकती थी । कवि से जवाब तलब किया गया । पर दुष्यंत के चालाकी भरे जबाव के समक्ष सरकार निरूत्तर हो गयी । आपातकाल के जनविरोधी राजनीति और निरंकुश शासन व्यवस्था पर कवि ने बहुत कुछ लिखा है । अपने समकालीन सृजनकारों में दुष्यंत कुमार ही मुखर रूप से आपातकालीन तानाशाही पर व्यंग्य करते हैं । उनका मानना था कि आपातकाल लगाकर तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने मानवाधिकार और जनतांत्रिक मूल्यों पर आघात किया है । ‘अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता’ हमारा मौलिक अधिकार है, उस अधिकार से वंचित करके का सीधा मतलब हुआ तानाशाही का प्रदर्शन करना । लोकतंत्र में तानाशाही की जगह नहीं होती । वे इन्दिरा गांधी द्वारा दिखाये गए समृद्धि और विकास के सब्जबाग पर चुटीला प्रहार करते हैं –

‘‘ रोज अखबार में पढ़कर ये ख्याल आया हमें
इस तरफ आती तो हम भी देखते फस्ले बहार ।’’[28]

दुष्यंत कुमार ने अपनी कई रचनाओं में तत्कालीन शासन–व्यवस्था की कटु आलोचना की है । इन्दिरा गांधी को सम्बोधित करते हुए वे शासन व्यवस्था की धज्जियाँ उड़ा देते हैं –

‘‘ रौनके जन्नत जरा भी मुझको रास आई नहीं,
मैं जहन्नुम में बहुत खुश था मेरे परवरदिगार ।’’[29]

आपातकाल में दुष्यंत कुमार द्वारा अपनाए गये आक्रामक तेवर के संबंध में कमलेश्वर लिखते हैं – ‘‘उसकी ग़ज़लें समय और समाज के सतत साहित्यिक पहरेदार की तरह लोकतांत्रिक सरहदों की निगहबानी भी करती रहीं, ताकि राजनीतिक तानाशाही ताकतें जनता के मानवीय और जनतांत्रिक अधिकारों, मर्यादाओं का अतिक्रमण न कर पाएँ । मैं नहीं समझता कि मानवाधिकार और जनतंत्र के मूल्यों पर मंडराते खतरों से रक्षा करने का इतना अहम् ऐतिहासिक क्षण किसी पुरातन या आधुनिक कवि के सामने आया हो । यहाँ तक कि विद्रोही कवि नागार्जुन भी भ्रमित रहे, लेकिन दुष्यंत कुमार ने उस आपातकालीन आपदा और खतरे का जिस तरह शब्द की शक्ति से सामना किया, वह उसे हिन्दी कविता की विद्रोह–मानवीय परम्परा की सारणी में एक जलती मशाल की तरह स्थापित करती है और वह मशाल आज भी हमें रोशनी दे रही है । निराला, मुक्तिबोध, अज्ञेय ने स्वतंत्राता के पच्चीस साल बाद आए इस तरह के आपातकाल का सामना नहीं किया था, विरोध करते भ्रमग्रस्त नागार्जुन के बिखरे हुए नुकीले शब्दों के होते हुए

भी, दुष्यंत ने अकेले दम प्रतिरोध और परिवर्तन की आकांक्षा की एक बड़ी भूमिका तैयार की थी ।''[30] आलोचक की मान्यता है कि दुष्यंत कुमार आपातकालीन समय में जिस साहस के साथ व्यवस्था से सीधे–सीधे मुठभेड़ करते हैं, वह साहस उस समय के बड़े-बड़े जन कवि नहीं कर पाये । तानाशाही व्यवस्था के समक्ष अपने कलम को विराम देकर तमाशबीन बनना, जन-प्रतिबद्ध कवि दुष्यंत को गँवारा नहीं था । कवि राजनेताओं की चालाकी देखकर समझ गये थें कि ये लोग बदलने वाले नहीं है । 'लफ्जों से' इन्हें नहीं समझाया जा सकता इसीलिए वे हंगामा खड़ा करना चाहते हैं ताकि जनता की आवाज इन तथाकथित जन-उद्धारकों तक पहुँच जाये –

> '' पक गई है आदतें, बातों से सर होगी नहीं ,
> कोई हंगामा खड़ा करो, ऐसे गुजर होगी नहीं ।''[31]

दुष्यंत कुमार की कविताएँ भ्रष्ट राजनीति में लोकतंत्र की दयनीय स्थिति पर प्रहार करती है । लोकतंत्र में जनता ही सर्वेसर्वा होता है, किंतु राजनेताओं की स्वार्थपरता ने लोकतंत्र के स्वरूप को विकृत कर दिया । आमजन को उनकी दयनीय स्थिति से मुक्ति दिलाने के लिए प्रतिबद्ध लोकतंत्र ने आमजन को संकट की स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है । लोकतंत्र के जरिये आमजन को दबाने का कुचक्र रचा जा रहा है । इसीलिए दुष्यंत कुमार लोकतंत्र पर लिखते हैं –

‘‘ तेरी जुबान है झूठी जम्हूरियत की तरह ,

तू एक जलील-सी गाली से बेहतरीन नहीं ।’’[32]

पूँजीपोषित लोकतंत्र में आमजन की स्थिति ‘झुनझुने’ की तरह है, जिसे इच्छानुसार बजाया जाता है –

‘‘ जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में

हम नहीं हैं आदमी, हम झुनझुने हैं ।’’[33]

इस सन्दर्भ में निर्मल वर्मा के विचार उल्लेखनीय है –‘‘जहाँ लोकतंत्र यदि एक हाथ से स्वीधानता और समता के अधिकार मनुष्य को देता है, तो पूँजीवादी तंत्र जादूगर के अदृश्य हाथ से उन्हीं अधिकारों को एक छाया, एक छलना में बदल देता है ।’’[34]

वर्तमान परिदृश्य में लोकतंत्र की हैसियत बस इतनी ही रह गई है कि वह पूँजीवादी तंत्र के इशारों पर बन्दर की तरह नाचती रहती है । पूँजीवादी तंत्र अपनी इच्छानुसार लोकतंत्र की आड़ में राजनीति का अमानवीय खेल खेलता है और बड़ी चालकी से जनता को उनके अधिकारों का लाभ उठाने से वंचित भी कर देता है । इस पूँजीवादी लोकतंत्र में संसद मामलों को ‘सुलझाने’ की जगह ‘उलझाने’ वाला स्थान बन चुका है । घटना छोटी हो या बड़ी, सामान्य हो या गम्भीर सभी के प्रति लचर रवैया अपनाया जाता है । संसद में मुद्दों को एक-दूसरे पर छींटाकशी करने और एक-दूसरे की कमी खोजकर अपनी कमी छिपाने के लिए

इस्तेमाल किया जाता है । दुष्यंत इस स्थिति पर लिखते हैं –

‘‘ पक्ष और प्रतिपक्ष संसद में मुखर है ।
बात सिर्फ इतनी है कि कोई पुल बना है ।’’[35]

कुछ मुद्दें बेहद सम्वेदनशील होते हैं, जैसे-भूख, बेरोजगारी, गरीबी, दलित आदि । इन संवेदनशील मुद्दों का इस्तेमाल राजनीति में बहुत होता है क्योंकि ये मुद्दें सत्ता पलटने की पूरी ताकत रखते हैं । राजनीतिज्ञ जनता के जज्बात और जरूरतों को सत्ता के खेल में मोहरे की तरह इस्तेमाल करते हैं । दुष्यंत लिखते हैं–

‘‘ भूख है तो सब्र कर रोटी नहीं तो क्या हुआ ,
आजकल दिल्ली में है जेरे बहस ये मुद्दा ।’’[36]

कवि ने राजनीति के हरेक पहलू को व्यंग्य का निशाना बनाया है । उनके राजनीतिक व्यंग्य के अंतर्गत चुनावी माहौल पर भी व्यंग्य मिलता है । चुनाव–पर्व नेताओं के लिए जागरण का सन्देश लेकर आता है । नेताओं की क्रियाशीलता यकायक बढ़ जाती है । संवेदना और सहानुभूति से लबरेज भाषण तैयार होने लगते हैं । नेतागण वातानुकूलित कमरे को छोड़कर झोपड़ी की ओर रूख करते हैं । गरीबों के साथ आत्मीय संबंध स्थापित करने की कोशिश करते हैं । कवि की जनोन्मुख दृष्टि से नेताओं की ये सारी चालबाजियाँ छिपी नहीं है । कवि नेताओं को व्यंग्यात्मक लहजे में ‘समझदार लोग’ सम्बोधित करते हुए उनकी चालाकियों से जनता को रूबरू करवाते हैं –

‘‘ समझदार लोग वे होते हैं
जो सवाल पैदा करते हैं
और उन्हें समाज में बिखरा देते हैं
ताकि लोग सवालों को सेते रहें
लफ्जों पर गर्दन हिलाते रहें
या पुरस्कार देते रहें
यानी इस बहाने लोगों में जरा सनसनी रहे
और यथास्थिति बनी रहे
वे जो चाहते हैं कि उनकी बात मान ली जाए
मुँह में भोंपू लगाकर चिल्लाते हैं
वे जानते हैं जबाव से ज्यादा जरूरी है
प्रचार
सत्य से ज्यादा गहरी है
असत्य की मार ’’[37]

दुष्यंत कुमार ने अपनी रचनाओं में राजनीतिज्ञों के कथनी और करनी के अंतर की समीक्षा की है । सरकार की कथनी और करनी में धरती और आसमान-सा फर्क होता है । सरकार जो कहती है, वह करती नहीं है और जो करती है, वह कहती नहीं । सरकार अपनी नाकामी को विपक्ष के सिर मढ़कर

केवल अपनी झूठी आत्म-प्रशंसा में व्यस्त रहती है । कवि नेताओं के इस अन्दाज पर लिखते हैं –

‘‘ वैसे सरकार कहती है –
विदेशों में हमारी कीर्ति फैली है
देश प्रगति कर रहा है
आदमी अब भूखा नहीं है
कीमतें गिर गई हैं
ये जो सूखा पड़ा है
ये जो कुछ मौतें हुई
इनके पीछे देश के दुश्मनों का
हाथ था
लोग उनसे सावधान रहें
हम चाहते हैं ’’[38]

ताज्जुब की बात है कि जिस देश में गरीबी और बेरोजगारी के कारण आत्महत्याएँ हो रही हैं, उस देश के उद्धारक झूठी आत्म-प्रशंसा द्वारा जनता को सच्चाई से दूर रखने की कोशिश में लगे हुए हैं । अजय बिसारिया कवि की राजनीतिक समझ पर लिखते हैं –‘‘जिस तरह वे अपने समय के राजनीतिक हालात को उनकी समस्त

जटिलताओं–जिनमें परिस्थितियाँ भी हैं, राजनीतिक चालबाजियाँ भी और उनका भोक्ता आमजन भी को रूपायित करते हैं, वह अद्भुत है ।''[39]

समाजवाद लाने का ढ़ोंग रचकर जिस तरह जनता को भरमाया गया, कवि ने उसपर अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है । तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने जनता को आश्वासन दिया कि समाजवाद द्वारा वे उनकी सारी मूलभूत जरूरतों को पूरा करेंगें । उनकी सारी समस्याएँ मिट जाएगी । समाज से गरीबी और बेरोजगारी खत्म हो जाएगी । अपने उद्धारकों के प्रति नतमस्तक भोली भाली जनता बीस वर्षो तक 'रोटी' के स्थान पर 'थाली में सजी हुए भाषण' और 'प्रेस की कतरनें' श्रद्धापूर्वक खाती रहीं । जनता भुखमरी से मरणासन्न हो गई, पर भूख की शिकायत नहीं की । ऐसी नतमस्तक भोली–भाली जनता के विश्वास पर 'पूँजीवादी समाजवाद' लाकर कुठाराघात किया गया । पूँजीवादी समाजवाद जिसे जनता की भूख, बेबसी, गरीबी, मूलभूत जरूरतों, आशा–आकांक्षाओं से कोई सरोकार नहीं था । आजाद भारत की यह तस्वीर अत्यंत भयावह थीं । जनता के साथ इस तरह का छलावा देखकर जनकवि दुष्यंत का दिमाग भन्नाने लगता है और इस गम में वे गाते-गाते चिल्लाने लगते हैं । इन रहनुमाओं पर कवि की प्रतिक्रिया बेहद तल्ख रूप में प्रकट होती है –

'' तुम्हारा आभारी हूँ रहनुमाओं
तुम्हारी बदौलत मेरा देश ,

यातनाओं से नहीं

फूलमालाओं से दबकर मरा है ।''[40]

एक ऐसा वक्त भी था जब हिन्दुस्तान की सुख, समृद्धि, वैभव, एकता, भाईचारा, त्याग, शांति को देखकर इसे 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था । भारत ज्ञान–विज्ञान, बल–बुद्धि, प्रतिभा, धर्म आदि सभी के लिए विश्व–प्रसिद्ध था । भारत की इस तस्वीर को कतिपय लोगों ने अपनी मदांधता, स्वार्थपरता, सत्ता–लोलुपता, अवसरवादिता के कारण धूमिल कर दिया है । स्थिति इतनी बदतर हो चुकी है कि हिन्दुस्तान अपने 'अस्तित्व को चिथड़े' में बचाए रखने के लिए संघर्षशील है । कवि हिन्दुस्तान की बदहाली को व्यंग्यात्मक तरीके से व्यक्त करते हैं –

'' कल नुमाइश में मिला था, वो चिथड़े पहने हुए,

मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान है ।''[41]

अरूण कुमार अपने एक लेख 'हिन्दी गज़ल : एक यात्रा' में दुष्यंत कुमार के राजनीतिक व्यंग्य के बारे में अपना मंतव्य प्रकट करते हुए लिखते हैं – ''दुष्यंत एक संवेदनशील शायर थे । अपने वक्त की पीड़ा से व्यथित उनका मन निरंतर सियासी बाजीगरी के तिलस्म को तोड़ने के लिए कसमसा रहा था । गमे–दौराँ के दर्द को उन्होंनें गमे–जानाँ दर्द बना लिया था । अपनी यातनापूर्ण संत्रस्त मन: पीड़ा को उन्होंने 'कबीर' की तरह ही गज़ल की भाषा में इस तरह से

ठाल दिया है कि वह उनके दौर की असलियत को खोलकर सामने रख देती है ।''[42]

समग्रत: दुष्यंत कुमार के काव्य में राजनीतिक व्यंग्य की बहुलता है । राजनीति का प्रत्येक सूक्ष्म पहलू उनके काव्य में चित्रित है । स्वतंत्रता पश्चात् की राजनीतिक चित्रों के अलावा आपातकालीन स्थितियों पर कवि का प्रहार देखते ही बनता हैं । राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त प्रत्येक जनविरोधी क्रिया पर कवि की तीखी प्रतिक्रिया रही है । यह प्रतिक्रिया कहीं मौन है तो कहीं मुखर, पर धारदार और तिलमिला देनेवाला है ।

4. सांस्कृतिक व्यंग्य

दुष्यंत कुमार ने अपनी रचनाओं में समसामयिक राजनीतिक विसंगतियों और विडंबनाओं को ही व्यंग्य का निशाना नहीं बनाया है, समसामयिक सांस्कृतिक क्षरण पर भी प्रहार किया है । स्वातंत्र्योत्तर पूँजीवादी संस्कृति ने अपने विकास के साथ भारतीय संस्कृति पर हमला करना शुरू कर दिया । मूल्य बदल गये, मान्यताएँ बदल गयी । रिश्ते-नाते, बाजार, घर सभी को पूँजी की कसौटी पर परखा जाने लगा । 'पर' की भावना विलुप्त होने लगी और 'स्व' की भावना का वर्चस्व बढ़ने लगा । प्रेम, अहिंसा, त्याग, साझेदारी जैसे मूल्य दम तोड़ने की स्थिति में पहुँच गये । समाज गहन सांस्कृतिक विघटन के दौर से गुजर रहा था । पूँजीवादी

सभ्यता मनुष्य को मशीन के रूप में परिवर्तित करने पर उतारू थीं । मशीन की ही तरह मनुष्य भी संवेदनशून्य होता जा रहा था । स्वातंत्र्योत्तर पूँजीवादी संस्कृति के वर्चस्व से भारतीय संस्कृति का जो अवमूल्यन हो रहा था, उसे कवि दुष्यंत की कविताओं में जगह–जगह देखा जा सकता है ।

दुष्यंत कुमार एक चेतना सम्पन्न सृजनकार है । भारतीय संस्कृति और सभ्यता से उन्हें गहन लगाव है । यही वजह है कि मूल्य-विघटन और संवेदनहीनता का शिकार स्वातंत्र्योत्तर सांस्कृतिक परिवेश उन्हें आहत करता है । समाज का बहुसख्यंक वर्ग (किसान, मजदूर) जहाँ दिन–रात एक करके अपने लिए, अपने परिवार के लिए दो वक्त की रोटी जुटाने में असमर्थ दिख रहा है, वहीं अल्पसख्यंक वर्ग (नेता, पूँजीपति) रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी जरूरतों से आगे बढ़कर भौतिक सुख–सुविधाओं का उपभोग करने के लिए तत्पर हैं । अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए यह वर्ग दूसरों की बेबसी और लाचारी का बेजा फायदा उठाता है । दूसरों को 'जरिया' बनाकर अपनी मंशा पूरी करते हुए इस वर्ग को तनिक भी झिझक नहीं होती है । कवि ऐसे मौकापरस्त संस्कृति से चिढ़ते हैं । मौकापरस्त संस्कृति के पोषक लोगों पर कवि लिखते हैं–

" मेरे दोस्त मैं तुम्हें खूब जानता हूँ
तुम टी0 टी0 नगर के एक बंगले में
सुख और सुविधा का जीवन

बिताने की कल्पना किये हो
तुम शासन की कुर्सी पर बैठे हुए
अपने हाथों में मुझे एक ढेले की तरह लिए हो
और बर्र के छत्तों में फेंक कर मुझे
मुस्करा सकते हो
मेरी पहुँच से बहुत दूर जा सकते हो ।''[43]

दुष्यंत कुमार की एक कविता है –'महत्वाकांक्षी'। यह कविता सांस्कृतिक अवमूल्यन को विराट् रूप में दर्शाती है । महत्वकांक्षाएँ मनुष्य के ऊपर इतनी हावी हो गई हैं कि मनुष्य उसके सामने बेबस और लाचार नजर आता है । महत्वकांक्षा मनुष्य को घसीटती हुई अंजान पथ पर ले जाती है, फिर भी वह उससे अपने को मुक्त नहीं कर पाता है । वह हमेशा मृग बनकर उसी महत्वकांक्षा रूपी मरीचिका के पीछे भागता रहता है । महत्वकांक्षाएँ मनुष्य के सतीत्व अर्थात् मूल्यों को भंग करने पर आमादा है, फिर भी मनुष्य अंधा, बहरा और गूंगा बना हुआ है । स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक परिवेश से पनपी इस संस्कृति में मनुष्य के लिए उसकी महत्वकांक्षा ही सर्वोपरि है । अपनी महत्वकांक्षा की पूर्ति के लिए वह अपने 'जमीर' तक को बेचने के लिए बेझिझक तैयार हैं । ऐसे महत्वकांक्षी मनुष्यों पर कवि का तीखा वार पड़ता है –

'' उसने जमीर बेच दिया है तो शक नहीं

वो शख्स कामयाब हुआ चाहता है अब ।''[44]

कवि जिस समय लिख रहे थे, उस समय उन्होंने छोटी–छोटी बातों में लोगों को प्रतिस्पर्धा करते हुए पाया । चतुर्दिक उन्हें एक-दूसरे को कुचलकर आगे बढ़ने वाले लोग दिखाई पड़े । आत्मीयता, सम्मान, सहयोग जैसी कोमल भावनाएँ विलुप्त होने लगी । इंसान-इंसान के मध्य एक बड़ी दरार नजर आने लगी । इस नैतिक अवमूल्यन को कवि 'एक सफर पर' जाते हुए बड़ी गहनता के साथ महसूस करते हैं –

'' बहुत बुरी हालत है , डिब्बे में
बैठे हुओं को
हर खड़ा हुआ व्यक्ति शत्रु
खड़े हुओं को बैठा हुआ बुरा लगता है
पीठ टेक लेने पर
मेरे भी मन में
ठीक यही भाव जगता है
मैं भी धक्कम-धू में
हर आने वाले को
क्रोध से निहारता हूँ
सहसा एक और अजबनी के बढ़ जाने पर

उठकर ललकारता हूँ ।''[45]

इस सांस्कृतिक अवमूल्यन की ही भयावह परिणति है – सम्वेदनहीनता । 'निजस्व' के वर्चस्व ने मनुष्य को इस कदर आत्मकेंद्रित बना दिया है कि अपने आसपास की घटनाओं से उसकी संवेदना तनिक भी आंदोलित नहीं हो रही । कवि इस स्थिति पर लिखते हैं –

'' हो कोई बारात या कि वारदात ,

अब किसी भी बात पर खुलती नहीं है खिड़कियाँ ।''[46]

कवि का यह व्यंग्य अत्यंत मार्मिक है । स्थिति अत्यंत चिंताजनक हो गई है । खिड़कियाँ अगर इसी तरह बन्द रही तो सामाजिकता जैसी भावना हाशिये पर आ जाएगी । मनुष्य जिसे 'सामाजिक' भी कहा जाता है, यह विशेषण उससे छिन जाएगा । भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता रामधारी सिंह 'दिनकर' अपनी प्रसिद्ध रचना 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग में हृदय प्रदेश की इसी शून्यता को लेकर चिंतित दिखलाई पड़ते हैं । भावनाएँ मनुष्य की बहुत बड़ी जरूरत है । जिज्ञासा, कौतुहलता आदि मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है । अंधी आधुनिकता की चपेट में आकर मानव इन सहजावृत्तियों को 'बेवकूफी' मानने लगा है । समाज में विस्तार पा रही इस नई तरह की तहजीब ने संबंधों की उष्मा को भी ठण्डा कर दिया है । स्वार्थ की अंधी दौड़ में महत्त्वकांक्षा की पूर्ति करते समय माँ–बाप 'अवांछित समान' और उनके द्वारा प्रदत्त 'नैतिक मूल्य और संस्कार', 'अवांछित ज्ञान' हो गये हैं । कवि इस

उपयोगितावादी भ्रष्ट संस्कृति की विसंगति पर करारा प्रहार करते हैं –

“ ऊपर उठने का हो इरादा गर पक्का
तो दो माँ-बाप को कुएँ में धक्का
उगनेवाली इस तहजीब के करिश्मे
जग देखे होकर इकदम हक्का बक्का ”[47]

कितना बड़ा अंतर्विरोध है, जो भारत देश श्रवण कुमार जैसे मातृ–पितृ भक्त बेटा पाकर धन्य हुआ, वही आज तथाकथित श्रवण कुमारों जो अपने जन्मदाता का अपमान और उपेक्षा करने में अपनी शान समझते हैं, को पाकर विलख रही है ।

दुष्यंत कुमार किसानी संस्कृति के पोषक है । किसानी संवेदना उनमें कूट–कूट कर भरी हुई है । सृजन कार्य से समय निकालकर वे किसानी जीवन जीने के लिए गाँव चले जाते थें । गाँव की गवँई संस्कृति उन्हें लुभाती थी । ग्रामीणों की सहजता, सरलता और भोलापन उन्हें आकर्षित करता है । पूँजीवादी संस्कृति के कुप्रभाव से अब गाँव भी बदल गये हैं । गाँव के संबंध में जो पारम्परिक अवधारणा थी, वह खत्म हो चुकी है । गाँव भी धीरे-धीरे शहर की विकृतियों को ग्रहण करते जा रहे हैं । आत्मीयता, सहजता, सरलता, स्वाभाविकता, नैसर्गिकता जो गाँव की विशिष्ट पहचान हुआ करती थी, अब वह लुप्त हो चुकी है । वहाँ के रीति-रिवाज, खान-पान, व्यवहार, आदर-सत्कार में परिवर्तन आ गया है । गर्मजोशी के साथ आगंतुकों का स्वागत करने लिए अब कोई नहीं आता । यहाँ

तक कि किसी को प्यासा पाकर लोटे में पानी पिलाने के लिए महरियाँ भी नहीं आती है । ग्राम्य जीवन के इस बदलाव पर कवि ने लिखा है –

‘‘ ओसारों में बैठे हुए बुढ़े बर्राते हैं ,
लोटे में जल भरकर महरियाँ नहीं आती
स्वागत नहीं करते बच्चे–राहगीरों पर
कुत्ते लहकाते हैं ।
इस ठहरी और सड़ी हुई गरमी में
कहीं भी पड़ाव नहीं मिलते
अँधेरे में दिखते नहीं दूर तक चिराग !
थके हुए पाँवों के जख्म
जलती हुई रेत में सुस्ताते हैं ।
यक–ब–यक तेजी से बदल गए हैं
गाँवों के पनघट और सुन्दरियों की तरह
– सारे, रिवाज ’’[48]

निर्मल वर्मा के विचारों को इस सन्दर्भ में देखा जा सकता है –‘‘अपने परिवेश से सहज लगाव जो एक भारतीय स्वाभाविक रूप से महसूस करता था– अपनी प्रकृति से लगाव, अपने परिवेश से सजग, पारम्परिक संबंध–आज वह बहुत कुछ विश्रृंखलित हो चुका है ।’’[49] ग्राम जीवन में भी संवेदनात्मक संबंध हाशिये पर आ

चुके हैं। वहाँ भी सांस्कृतिक विघटन व्यापक पैमाने पर जारी है।

विज्ञापन भी सांस्कृतिक विघटन के लिए जिम्मेवार है, ऐसा कवि का मानना है। उन्होंने विज्ञापन संस्कृति पर करारा प्रहार किया है। विज्ञापन के माध्यम से सच को झूठ और झूठ को सच बनाने की प्रक्रिया निरंतर जारी है। घर की दिवारों पर बड़े–बड़े लुभावने पोस्टर चिपकाकर उसमें आई दरार की सच्चाई को सहजता से छिपा दिया जा रहा है। सच से लोगों का ध्यान भटकाने के लिए विज्ञापन का बखूबी इस्तेमाल करनेवालों पर कवि का व्यंग्य देखते ही बनता है –

‘‘ अब किसी को भी नजर आती नहीं कोई दरार ,
घर की हर दीवार पर चिपके हैं इतने इश्तहार।’’[50]

कवि इस नए युग के अवतरण से अनिर्णय की स्थिति में है। उसे समझ नहीं आ रहा है कि क्या होगा। इस युग में सभी कुछ बदल गया है।‘यहाँ सब पड़ाव/ वर्तमान शंकाओं/ संदेहों/ आग्रहों–दुराग्रहों के चश्मों में/ सहज–सुलभ दृश्यों की तरह झिलमिलाते हुए/ लटके हैं’[51]। अतीत और आगत के मध्य एक बड़ा फासला है। नैतिक मूल्यों का क्षय हो रहा है। मनुष्य की असीमित भौतिक इच्छाओं ने शून्य की ऐसी अकल्पनीय स्थितियाँ पैदा कर दी है कि जीवन के सारे परम्परागत मूल्य बदल गये हैं और मनुष्य इसके अभाव में असहाय, दीन और विकल्पहीन होकर भकट रहा है –

‘‘ साक्षी है युग जिसमें

सिर्फ पाँवों तले की जमीन ही नहीं

बल्कि जीवन के मूल्य , तत्त्व , बदल गए ,

बदल गए –

महाकार पर्वत, मरूस्थलों में

समतल मैदानों में

जल के उद्दाम वेग

कल–कारखानों में ,

तीर्थ स्थल, मन्दिर और मस्जिद, मैखानों में,

दर्द, कामनाओं में,

मूल्य, भावनाओं में,

मानवीय संस्कार सामयिक विचारों में ,

आस्था, प्रतीक्षा में अवसर की,

बदल गई सारी परिभाषाएँ ईश्वर की !''[52]

दुष्यंत कुमार व्यापक दृष्टि सम्पन्न है । विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में व्याप्त व्यवसायिक संस्कृति के दुष्परिणाम को कवि ने अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है । इन जगहों पर भी व्यवसायिक संस्कृति के प्रभाव पड़ चुका है । गुरू-शिष्य संबंध विश्रृंखल होते जा रहे हैं । शिक्षा-दान, जिसे भक्तिकालीन कवि कबीर ने सर्वश्रेष्ठ दान बताया है, आज अर्थ-केंद्रित होते जा रहे

हैं । 'पढ़ने-पढ़ाने' की भावना भी परिवर्तित हो चुकी है । कवि 'प्रेम कविता' शीर्षक कविता में घटाओं को सम्बोधित करते हुए इस परिवर्तित गुरू-शिष्य संबंध पर व्यंग्य करते हैं । कवि घटाओं से कहते हैं –

" अलबत्ता अध्यापक विद्यार्थी तुमको रोकेंगे
पढ़ने–पढ़ाने से ये जी चुराते हैं
वे तुम्हें उपेक्षा से हिकारत से देखेंगे
यही दृष्टिकोण है इस युग का "[53]

निष्कर्षत: हम पाते हैं कि दुष्यंत कुमार के काव्य में सांस्कृतिक व्यंग्य बहुलता से उपलब्ध है । कवि ने सांस्कृतिक क्षरण को केवल अनावृत्त ही नहीं किया है, बल्कि उन परिस्थितियों पर भी गहन विचार किया है, जिसकी वजह से हमारी संस्कृति अपदस्थ हुई है । स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों ने मानव को अतिशय महत्त्वकांक्षी बनाया । आजादी की लड़ाई जो आरम्भ में अपने अस्तित्व, अपनी अस्मिता, अपनी पहचान की लड़ाई थी, कालांतर में सत्ता पर काबिज होकर अपने स्वार्थ को पूरा करने की लड़ाई बन गई । जिसके लिए नैतिक और मानवीय मूल्यों से सहज समझौता कर लिया गया । कवि मानते हैं कि अपनी सभ्यता और संस्कृति से पृथक होकर भले ही मानव अपने स्वार्थ को पूरा कर ले, किंतु मानवीय मूल्यों से पृथक हमारी कोई पहचान नहीं है । इसके बिना हम कृत्रिम और कमजोर है ।

5. साहित्यिक व्यंग्य

दुष्यंत कुमार के काव्य में हमें तत्कालीन साहित्यिक छद्‌मता पर भी व्यंग्य मिलता है । दुष्यंत के रचनाकाल में सप्तकीय कवियों की धूम मची हुई थी । ये कवि प्रयोग और नवीनता के नाम पर कोरी बौद्धिकता और कुंठा को सृजित कर रहे थें । कविता को कलात्मक उत्कर्ष से सुसज्जित करके प्रस्तुत किया जा रहा था । समाज से कविता का आंतरिक संबंध विछिन्न हो रहा था । दुष्यंत के लिए साहित्य की यह दुर्दशा असहनीय थी । ख्याति पाने के लिए कविगण रीतिकालीन कवियों की भाँति अपनी लेखनी से सहर्ष समझौता कर रहे थें । कुछ ऐसे भी रचनाकार थे जो यथार्थ के नाम पर घृणित यथार्थ को चित्रित कर स्वयं को महान् कवि मान रहे थें । कतिपय रचनाकारों को छोड़कर बाकी का जन-जीवन से कोई सरोकार नहीं था । कहा जा सकता है कि नयेपन और यथार्थ के नाम पर रचनाकार उस समय साहित्य में सड़ाध पैदा कर रहे थें । साहित्यिक प्रदेश प्रदूषित हो चुका था । साहित्यिक वैभव भी नष्ट हो रहा था। दुष्यंत कुमार ने ऐसे साहित्यिक परिवेश में साहित्य-सृजन की सार्थकता से अपने समसामयिक रचनाकारों को परिचित कराया । उन्होंने अपनी समाज–सम्बद्ध कृतियों के माध्यम से साहित्यिक गरिमा को पुनर्जीवित किया । कवि लिखते हैं –‘‘ मैं बराबर महसूस करता हूँ कि कविता में आधुनिकता का छद्‌म कविता को बराबर पाठकों से दूर करता गया है । कविता और पाठक के बीच इतना फासला कभी नहीं था, जितना आज है । इससे भी

ज्यादा दु:खद बात यह है कि कविता शनै:-शनै: अपनी पहचान और कवि अपनी शख्सियत खोता गया है । ऐसा लगता है, गोया दो दर्जन कवि एक ही शैली और शब्दावली में एक ही कविता लिख रहे हैं । इस कविता के बारे में कहा जाता है कि यह सामाजिक और राजनीतिक क्रांति की भूमिका है और यह दलील खोटी है । जो कविता लोगों तक पहुँचती नहीं, उनके गले नहीं उतरती, वह किसी भी क्रांति की संवाहिका कैसे हो सकती है ।''[54] इस कथन से स्पष्ट है कि कवि ने उसी कविता को महत्त्व दिया है जो जन के बीच से निकलकर जन के लिए हो । साहित्यिक पाखंड और विसंगतियों पर कवि ने अपनी अनगिणत रचनाओं में आक्रोश जाहिर किया है । साहित्य को जीवन के विविध अनुभवों का संचयन माना जाता है । इन जीवनानुभवों के लिए साहित्यकार का जीवन के बीच जाना आवश्यक होता है ताकि उसके अनुभव प्रामाणिक हो जाए । कोरी कल्पना से सृजित साहित्य जीवन का सटीक चित्र उपस्थित करने में असमर्थ होता है । मौलिकता का दंभ भरकर कोरी कल्पना के सहारे साहित्य रचना करनेवालों पर कवि कटाक्ष करते हैं –

'' खंड–खंड होकर जिसने
जीवन–विष पिया नहीं
सुखमय, सम्पन्न मर गया, जो जग में आकर
रिस–रिसकर जिया नहीं,

उसकी मौलिकता का दंभ निरा मिथ्या है

निष्फल सारा कृतित्व

उसने कुछ किया नहीं ''[55]

वास्तव में जीवन संघर्ष से प्राप्त कटु-तिक्त और मधुर अनुभव ही शाश्वत होते हैं । 'जीवन-विष' को पीनेवाला ही सार्थक और मौलिक रचना दे सकता है । यही मौलिकता रचना को जन से जोड़ती है । दुष्यंत मानते हैं कि कवि और जन की सत्ता एक-दूसरे से पृथक नहीं होती है, जन ही विविध रूप धरकर उनकी रचनाओं में प्रतिफलित होता है । दुष्यंत की सृजनात्मकता सामान्यजन को पाकर ही पूर्णत्व प्राप्त करती है –

'' प्राणहीन है वैसे मेरा तन

तुमको ही पाकर पूर्णत्व प्राप्त करता है

मुझको पहचानो तुम

पृथक नहीं सत्ता है ।''[56]

प्रेमशंकर लिखते हैं –''अनुभव की रचनाशीलता में रूपांतरित करते हुए रचना जिस द्वंद्व से गुजरती है, उस दर्द को दुष्यंत ने जाना है । उनमें यह अहसास मौजूद है कि रचना में सिर्फ मुखौटों से काम नहीं चल सकता ।

दुष्यंत ने जिस समय अपनी रचनायात्रा का आरम्भ किया आधुनिक और नयेपन का जोर था । ऐसे में उनकी रचनाएँ नयेपन के फैशन को देखते हुए

कुछ पिछड़ी हुई तक कही जा सकती है ।.........हर समझदार लेखक बखूबी जानता है कि सिर्फ फैशन के सहारे वह आगे नहीं जा सकता ।''[57]

दुष्यंत ऐसे कवि रहे हैं जिन्होंने अपने व्यापक अनुभव संसार को रचना में सृजित करते हुए, उसके मानवीय सरोकार को भी दृष्टि में रखा है । अत: फैशन के लिए उनके संवेदन संसार में कोई स्थान नहीं है । बुद्धिरस वाली नई कविता धारा के विरूद्ध टिप्पणी रूप में लिखी गई कविता 'प्रतिकुल राह' में समसामयिक साहित्यिक परिवेश को व्यापक रूप में देखा जा सकता है । सहज शैली में लिखी गई यह कविता पुरस्कार पानेवाले बड़े–बड़े साहित्यकारों की वास्तविकता को उजागर करते हुए पुरस्कार वितरण प्रणाली की विसंगतियों पर प्रहार करती है –

'' पुस्तकें मेरी छपीं
आलोचना निकलीं
मिला सम्मान, मुझको
गीत गाए स्वर बदलकर सौ तरह के
रंग जमाने के लिए साहित्य में
मैंने अनेकों कष्ट झेले
और तब जाकर कहीं पे
आज सब कुछ है

साँस गति से चल रही है
चैन से घर बैठ रोटी मिल रही है
अब नहीं चुभते मलय के वाण
तारे अब न मेरी नींद करते भंग
चारों ओर है साहित्य छाया ''[58]

कवि को जिस कृति पर सम्मान, ऐशो-आराम और भोजन मिला, वह कृति 'कवि के भाव, गीत, कवि की साधनाओं के अनुकुल नहीं था ये सारे पेंग थे, इसमें हृदय का सत्व और मनुष्यत्व भी नहीं था । फिर भी कवि की वह रचना तहलका मचाती है । इस कविता के द्वारा कवि ने साहित्यिक समाज की विद्रूपताओं पर चोटिला व्यंग्य किया है । साहित्यिक समाज की विडंबना यही है –

'' जो बेसुरे हैं वो मजमों के बीच जीते हैं
जो साज सुर में हैं उनकी कोई समात नहीं ।''[59]

साहित्यिक सम्मेलनों की सच्चाई को दुष्यंत कुमार की 'मित्र को एक पत्र' कविता में देखा जा सकता है । इन सम्मेलनों में साहित्य का सच नहीं दिखता, केवल झूठ, पाखंड, दिखावा, चापलूसी, अवसरवादिता ही दिखाई पड़ती है । ऐसे समारोह में साहित्य का सत्य कहीं दब जाता है । निकृष्ट लिखकर भी रचनाकार वाह–वाही और पुरस्कार पा लेता है । इतना ही नहीं, ऐसी रचनाओं को प्रकाशक भी सहज मिल जाते हैं । इन सभाओं की एक और तल्ख सच्चाई यह है

कि कुछ रचनाकारों की धूल पड़ी रचनाएँ चापलूसी के कारण 'बेस्ट सेलर' का खिताब पा लेती है । सच तो यह है कि इस तरह के साहित्यिक सम्मेलनों में साहित्यिक सरोकार कम और व्यक्तिगत सरोकार अधिक दिखता है । इन सम्मेलन के आयोजकों को भी खूब व्यक्तिगत लाभ मिलता है, भले ही आयोजन का वास्तविक उद्देश्य गर्त में ही क्यों न चला जाए । कुल मिलाकर इन सभाओं में साहित्यिक छद्मता ही दिखाई पड़ती है । 'मित्र को एक पत्र' कविता में मित्र को व्यंग्य का केंद्र बनाते हुए साहित्य–संसार की इस तल्ख सच्चाई पर प्रकाश डालते हैं –

'' और जो आए उन्हें
बुलाकर क्या फल पाया
कौन समस्या सुलझी
कितने मतवादों की बाढ़ हट गई
कितने भूखों को मिल गये
अन्न के दाने
कितने नंगों के शरीर पर वस्त्र आ गए
कितने नेताओं के आडंबर टूटे
कितने जीवन
जीने की यंत्रणा-व्यथा से त्राण पा गए

x x x

तीन दिन काफी रौनक रही
नई मित्रता हो गई
नए मित्र मिल गये
बहुत पुरानी कुछ रचनाएँ चल जाएँगी
कई नए सम्पादक
उलझा लिए जाल में ''[60]

जीवन यथार्थ को चित्रित करने वाले कवि दुष्यंत को अपने समकालीनों की काल्पनिक उड़ान अतिरेक लगती है । वे 'चाँद' को केंद्रित करके अपने समकालीन कवियों की काल्पनिक उड़ान पर व्यंग्य करते हैं –

'' पर आज के कवियों के चाँद
उनके आँगन की नीम पर बैठा रहता है
कहते हैं पत्तियों के जाल में उलझ गया है ।
क्यों जी ! क्या ऐसा भी सम्भव है ।''[61]

दुष्यंत मानते हैं कि कवि का असली धर्म 'जागरण और जन-उन्मेष' होता है । इसीलिए कवि को अपने धर्म से विमुख होकर काव्य-सृजन नहीं करना चाहिए । युगीन परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर लिखी गई कविता ही सार्थक होती है । कवि अपने समकालीन जन-निरपेक्ष कवियों पर व्यंग्य वाण खींचते हुए अपनी

जन-पक्षधरता को जाहिर करते हैं –

“ मुझसे पूछ रहे हो – ‘ओ कवि !
हरसिंगार के फूल क्या हुए
और क्या हुआ मधु गीतों को ?
मेरा उत्तर है कि – बंधुओं !
तृप्ति नहीं दी जा सकती है
प्रणय-गीत गा-गाकर इन भूखों-रीतों को ।”[62]

दुष्यंत की व्यंग्यात्मकता के बारे में मधु खराटे लिखते हैं –“व्यंग्य-विनोद में तो दुष्यंत कुमार काफी सिद्धहस्त थे । उनके व्यंग्य व्यथा से परिपूर्ण हुआ करते थे । यह व्यथा व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि की अधिक रहती थी ।”[63]

अस्तु, यह कहा जा सकता है कि युग जीवन जब विषण्ण और निर्जीव हो गया हो तब प्रेम गीत गाकर इसे बदला नहीं जा सकता । जिसके बारे में कविता लिखी जाती है, उसके साथ हृदयस्थ संबंध स्थापित करना जरूरी होता है । कवि का मानना था कि आयातित आधुनिकता को अपनाकर हम जनोन्मुख और जन–प्रतिबद्ध साहित्य नहीं लिख सकते । शब्दों को जोड़ देने मात्र से ही कविता निर्मित नहीं हो जाती । सच्ची कविता संघर्ष से सृजित होती है, जन के साथ हृदयस्थ तादात्म्य स्थापित करने से होती है । दुष्यंत कुमार की रचनाओं में साहित्य संसार का कटु यथार्थ चित्रित हुआ है । साहित्य जगत के मुखौटे को उघारने में

कवि सफल रहे हैं ।

निष्कर्षत: कवि दुष्यंत कुमार का व्यंग्य धारदार और सार्थक बन पड़ा है । व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को अनावृत कर, कवि हमें समसामयिक परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों से ही परिचित नहीं कराते, अपितु भविष्य के लिए भी दूरदृष्टि प्रदान करते हैं । सामान्यजन के लिए एक बेहतर भविष्य और मूलभूत जरूरतों की पूर्णता, प्रत्येक जनकवि का सपना रहा है । कवि दुष्यंत कुमार का भी सपना है कि समाज से विषमता और विसंगतियों का अस्तित्व मिट जाए तथा प्रत्येक व्यक्ति एक सुखद जीवन का उपभोग करें । उनका व्यंग्य इसी कामना को पूर्ण करने के लिए प्रतिबद्ध हैं । कवि दुष्यंत कुमार का व्यंग्य केवल राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक विसंगति और विद्रूपताओं को अनावृत ही नहीं करती, हमें जगाकर समाज के नवनिर्माण हेतु प्रेरित भी करती है । सार्थक व्यंग्य के कारण, कवि की रचनाएँ अपनी सामाजिक उपयोगिता की कसौटी पर पूरी तरह से खरी उतरती है । व्यंग्य के तीखे धार द्वारा सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने में कवि पूरी तरह से सक्षम हुए हैं ।

सन्दर्भ-सूची

01. उद्धृत, व्यास मदालसा, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1999, पृष्ठ संख्या – 01

02. द्विवेदी हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दसवी. आवृत्ति 2003, पृष्ठ संख्या – 131

03. https://sites.google.com/site/hindiebooks, Harishankar Parsai ki Vyangya Rachnayen, accessed on 31 Aug 2012 at 8:45

04. महतो भवेश कुमार, सम्पादक – प्रेम जनमेजय, व्यंग्य वार्ता (पत्रिका), अंक–29, अक्टूबर – दिसम्बर, 2011, पृष्ठ संख्या – 36

05. उद्धृत –शर्मा प्रो. राधेमोहन, हरिशंकर परसाई : व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि, भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति, 1999, पृष्ठ संख्या – 16

06. कुमार सुवास, गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या – 96

07. उद्धृत, व्यास मदालस, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1999, पृष्ठ संख्या – 01

08. उद्धृत, व्यास मदालसा, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1999, पृष्ठ संख्या – 02

09. उद्धृत, व्यास मदालसा, हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1999, पृष्ठ संख्या – 02

10. सं.– विजय बहादुर सिंह, वागर्थ (पत्रिका), अंक – 163, फरवरी 2009,पृष्ठ संख्या – 19

11. व्यास मदालसा , हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई , विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1999, पृष्ठ संख्या – 03

12. कुमार सुवास, गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या – 96

13. शर्मा प्रो. राधेमोहन, हरिशंकर परसाई : व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि, भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली, पहली आवृत्ति, 1999, पृष्ठ संख्या – 09

14. नागर सूर्यकांत, सं. – प्रेम जनमेजय, व्यंग्य वार्ता (पत्रिका), अंक – 29, अक्टूबर–दिसम्बर, 2011, पृष्ठ संख्या – 44

15. चिपलूणकर डॉ. स्मिता, हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार, अलका प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2001, पृष्ठ संख्या – 21

16. सं. – विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 146

17. वही, पृष्ठ संख्या – 140

18. वही, पृष्ठ संख्या – 288

19. वही, पृष्ठ संख्या – 288

20. वही, पृष्ठ संख्या – 240

21. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007, पृष्ठ संख्या – 103

22. वही, पृष्ठ संख्या – 155

23. सं. विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007, पृष्ठ संख्या – 262

24. वही, पृष्ठ संख्या – 288

25. वही, पृष्ठ संख्या – 291

26. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 281

27. वही, पृष्ठ संख्या – 288

28. वही, पृष्ठ संख्या – 291

29. वही, पृष्ठ संख्या – 291

30. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 121

31 सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 284

32. वही, पृष्ठ संख्या – 291

33. वही, पृष्ठ संख्या – 280

34. वर्मा निर्मल, शताब्दी के ढलते वर्षो में, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, चौथा संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या – 180

35. सं. – विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 284

36. वही, पृष्ठ संख्या – 266

37. वही, पृष्ठ संख्या – 212

38. वही, पृष्ठ संख्या – 212

39. सं.- कुँवरपाल सिंह और नमिता सिंह, वर्तमान साहित्य (पत्रिका), अंक–दिसम्बर, 2008 (दुष्यंत कुमार पर विशेष), पृष्ठ संख्या – 05

40. सं. – विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली , द्वितीय संस्करण 2007 , पृष्ठ संख्या – 183

41. वही, पृष्ठ संख्या – 288

42. सं.– त्रिभुवन सिंह और विजयबहादुर सिंह, साहित्यिक निबंध, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ संख्या – 101

43. सं. – विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 160

44. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली , द्वितीय संस्करण 2007 , पृष्ठ संख्या – 250

45. सं. – विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007, पृष्ठ संख्या – 151

46. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 266

47. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 286

48. सं.- विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग–2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या–144

49. वर्मा निर्मल, शताब्दी के ढलते वर्षों में, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, चौथा संस्करण, 2006 , पृष्ठ संख्या – 217

50. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 291

51. वही, पृष्ठ संख्या –181

52. वही, पृष्ठ संख्या –181

53. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 289

54. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 238

55. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 291

56. वही, पृष्ठ संख्या – 355

57. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 127

58. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 267

59. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 241

60. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 402

61. वही, पृष्ठ संख्या – 270

62. वही, पृष्ठ संख्या – 385

63. खराटे मधु, हिन्दी गज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1994, पृष्ठ संख्या – 10

अध्याय-5

दुष्यंत कुमार की कविता के कुछ अन्य पहलू

1. प्रेम
2. सौंदर्य
3. प्रंशसात्मक कविताएँ

   सन्दर्भ-सूची

दुष्यंत कुमार के काव्य-संसार में वर्णित सामाजिक यथार्थ जहाँ उन्हें अपने कतिपय समकालीन रचनाकारों से अलगाता है, वहीं उनके काव्य में निहित प्रेम और सौंदर्य के चित्र, प्रशंसात्मक कविताएँ, उनके कृतित्व को नई पहचान देती हैं । सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक अवमूल्यन, विसंगति और विद्रूपताओं के अलावा कवि ने प्रेम और सौंदर्य के जिन विविध पहलूओं को चित्रित किया है, वह उनके रचनात्मक वैविध्य को दर्शाता है । प्रेम–वर्णन में निजी प्रेम से लेकर देश–प्रेम और जन–प्रेम समाहित है । प्रेम उनके जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हैं । वे प्रेम को 'विश्व की सबसे अच्छी देन' और 'मानव का जन्मसिद्ध अधिकार' मानते हैं । दुष्यंत कुमार ने प्रेम और सौंदर्य के चित्र व्यापक स्तर पर अंकित किए हैं । उनके सौंदर्य–अंकन में वैविध्य दिखाई पड़ता है । उनकी रचनाओं में मानवीय सौंदर्य अंकन के अलावा प्रकृति का सौंदर्य भी अंकित हुआ है । प्रत्येक जनकवि की तरह कवि दुष्यंत कुमार भी श्रमशील सौंदर्य को सर्वश्रेष्ठ सौंदर्य मानते हैं । उनके सृजनात्मक जगत में निहित प्रशंसात्मक कविताएँ उनके रचनात्मक संसार का एक महत्वपूर्ण पहलू है । ये प्रशंसात्मक कविताएँ सच्चे अर्थों में, कवि दुष्यंत कुमार का उन महान विभूतियों के प्रति श्रद्धा और भक्ति का काव्यात्मक प्रकाशन है, जिन्होंने रचनाकार दुष्यंत कुमार के अंतर का संस्पर्श किया, उन्हें शोषित, अवहेलित, पीड़ित जन का अपना कवि बनाया । महात्मा गाँधी और नेताजी सुभाषचंद्र बोस वे महान राजनीतिक व्यक्तित्व थें,

जिन्होंने अपना तन-मन, सुख-चैन सबकुछ देश और सामान्यजन के लिए न्यौछावर कर दिया । इसी तरह महाकवि तुलसीदास और महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' हिन्दी साहित्य जगत के आधार-स्तम्भ है । हिन्दी साहित्य का विराट् और वैभवपूर्ण संसार इनकी प्रेरणा पर अवलम्बित है । इन दोनों कवियों ने हिन्दी साहित्य को वैश्विक पहचान दीं, नये रचनाकारों को दिशा दीं और समाज में मानवीय आस्थावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा की । इस अध्याय में दुष्यंत कुमार की कविता में निहित इन सभी पहलूओं पर अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

1. प्रेम

प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में स्थायी भाव के रूप में कई तरह की अनुभूतियाँ विद्यमान रहती हैं, उनमें से प्रेम मानवीय अनुभूति का सबसे कोमलतम रूप है । प्रेम सृजन है, प्रेम आस्था है, प्रेम समर्पण है, प्रेम अभिलाषा है । प्रेम हृदय की निकटतम दूरी है । प्रेम मानव जीवन का सर्वस्व है । हृदय प्रेम भाव–सम्पदा से सम्पन्न होते ही अपने प्रिय से निकटता का अहसास करने लगता है । दूरियाँ नजदीकियों में परिवर्तित होने लगती है । हर क्षण प्रिय का अहसास हृदय को आनन्दित करता रहता है । प्रेम में व्यक्ति की निजी सत्ता विलीन होकर अपने प्रिय के साथ इस तरह विन्यस्त हो जाती है कि दोनों में कोई खास पार्थक्य नहीं दिखता । प्रेम पूर्णता है । प्रेम में प्रिय के गुण और अवगुण दोनों को सहजता

से स्वीकार लिया जाता है । इस तरह प्रेम में दो अपूर्ण व्यक्ति एक-दूसरे को पूर्ण करते हैं । यह एक ऐसा भाव है, जिसमें प्रिय की निठुरता भी हृदय को भाती है । प्रेम में पगा हृदय मानवीय चेतना से आपूरित, उदार और संवेदनशील होता है । उसमें समस्त संसार के लिए करूणा और स्नेह विद्यमान हो जाता है । वास्तव में प्रेम व्यक्ति और समाज के सही और संतुलित विकास के लिए एक आवश्यक भाव है । प्रेम के कारण ही व्यक्ति का सामाजिकरण हो पाता है । प्रेम जोड़ने का कार्य करता है–व्यक्ति से व्यक्ति को और व्यक्ति को समाज से । सामान्यत: जो व्यक्ति या वस्तु हमें अच्छी लगती है, जिसका प्रभाव हमारे मन–मस्तिष्क पर छाया रहता है और हम अपने–आप को उससे पृथक नहीं कर पाते हैं, वही भाव प्रेम है । प्रेम हमारे जीवन में रचा–बसा है । प्रेम से पृथक हम अपने अस्तित्व की परिकल्पना भी नहीं कर सकते हैं । प्रेम कई रूपों में हमारे अंतर्मन में विद्यमान है । प्रेम केवल स्त्री–पुरूष तक ही सीमित नहीं है । इसका विस्तार प्रकृति से लेकर समस्त चराचर जगत तक है । प्रेम के मूल में आकर्षण होता है । बिना आकर्षण के प्रेम की उत्पत्ति असम्भव है । यह आकर्षण कहीं शारीरिक सौंदर्य के प्रति है तो कहीं आत्मिक सौंदर्य के प्रति । प्रेम के इसी महात्मय को समझते हुए भक्तिकाल के संतकवि कबीरदास ने कहा कि जिस हृदय में प्रेम नहीं है, वह हृदय श्मशान है । उन्होंने सबसे बड़ा ज्ञानी उसे माना जिसका हृदय प्रेम-भाव से आपूरित है । प्रेम हमेशा से साहित्य का केंद्रिय विषय रहा है । मानव-हृदय की इस प्रमुख वृत्ति को

प्रत्येक युग के रचनाकारों ने अभिव्यक्ति दी है । आदिकाल के कवि चन्दबरदाई ने जहाँ 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज चौहान और संयोगिता के लौकिक प्रेम को जीवंत किया है, वहीं भक्ति के रूप में भक्तिकालीन सगुण धारा के कवि सूरदास ने कृष्ण और गोपियों के एकनिष्ठ प्रेम को भ्रमर-गीत प्रसंग में जीवंत कर दिया है । प्रेममार्गी शाखा के कवि जायसी ने सूफी प्रेमकाव्य लिखकर लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की सफल नियोजना की है तो रीतिकालीन कवि घनानन्द ने रीतिकालीन सामंती प्रेमावृत्ति से प्रेम को मुक्त कर प्रेम के पावन और निर्मल स्वरूप की प्रतिष्ठा की । छायावादी कवियों ने स्वच्छन्द प्रेम की अभिव्यंजना की है तो छायावादोत्तर युग के कुछ कवियों ने प्रेम को यौन कुंठा का पर्याय बना दिया । वर्तमान समय वैश्वीकरण और बाजारीकरण का है । आज के प्रेम में वैश्वीकरण और बाजारीकरण का प्रभाव व्यापक रूप में परिलक्षित होता है ।'वेलेंटाइन डे' जैसे आयोजनों ने प्रेम-भावना को विस्तारित तो किया है, पर उसका नकारात्मक पक्ष ही ज्यादा दिखाई देता है । साम्प्रतिक समय में प्रेम एक पवित्र भाव के स्थान पर प्रदर्शन की वस्तु बनता जा रहा है ।

हिन्दी के कई विद्वानों ने प्रेम को परिभाषित किया है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल प्रेम को परिभाषित करते हुए लिखते हैं – ''सामान्यत: सुख देनेवाली या चिरकाल से साथ रहनेवाली वस्तुओं के प्रति राग और दु:ख देनेवाली वस्तुओं के प्रति द्वेष का बीज सबके हृदय क्षेत्र में ढँका रहता है । यही राग जब अंकुरित

या व्यक्त होकर किसी व्यक्ति–विशेष की ओर पहले पहल उन्मुख होता है, तब ‘लुभाना’ कहलाता है और जब उस विशेष में जाकर स्थिर हो जाता है, तब ‘प्रेम’ कहा जाता है।’’[1] शुक्लजी ने दो बातों की ओर इशारा किया है। प्रथम यह कि प्रेम राग की पराकाष्ठा है। किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति जब भावनायें घनिष्ट हो जाती है, तब प्रेम का उद्भव होता है। दूसरी बात यह है कि प्रेम में चित्त किसी एक के प्रति ही एकनिष्ठ रहता है। उसका हास-रूदन, आशा-आकांक्षा, हार-जीत सबकुछ उसी पर केंद्रित हो जाता है।

रमाकांत शर्मा प्रेम की अनोखेपन के बारे में लिखते हैं –‘‘प्रेम के बिना जीवन की गति ही संभव नहीं है। हम जिसे प्रेम करते हैं, उसी की रक्षा के लिए मोर्चा बांधते हैं। जिससे घृणा करते हैं, उसके नाश के लिए कृतसंकल्प होते हैं।’’[2] यहाँ प्रेम को जीवन का मूलाधार माना गया है। आलोचक के अनुसार सच्चा प्रेम हमेशा एकनिष्ठ होता है। हमारी सारी आशा-आकांक्षा, हर्ष-विषाद उसी एक की क्रिया–प्रतिक्रिया से परिचालित होने लगती है।

एकांत श्रीवास्तव का मानना है कि –‘‘प्रेम के बिना किसी भी कला का सृजन नहीं किया जा सकता। एक मनुष्य और एक कवि जो अपने घर-परिवार, अपनी धरती, प्रकृति, जीवन, समाज और समय से प्रेम करता है, वही कुछ रच सकता है। अपने व्यापक अर्थ में प्रेम संवेदनशील मनुष्यता के आत्मीय विस्तार का ही पर्याय है।’’[3] आलोचक का मानना है कि प्रेम हमें सृजनशीलता के

लिए उत्प्रेरित करता है । जिस तरह कबीर ने माना है कि प्रेम शून्य हृदय श्मशान की भांति निरपेक्ष और असंवेदनशील हो जाता है, उसी तरह एकांत श्रीवास्तव भी इस बात पर विशेष बल देते हैं कि प्रेम व्यक्ति की महती आवश्यकता है । व्यक्ति का सर्वांगीण विकास खासकर कलात्मक विकास प्रेम के द्वारा ही सम्भव हो पाता है । प्रेम व्यक्ति को मानवीय गुणों से सम्पन्न करता है । उसे समाज-सापेक्ष बनाता है । वह मनुष्य को उदार और कोमल हृदयी बनाता है ।

ब्रजमोहन शर्मा प्रेम को परिभाषित करते हुए लिखते हैं – ‘‘प्रेम ही जीवन है, प्रेम ही सृजन है, प्रेम ही मुक्ति है और प्रेम ही आनन्द है ।....प्रेम सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सनातन और नित्यनवीन है । कोख के अंधेरे से कब्र तक के अंधेरे तक प्राणी प्रेम को तलाशता है ।’’[4]

प्रेम और सौंदर्य के कवि कहे जाने वाले छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद की मान्यता है कि ‘प्रेम के प्रकाश में सभी कर्म उज्ज्वल और उदार बन जाते हैं’ । प्रेम में प्रत्याशा को निरर्थक मानने वाले कवि जयशंकर प्रसाद समर्पण को ही प्रेम की संज्ञा देते हैं –

‘‘ पागल रे वह मिलता है कब,

उसको तो देते ही हैं सब

x x x

तू क्यों फिर उठता है पुकार ?

मुझको न मिला रे कभी प्यार !’’[5]

हिन्दी साहित्य में प्रेम का चित्रण वैयक्तिक प्रेम, प्रकृति प्रेम, देश प्रेम, जन प्रेम आदि कई रूपों में दिखलाई पड़ता हैं । नयी कविता के कवि दुष्यंत कुमार की आरम्भिक कविताओं में सर्वाधिक प्रेम चित्र ही है ।

वैयक्तिक प्रेम

दुष्यंत कुमार के काव्य में वैयक्तिक प्रेम दो रूपों में चित्रित हुआ है । एक प्रेमिका के प्रति और दूसरा अपनी पत्नी के प्रति । उनकी आरम्भिक प्रेम कविताओं के केंद्र में उनकी प्रेमिका हेमलता त्यागी रही है । कवि ने अपने सृजन-कर्म का आरम्भ किशोरवय से किया । उम्र के इस पड़ाव पर प्रेम-संबंध स्थापित होना स्वाभाविक ही है । किसी के प्रति आकर्षित होकर दिन–रात उसकी स्मृति में बने रहना, इस वय की एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है । किशोर कवि दुष्यंत कुमार में हमें यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया दृष्टिगत होती है । दुष्यंत कुमार के बारे में यह चर्चित था कि वे हेमलता त्यागी नामक सहपाठी से अथाह प्रेम करते थें । हेमलता त्यागी किशोर कवि के मन–मस्तिष्क पर पूरी तरह से छायी हुई थी । विजयबहादुर सिंह नहटौर काल में लिखी गई कवि दुष्यंत कुमार की कविताओं की केंद्रिय विषयवस्तु प्रेम को स्वीकारते हैं । उनकी धारणा है कि इन सारी प्रेम–कविताओं की मूल प्रेरणा कवि की प्रेमिका हेमलता त्यागी ही है । बकौल विजयबहादुर सिंह– ‘‘कवि के जीवन में संभव है और भी लोग आए हों, पर इस भाव-संबंध ने उसे

दीवानगी तक पहुँचा दिया है । उन दिनों लिखी गई लगभग सारी कविताओं की मूल प्रेरणा यही हेमलता है, जिसके विरह ने कवि को झकझोरकर रख दिया है और वह व्याकुलता का एक उफनता हुआ सागर बन गया है ।''[6]

दुष्यंत कुमार के वैयक्तिक प्रेम में संयोग के सुखद क्षण भी है और वियोग का अथाह दुख भी । उनके प्रेम वर्णन में किशोर-सुलभ भावुकता द्रष्टव्य है । उनकी प्रेम कविताओं में प्रेम भाव के आरोह-अवरोह के कई दृश्य चित्रित हुए हैं । जिस तरह भक्तिकाल के संत कवि कबीर ने प्रेम शून्य हृदय को व्यर्थ माना और उसे 'श्मशान तुल्य' कहा है, उसी तरह कवि दुष्यंत कुमार भी यह मानते हैं कि मनुष्य के पास हृदय इसीलिए होता है कि वह प्रेम को अनूभुत कर सकें –

'' हो जिसमें प्यार न लेशमात्र मानव का नहीं कलेजा है,
है प्रस्तर का निर्माण बात ये नहीं तनिक भी बेजा है,
यौवन आता है तूफानी लहरों –सा क्षण को जीवन में
दिल दिया इसलिए प्यार करे इंसान धरा पर भेजा है ।''[7]

कवि की दृष्टि में प्रेम जीवन जीने के लिए अनिवार्य तत्व है । प्रेम व्यक्ति को समर्थवान, धैर्यवान, लक्ष्योंमुख, सकारात्मक दृष्टिसम्पन्न और सबसे बढ़कर मानवीय बनाता है । प्रेम व्यक्ति के अंतर प्रदेश को उर्वरक बनाता है । उसमें उर्जा और उत्साह का संचार करता है । कवि का तो यहाँ तक मानना हैं कि प्रेम मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है –

‘‘ मैं प्यार मनुज का जन्मसिद्ध अधिकार मानता हूँ केवल !
सबसे अच्छी देन विश्व को प्यार मानता हूँ केवल ! ’’[8]

कवि प्रेम की विलक्षणता देखकर मंत्रमुग्ध है । प्रेम उनके लिए एक पवित्र भाव है, जो जीवन को सुमधुर सुगंधियों से गमका जाता है–

‘‘ प्यार तन पर दमकता है मोती सदृश
प्यार आँखों में खिलता कमल की तरह
प्यार ऐसे गमकता है जैसे जुही
प्यार प्राणों में गंगा के जल की तरह ’’[9]

किशोर कवि को इस बात का गर्व है कि आनन्दप्रदाता प्रेम के सुखद अहसास को उन्होंने स्वयं भोगा है –

‘‘ जब इठला–इठलाकर लहरें
तट से मिलने आया करतीं
दे परिचुंबन ‘तुम चंचल हो’
कहकर यों शरमाया करतीं
मैं सोचा करता हूँ मैंने
यह शरमीलापन देखा है
मैं सोचा करता हूँ सुख का मैंने भी एक क्षण देखा है ।’’[10]

कवि को लगता है कि प्रेम करना तो सहज है, परंतु उसका निर्वाह करना अत्यंत

कठिन है । प्रेम मार्ग में कठिन और कष्टदायक रास्तों से गुजरना पड़ता है । विरह की निर्ममता को हँसकर झेलना पड़ता है –

‘‘ नयनों की भाषा से उर का प्यार जताना बहुत कठिन है
प्यार सरल है किंतु रूपसी उसे निभाना बहुत कठिन है ’’[11]

कवि के लिए प्रेम एक प्रेरक तत्व है । प्रेम व्यक्ति में असीम उर्जा, उत्साह और आशा का संचार करता है । कवि की कई कविताओं में प्रेम का यह सकारात्मक पक्ष दृष्टिगत होता है । ‘तुम एक बार मुस्का दो ना!’, ‘दूसरा प्रारूप’ आदि ऐसी ही कविताएँ है । ‘मेरा प्यार’ कविता में प्रेम का यह सकारात्मक पक्ष दृष्टिगत है –

‘‘ जुए के अंतिम पत्ते-सा मेरा प्यार
हारे ना
थके हुए सपनों की गगन-चुंबिकी डोर
टूटे ना
भले बालू के हों
पर मेरे हाथों में आए तट
छूटें ना,
तुम चाहो तो मैं जी सकता हूँ हाँ !!’’[12]

दुष्यंत कुमार की कविताओं में प्रेम के संयोग और वियोग, दोनों ही रूप नजर आते हैं । ‘विक्षत उर का उपचार बना’, ‘इन नयनों का गीत तुम्हीं हो,

'इन अधरों का गीत बनी तुम' जैसी कविताएँ संयोग के विविध भावों को अनावृत्त करती है । प्रथम मिलन में प्रेम की स्वीकारोक्ति करते हुए कवि लिखते हैं–

'' नयन तुम्हारे क्षण-सुख पाकर प्यार किसी का खो बैठे हैं ,
हमको देखो प्रथम दृष्टि में प्राण ! तुम्हारे हो बैठे हैं ।''[13]

इसी तरह कवि प्रेम सम्पदा को प्राप्त कर स्वयं को धन्य समझते हैं –

'' जग कहता मैं हार चुका हूँ ,
खो सुख का संसार चुका हूँ ,
पर मैं इसको जीत बताता
मेरी पावन जीत तुम्हीं हो ।
इन नयनों का गीत तुम्हीं हो ।
मैंने रो-रोकर गाया है,
कुछ खोकर तुमको पाया है ,
गीतों के आधार, तरीके
संबल, एक पुनीत तुम्हीं हो ।
इन नयनों का गीत तुम्हीं हो ।''[14]

कवि ने प्रेम के अंतर्द्वन्द को 'अंतर नहीं दिखाया जाता' कविता में चित्रित किया है । प्रेम में आँखे कुछ और कहती है और जुबान कुछ और । प्रेम में 'मौन भाषा' का अपना महत्व है । प्रेमी ह्रदय अपने उद्‌गारों को नि:शब्द नेत्रों के

माध्यम से अभिव्यक्त करने की आकांक्षा लिए अपने प्रिय-पात्र के सम्मुख जाता है, पर वह अपने को अभिव्यक्त नहीं कर पाता है । कवि इस मानसिक अंतर्द्वन्द को चित्रित करते हुए अपनी बेबसी को जाहिर करते हैं –

‘‘ अंतर में बसने वाले को अंतर नहीं दिखाया जाता ।
कितनी बार हृदय ने चाहा
अपने सारे घाव दिखा दूँ ,
कितनी बार प्रणय ने चाहा
अपने मन की बात बता दूँ,
कह–कहकर थक गये नयन ,
दुःख,मुख से नहीं बताया जाता ।’’[15]

दुष्यंत कुमार के रचना जगत में वियोग के चित्र अधिक हैं । इसका मुख्य कारण यह है कि जिस हेमलता त्यागी से वे अथाह प्रेम करते थें और उनसे विवाह करना चाहते थें, वह सामाजिक और पारिवारिक दबाब के कारण पूरी न हो सकी । फलत: किशोर कवि वियोग व्यथा से व्यथित होकर अपने मनोभावों को कविता में प्रकट करने लगें –

‘‘ आँसू से लिखता जाता हूँ मैं पीड़ा का इतिहास प्रिये !
इस हँसती हुई शर्वरी में
जीवन का प्रात न हो पाया

मुरझाया किस्मत प्राणों का
हर्षित जलजात न हो पाया''[16]

प्रेम के बारे में समाज में जो नकारात्मक सोच व्याप्त है, उस पर कवि प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखते हैं –

'' प्यार का दूसरा रूप जगत वाले परिताप बताते हैं
कम ऐसे भी हैं यहाँ नहीं जो इसको पाप बताते हैं,
पर बुद्धि मंच से मैं उनको ललकार दिया करता हूँ जो
वरदान नहीं कहते इसको प्रत्युत अभिशाप बताते हैं ''[17]

कवि के लिए प्रेम एक पवित्र भावना है । प्रेम को मनोरंजन का साधन-मात्र समझने वालों के प्रति कवि ने बेधड़क होकर प्रहार किया है । निजी स्तर पर भी जब उनके पिता हेमलता त्यागी को विस्मृत कर, उनके द्वारा स्वीकृत की हुई लड़की से विवाह करने का आदेश देते हैं, तब कवि बेखौफ होकर अपने पिता के सामंती सोच का प्रतिवाद करते हैं । इस संबंध में उनके मित्र महावीर सिंह लिखते हैं –''मुझे भली प्रकार स्मरण है कि पिता जी द्वारा विवाह का आग्रह करने पर उसने नहटौर (जिला. बिजनौर) निवासिनी अपनी पूर्व परिचिता को वरण करने का प्रस्ताव किया था । इस पर पिता जी ने तर्क दिया था 'बेटा मोहब्बत हमने भी की है, इश्क हमने भी लड़ाया है लेकिन हम तुम्हारी तरह दीवाने बन कर हर उस लड़की से शादी नहीं करते फिरे ।'' तो दुष्यंत ने उनके सामंती दृष्टिकोण को इतनी

साफगोई एवं निधड़क ढ़ंग से परास्त किया था कि पिता जी बगलें झाँकने लगे थे ।''[18] दुष्यंत कुमार एक गंभीर प्रेमी थे । यही वजह है कि वे दो प्रेम करनेवालों को अलग करनेवाली समाजिक रूढ़ियों और परम्परा को अस्वीकार करने के पक्षधर रहें । उनकी कई रचनाओं में उनकी यह सोच व्यक्त हुई है । कवि कामना करते हैं –

'' मैं ऊब्र चुका इस जीवन से
जिसमें पग–पग पर दु:ख मिलें
मेरी तो यह इच्छा है प्रिय आओ
हम तुम कहीं दूर चलें
स्वप्नों का हो रंगीन देश
हो अस्त-व्यस्त दुर्बल रिवाज !''[19]

उनके वैयक्तिक प्रेम के अंतर्गत विरह के चित्र ही सर्वाधिक है । इस विरह–व्यथा के मूल में दो कारण है । प्रथम कारण प्रथम प्रेम की दुखद अंविति और दूसरा कारण है विवाहोपरांत पढ़ाई और नौकरी के लिए पत्नी से दूर रहना । उनकी प्रारम्भिक कविताओं में प्रेमिका के प्रति अगाध प्रेम दिखाई पड़ता तो परवर्ती रचनाओं में पत्नी के प्रति ।

विरह को कवि ने महत्तवपूर्ण माना है । वे 'विरह को प्यार के दीपक में वर्तिका तेल के सदृश' मानते हैं । विरह की कसौटी पर कसकर ही यह परखा

जा सकता है कि प्रेम कितना खरा है । कवि लिखते हैं–

“ विरह अग्नि पर चल न सके जो
मैं कहता हूँ प्यार नहीं वो
नित कुन्दन-सा पड़ पावक में
मेरा प्यार चमकता जल-जल ।”[20]

विरह के विविध मनोभाव उनकी कविताओं में विन्यस्त हैं । विरह व्यथा से उत्पन्न व्याकुलता, खिन्नता, अकुलाहट आदि का कवि ने चित्ताकर्षक चित्रण किया है । सामाजिक बंधन के कारण मिलन से वंचित कवि अपने को रात-दिन वियोग की ज्वाला में जलनेवाला शलभ संबोधित करते हैं । कवि एक पल के लिए भी अपने प्रेम पात्र को विस्मृत नहीं करते । उसकी स्मृति कवि के हृदय में घर कर चुकी है । अपनी इस स्थिति पर कवि लिखते हैं –

“ कभी कल्पना या निशा के करों में
कभी वाटिका या कभी खँडहरों में
तुम्हें एक क्षण को नहीं भूल पाया
हृदय की तुम्हें प्रीत देता रहूँगा ।”[21]

प्रेम भाव को उद्दीप्त करने में प्रकृति की अहम भूमिका रही है । छायावादी कवियों ने तो अपनी प्रेमानुभूति को प्रकृति के माध्यम से ही प्रकट किया है । दुष्यंत कुमार की कविताओं में प्रणयानुभूति के वर्णन के लिए प्रकृति और

प्राकृतिक उपादानों का सहारा लिया गया है । चाँदनी रात में प्रकृति का उद्दीप्त रूप अपने प्रिय पात्र से दूर कवि को असहनीय पीड़ा से भर देती है –

‘‘ जब बूँदों में आकाश उतर आता है,
जब धरती पर मधुमास उतर आता है,
जब किसी वियोगी के सूखे अधरों पर
फिर से वह खोया हास उतर आता है
तब आँखों में सावनी मेघ छा जाते
इस व्यथित हृदय की पीड़ा बढ़ जाती है ।’’[22]

वियोग की असहनीय पीड़ा कवि को मरणासन्न स्थिति में ला देती है । ‘जल रहे हैं मेरे गान’ शीर्षक कविता में कवि विरह की तीव्रता को मार्मिक ढ़ंग से नियोजित करते हैं । कवि अपनी दयनीय स्थिति को व्यक्त करते हुए लिखते हैं –

‘‘ ढल रही हैं मूक श्वासें
ढल रहा है मौन जीवन,
चिर व्यथाओं में सिसकता
चल रहा है मौन यौवन,
बह रहा है घोर झंझा
तड़फड़ाते प्राण मेरे ।’’[23]

इस तरह स्पष्ट है कि प्रेम कवि के लिए एक अनिवार्य तत्व है ।

उनके प्रेम में आशा-आकांक्षा के साथ सजग कौतुहलता और जिज्ञासा का भाव भी दिखाई पड़ता है । प्रेमिका के प्रति कवि ने जो भी प्रेम–उद्‌गार प्रकट किये हैं, उनमें किशोर सुलभ भावुकता निहित है । वहाँ संयोग के चित्र कम है पर वियोग की अथाह पीड़ा सर्वत्र नजर आती है । वियोग व्यथा को कवि ने मार्मिक रूप में अभिव्यक्ति दी है ।

अपनी कतिपय रचनाओं में कवि दुष्यंत कुमार ने अपनी पत्नी राजेश्वरी देवी के प्रति अपनी प्रेम-भावना को मनमोहक ढ़ंग से प्रकट किया है । कवि को ऐसा प्रतीत होता है कि पत्नी के रूप में राजेश्वरी देवी को पाकर उनकी मनवांछित कामना पूर्ण हुई है । इतना ही नहीं प्रेमिका के वियोग व्यथा से क्षुब्ध आत्मा ने पुन: नवजीवन पाया हो । पत्नी के रूप में राजेश्वरी देवी को पाकर कवि अपने भाग्य की सराहना करते हैं –

‘‘ धन्य हो गया तुमको पाकर जीवन मेरा
संजीवन की बूँदें पाई जीवन और मरण ने
मंजिल की परछाई हारे-थके चरण ने
मनवांछित पाए स्वप्नांकन नयन–नयन ने
क्षुब्ध प्राण पंछी ने पाया रैनबसेरा’’[24]

दुष्यंत कुमार की कविताओं में दाम्पत्य प्रेम के अंतर्गत संयोग के चित्र कम हैं । इसकी मूल वजह है – शिक्षा और रोजगार की तलाश में पत्नी और

परिवार से दूरी । प्रवास की पीड़ा कवि-हृदय को कटोचती रहती है । पत्नी और परिवार की स्मृति उन्हें लौटने के लिए प्रेरित करती है –

‘‘ तुम्हारे प्यार में पागल प्रवासी लौट आया है ।
तुम्हारे नयन का घायल प्रवासी लौट आया है ।
कि जिसकी याद में मधुमास बन पतझर सिसकता था
कि जिसकी याद में दिनमान भी दिन-भर सिसकता था
कि जिसके लिए तुमने जलाए पंथ में दीपक
कि जिसकी याद में वातास रह-रहकर सिसकता था ।’’[25]

एक तरफ पत्नी से वियोग की स्थिति है और दूसरी तरफ प्रकृति अपने उद्दीप्त रूप में कवि के वियोग व्यथा को बढ़ाने का कारक बनती है । ‘मैं भी जलता रहा रात भर’ शीर्षक कविता में कवि अपनी पत्नी वियोग की व्यथा को तीव्र भावुकता के साथ प्रकट करते हैं –

‘‘ दीपक जलते रहे गगन के मैं भी जलता रहा रात भर
पलकों के कोनों में थककर
चुप होकर बरसात पड़ी थी
नींद गगन में मौन खड़ी थी
दृग में कोई सुधि का सुन्दर स्वप्न मचलता रहा रात भर ।
मैं भी जलता रहा रात भर ।’’[26]

पद्मजा घोरपड़े दुष्यंत कुमार की प्रेम भावना पर विचार करते हुए लिखते हैं–''विरह व्यक्ति को, व्यक्ति के मन को और व्यक्ति की अनुभूति–अभिव्यक्ति क्षमता को कितना–कितना माँजता है इसकी साक्षी कवि की ये विरह कविताएँ है ।''[27]

कवि दुष्यंत की प्रेम–भावना के बारे में विजय बहादुर सिंह लिखते हैं– ''दुष्यंत केवल एक रूप लोभी प्रणयी-भर नहीं , कवि भी थे और भावनाओं की गहराइयाँ और उनका मूल्य समझते थे ।''[28] वास्तव में कवि के लिए प्रेम एक साधना है । प्रेम व्यक्ति को नष्ट नहीं करता, अपितु उसका हृदय परिष्कृत कर उसका पुनर्निर्माण करता है । उसकी रचनात्मकता को नया आयाम और सौंदर्य प्रदान करता है । 'आ रही है मुझको तुम्हारी याद' ,'कौन तुम मेरे स्वरों में','सत्य सपनों का सुखद संसार' ,'तब याद मुझे करती होगी','क्या तुमको मेरी याद नहीं आती है' ,'मधुमास सही' ,'प्यार की पतवार','तुम्हारी याद में पागल प्रवासी लौट आया है' ,'ठहर जाओ' आदि कविताओं में प्रेम के आरोह-अवरोह के कई मार्मिक दृश्य देखने को मिलते हैं ।

अंतत: यही कहा जा सकता है कि दुष्यंत कुमार की वैयक्तिक प्रेम-भावना किशोरोचित भावुकता और रोमानी संवेदना से आपूरित है । कवि के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे रोमांटिक कविताएँ 'परदेशी' और 'विकल' उपनाम से लिखा करते थे । उनकी आरम्भिक प्रेमाभिव्यक्ति पर छायावादी प्रभाव दिखलाई पड़ता है । दुष्यंत कुमार के वैयक्तिक प्रेम संबंधी कविताएँ उनके निजी जीवन की ही

व्यथा-कथा है, जिसे कवि ने पूरी सच्चाई के साथ बिना किसी तामझाम के सीधे-सादे ढ़ंग से वर्णित किया है ।

देश-प्रेम

कवि दुष्यंत कुमार को अपने देश से बहुत प्रेम था । उनकी कई कविताओं में देश के प्रति उनका अगाध स्नेह झलकता है । वे अपने देश की एकता और अखंडता के लिए अपना तन-मन-धन सबकुछ न्यौछावर करने के लिए तत्पर दिखते हैं –

‘‘ आओ हम सब करें प्रतिज्ञा
जब तक हम हैं जीवित
भारत के चरणों में होंगे
तन मन धन सब अर्पित
हो निर्भीक देश की सेवा
सभी प्रकार करेंगे
उसके लिए जिएँगे, हम सब
उसके लिए मरेंगे ।’’[29]

भारत देश उनके लिए उनका अभिमान है । भारत ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता-संस्कृति, नैतिक मूल्य और शांति के लिए विश्व प्रसिद्ध रहा है । भारत के

बारे में कहा जाता है कि भारत दुनिया में साक्षात् स्वर्ग है । यहाँ के लोगों की वीरता, धैर्य, सहनशीलता, बुद्धि को देखकर दुनिया आश्चर्यचकित होती रही हैं किंतु वर्तमान स्थिति यह है कि भारत देश की प्राचीन वैभवपूर्ण पहचान कुछेक लोगों की स्वार्थवृत्ति के कारण धूमिल हो रही है और आज उसकी अस्मिता और पहचान संकटपूर्ण स्थिति में पहुँच चुकी है । फिर भी कवि आशांवित है कि भारत देश अपनी प्राचीन पहचान और अस्मिता को संकटपूर्ण स्थिति से उबारने में सफल होगा –

‘‘ किंतु अंतिम श्वास है ये विश्व की बर्बर निशा की,
आ रही निर्माण रेखाएँ नवल प्राची दिशा की,
है मुझे विश्वास होगा पुन: स्वर्णविहान मेरा ।
अमर है अभिमान मेरा ।’’[30]

भारत देश कई सालों तक अंग्रेजो की निर्ममता से आक्रांत रहा । हमारे देश के कई लोगों ने इस निर्ममता से मुक्ति के लिए अपनी जान गँवा दी । कई वर्षो के पश्चात् हमें अंग्रेजो की इस निर्ममता से मुक्ति भी मिल गई, पर अब हम ‘तथाकथित अपनों’ की निर्ममता के शिकार होने लगे । अपने देश और देशवासियों से अगाध प्रेम करनेवाले कवि उनकी ऐसी दुर्दशा देखकर चुप न रह सके और प्रत्यक्ष होकर तत्कालीन सत्तारूढ़ सरकार पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगें –

‘‘ रौनके जन्नत जरा भी मुझको रास आई नहीं ,
मैं जहन्नुम में बहुत खुश था मेरे परवरदिगार ।’’[31]

दुष्यंत कुमार की बहुत सारी कविताएँ ऐसी हैं जिसमें कवि तत्कालीन राजनीति दमन-चक्र से आक्रांत सामान्यजन की दुरावस्था देखकर तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं । कवि देश की दुर्दशा से क्षुब्ध दिखते हैं । वे भारतवासियों को प्रेरित करते हैं कि वे एकजुट होकर भारतदेश के गौरवशाली अतीत को पुनर्जीवित करने के लिए आगे आए । उसकी वैश्विक पहचान को धूमिल होने से बचाए । वे भारतवासियों को जागृत करते हुए लिखते हैं–

‘‘ यह सोने का काल नहीं है
जागो देश पुकार रहा है ।
कल–कल–कल कर नदी जगाती
सर–सर करके तीव्र प्रभंजन
धड़–धड़ करके मेघ जगाते
वर्षा करके रिमझिम–रिमझिम
आज तुम्हारे आगे देखो
हिमगिरि हाथ पसार रहा है ।’’[32]

महात्मा गाँधी को लेकर लिखी गई कविताओं में भी उनका देश प्रेम ही उजागर होता है । ‘आज युग का पथ–प्रदर्शक खो गया’, ‘सिंधु ने अपने हृदय

में ज्वार लाकर','अब सुमनों की भरमार कहाँ','वह भारत का भगवान','शोकगीत' आदि कतिपय रचनाओं में गाँधीजी के योगदान का स्मरण करते हुए कवि उनकी असामयिक मृत्यु को भारतवासियों के लिए बहुत बड़ी क्षति बताते हैं । गाँधीजी ने सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलकर भारत देश को मुक्त करवाने में जो अहम भूमिका अदा की, उसकी तुलना ही नहीं की जा सकती । समाज में व्याप्त अस्पृश्यता को दूर करने में गाँधीजी ने अपना जीवन त्याग दिया । कवि गाँधीजी से बहुत अधिक प्रभावित थे क्योंकि गाँधीजी की रगों में मातृभूमि का प्रेम प्रवाहित होता था –

'' रूप मानव का धरे अवतार था
स्कंध पर निज राष्ट्र का ही भार था
जिस पे आश्रित राष्ट्र का उद्धार था
जिन रगों में मातृ भू का प्यार था ''[33]

एक सच्चा राष्ट्र उद्धारक, युग का पथ-प्रदर्शक, साम्प्रदायिक एक्य का समर्थक, सामान्यजन का हितचिंतक अक्समात् इस दुनिया को अलविदा कह देता है, कवि इस आकस्मिक व्रजघात से आहत और शोकाकुल होकर लिखते हैं –

'' यह कैसा भीषण वज्रपात,
सहसा हृदगति हो गई मौन
विश्वास नहीं होता इस पर

यह बार–बार कह रहा कौन
सो गया सदा के लिए आज
चिर अविनाशी सेगाँव
किस दुर्दिन में इस भारत की
मानवता का हो गया अंत ''[34]

दुष्यंत कुमार भारत देश को 'गुलमोहर' सम्बोधित करते हैं और यह आकांक्षा अभिव्यक्त करते हैं कि –

'' जिएँ तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले ,
मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए ।''[35]

देश के प्रति उनकी प्रेम-भावना को देखकर सरदार मुजावर लिखते हैं –''दुष्यंत कुमार अपने देश से बहुत प्यार करते थे । उसी के लिए मर–मिटना चाहते थे ।''[36]

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि देश दुष्यंत कुमार की संवेदना का अभिन्न अंग है । अपने देश के प्रति उनमें अगाध स्नेह और समर्पण का भाव है । अपने देश और देशवासिय ों से अगाध स्नेह होने के कारण ही वे देश की दुर्दशा करने वालों की खबर लेते हैं । उन्होंने अपनी कई रचनाओं में युद्ध के औचित्य–अनौचित्य पर प्रश्न उठाया है । इन प्रश्नों के मूल में देश और देशवासियों के प्रति उनकी चिंता दिखलाई पड़ती है । कवि देश के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिए तैयार हैं ।

जन-प्रेम

दुष्यंत कुमार एक जनकवि है । समाज द्वारा अवहेलित, उपेक्षित और उत्पीड़ित साधारण जन के प्रति कवि–हृदय में प्रेम और करूणा कूट–कूट कर भरी हुई है । कवि ने लिखा भी है – ''मेरे लिए मनुष्य-मात्र की अवमानना सबसे अधिक कष्टप्रद है । उस पर मेरी प्रतिक्रिया नितांत व्यक्तिगत ढ़ंग से होती है ।''[37]
कवि ने लिखा भी है –

'' तुम्हारी थकन ने मुझे तोड़ डाला,
तुम्हें क्या पता क्या सहन कर रहा हूँ ।''[38]

कवि सामान्य जन के प्रति पूरी तरह से प्रतिबद्ध हैं । यही वजह है कि उनपर होने वाले जुल्म के प्रतिवाद में वे अपनी गज़ल को अमानवीय, शोषक सल्तनत के विरोध में खड़ा करते हैं –

'' मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ ,
हर गज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है ।''[39]

कवि ने समाज में एक ऐसी तहजीब को पनपते और विकास करते हुए देखा, जिसमें आम आदमी को भूनकर खाने का गहरा षड्यंत्र रचा जा रहा था । अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए आम आदमी को कंधे की तरह इस्तेमाल किया जा रहा था । ऐसे जनविरोधी समय में जनकवि दुष्यंत कुमार जन जीवन की त्रासदी को दूर करने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं । उनकी कविताओं का अधिकांश

अंश सामान्यजन के व्यथा–कथा को स्वर देती है । व्यवस्था के जन–विरोधी चरित्र को लेकर लिखी गई कविताओं में 'तीन दोस्त' ,'सूर्य का स्वागत', 'बेरोजगारी: एक अनुभूति' 'राह खोजेंगे', 'गौतम बुद्ध से', 'आश्वासनों का सूर्य' , 'उत्तरदाता' , 'जलता सच' , 'यात्रानुभूति ' , 'उपक्रम','कवि–धर्म','परिचित आवाज','सुबह : समाचार पत्र के समय', 'आत्मालाप', 'एक चुनाव परिणाम','कहाँ से शुरू करें यात्रा','ईश्वर को सूली' आदि कतिपय वे कविताएँ हैं, जिनमें कवि की जन–चेतना वृहत्तर स्तर पर चित्रित हुई है । अगर दुष्यंत कुमार के तीनों काव्य-संग्रहों –'सूर्य का स्वागत' ,'आवाजों के घेरे','जलते हुए वन का वसंत', गज़ल-संग्रह – 'साये में धूप' और गीति नाट्य–' एक कंठ विषपायी' का समग्र अवलोकन करें तो यही तथ्य उभरकर सामने आएगा कि कवि के सृजन के केंद्र में सामान्यजन और उनकी त्रासदी ही रही है । विजय बहादुर सिंह ने लिखा है –''इसकी कविताओं की विषय-वस्तु केवल भावावेगी प्रेम नहीं, देश और समाज की परिस्थितियों की चिंताओं का पता देती है ।''[40]

'जनता' नामक कविता में कवि जनता की दुरावस्था, उसकी वास्तविक उपयोगिता को रेखांकित करते हैं । प्राचीन काल से ही सत्तावर्ग अपने निजी स्वार्थ और सुरक्षा के लिए जनता को इस्तेमाल करता आ रहा है –

'' यह एक अखंड क्रम है

और उनके अजीब विश्वास हैं

उनके हाथों में बहुत सारे बाँस हैं

बाँसों पर बास

हहराते सागर की गहराई नापने के लिए ।''[41]

उनके समकालीन कवि धर्मवीर भारती लिखते हैं -''आखिर क्या था उन गज़लों में, जो इस तरह इतनी गहराई में झकझोर गया । सबसे बड़ी बात यह कि वे एक ऐसे आदमी की प्रामाणिक पीड़ाभरी आवाज थीं, जो अपने इस मुल्क को, अपनी इस दुनिया को बेहद प्यार करता रहा है ।''[42]

दुष्यंत कुमार हिन्दी साहित्य के उन कवियों में स्थान रखते हैं, जो अपने देश और देशवासियों के प्रति अपने कर्तव्य को क्षण भर के लिए भी विस्मृत नहीं करते हैं । जिनका प्रेम वैयक्तिकता की संकुचित सीमा में आबद्ध न रहकर देश और देशवासियों के दुख:-दर्द के साथ तदाकार हो गया है । विजय बहादुर सिंह इसे दुष्यंत कुमार के चरित्र की विलक्षणता और सबसे बड़ी खूबी मानते हैं – ''दूसरों की तकलीफ उसको इस हद तक कचोटती रही है कि खुद अपनी तकलीफों के बारे में सोचने-विचारने की उसे फुरसत ही नहीं मिली ।''[43]

निष्कर्षत: दुष्यंत कुमार की प्रेम-भावना वैयक्तिक होते हुए भी सामाजिक अधिक है । समाज का दुख, समाज में रहनेवाले अवहेलित सामान्यजन का दुख कवि को बेचैन करता है और स्वत: उनपर कवि का ममत्व न्यौछावर होने लगता है । उनकी प्रेम भावना में आत्मीयता दिखलाई देती है । वियोग की असह्य

पीड़ा सहने के बावजूद कवि टूटते नहीं है । उनके प्रेम में कुंठा का लेशमात्र भी नहीं है । उनका प्रेम भावुकतापूर्ण है । जितने गम्भीर वे निजी प्रेम के प्रति रहे हैं, उतने ही गम्भीर देश और जन के प्रति भी रहे हैं ।

2.सौंदर्य

सौंदर्य मूलत: आकर्षण है । यह आकर्षण किसी व्यक्ति के प्रति भी हो सकता है और किसी वस्तु के प्रति भी । प्रकृति की असीम और अपूर्व सम्पदा देखकर भी कोई आकर्षित हो सकता है, तो देश की अनुपम सभ्यता और संस्कृति ही किसी को अभिभूत करती है । वास्तव में सौंदर्यानुभूति एक मानसिक वृत्ति है । मनुष्य स्वभावत: सौंदर्योपासक होता है । अगर वह मनुष्य एक सर्जक है तो फिर उसमें सौंदर्यबोध का होना स्वाभाविक है । हिन्दी साहित्य के आरम्भिक युग में स्त्री–सौंदर्य ने कवियों को आकर्षित किया तो आधुनिक साहित्य में स्त्री के साथ–साथ प्रकृति और श्रम के सौंदर्य ने कवियों को अपनी ओर खींचा । आधुनिक युग में सौंदर्य की नई परिभाषा निर्मित हुई । और साथ ही यह चर्चा भी जोर पकड़ने लगी कि वास्तव में सुन्दर किसे कहा जाये । एक तरफ 'श्रद्धा' का आभिजात्यवादी सौंदर्य है तो दूसरी तरफ निराला की 'पत्थर तोड़ती युवती' का अनाभिजात्यवादी सौंदर्य । आधुनिक काल में सौंदर्य की पारम्परिक अवधारणा को

नकारा गया खासकर प्रगतिशील कवियों के द्वारा । इन कवियों ने सौंदर्य की नई अवधारणा स्थापित की ।

रामविलास शर्मा सौंदर्य के बारे में लिखते हैं –''सौंदर्य की वस्तुगत सत्ता है । यह सत्ता प्रकृति में है, मानवजीवन और मनुष्य की चेतना में है । सौंदर्य इंद्रियबोध तक सीमित नहीं है, उसकी सत्ता मनुष्य के भावजगत और उसके विचारों में भी है ।''[44]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है – ''कुछ रूप–रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती है कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं । हमारी अंतस्तता की यही तदाकार–परिणति सौंदर्य की अनुभूति है ।''[45] कविता में सौंदर्य–चित्रण के बारे में वे लिखते हैं –''कविता केवल वस्तुओं के ही रंग–रूप में सौंदर्य की छटा नहीं दिलाती, प्रत्युत कर्म और मनोवृत्ति के भी अत्यंत मार्मिक दृश्य सामने रखती है ।''[46]

छायावादी कवि कविवर पंत जहाँ सौंदर्य को 'सकल ऐश्वर्य की संधान' घोषित करते हैं, तो उनके ही समकालीन प्रेम और सौंदर्य के कवि कहे जाने वाले जयशंकर प्रसाद सौंदर्य को 'चेतना का उज्ज्वल वरदान' मानते हैं ।

सौंदर्य एक आंतरिक अनुभूति है । इस अनुभूति को किन्हीं विशेष

परिस्थितियों में ही अनुभूत किया जा सकता है । संसार की हरेक व्यक्ति, वस्तु या विचार हमें प्रभावित नहीं करती । किंतु कुछ व्यक्ति, वस्तु और विचार ऐसे होते हैं जो हमारे मन–मानस को पूरी तरह से सम्मोहित कर लेते हैं । हमें उनमें कुछ विलक्षणता दृष्टिगत होने लगती है । हम सहज भाव से उस ओर आकृष्ट होने लगते हैं क्योंकि वह हमें सुन्दर लगता है, सबसे पृथक लगता है, सबसे खास लगता है । यही सौंदर्यानुभूति है और वह विलक्षणता ही सौंदर्य है ।

आधुनिक कवियों की सौंदर्य–दृष्टि वैविध्यपूर्ण और व्यापक है । वे प्राचीन कवियों की तरह स्थूल सौंदर्य को महत्त्व नहीं देते हैं । उनकी सौंदर्य-दृष्टि सूक्ष्म है । आधुनिक कवियों की सौंदर्य-दृष्टि स्त्री के नख–शिख तक ही केंद्रित नहीं है । आधुनिक कवि नारी के आंतरिक-सौंदर्य को भी महत्त्व देते हैं । प्रकृति का सौंदर्य, जीवन और जगत के बहुविध क्रिया-व्यापारों का सौंदर्य आधुनिक कवि की तूलिका से साक्षात् हुए हैं । कवि दुष्यंत कुमार के काव्य में हमें सौंदर्य के कई चित्र उपलब्ध होते हैं । उनके काव्य में मानवीय सौंदर्य चित्र के अलावा प्रकृति और श्रमशील सौंदर्य का अंकन बड़े ही सुन्दर ढ़ंग से हुआ है ।

प्राकृतिक सौंदर्य

प्रकृति के असीम सौंदर्य ने कवियों को हमेशा से आकृष्ट किया है । अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए कवियों ने प्रकृति का सहारा लिया है ।

हिन्दी साहित्य के कई कवि तो अपने प्रकृति-प्रेम के लिए ही जाने जाते हैं । छायावादी कवि पंत को प्रकृति का कवि ही मान लिया गया है । उनके काव्य में प्रकृति अपनी सभी भाव–भंगिमा के साथ प्रस्तुत है । नई कविता में प्रकृति के सौंदर्य का सुन्दर अंकन हुआ है । यहाँ प्रकृति का वैभवशाली रूप दिखाई नहीं पड़ता । प्रकृति यहाँ मानवीय जीवन यथार्थ के साथ संयुक्त हो गई है । कवि दुष्यंत कुमार के काव्य में प्रकृति सौंदर्य के कई चित्र चित्रित हुए हैं । प्रकृति का असीम सौंदर्य कवि को स्वर्ग की अनुभूति कराता है, प्रकृति के सानिध्य में मनुष्य केवल पाता ही है, खोता कुछ नहीं –

‘‘ ये विपुल सौंदर्य इसको स्वर्ग

या कुछ भी कहो ’’[47]

‘स्वर्ग’ का अनुभव कराने वाली प्रकृति दुष्यंत कुमार के काव्य–जगत में नाना रूप-रंग और भाव-भंगिमा धारण करके आई है । वे अधिकतर प्रकृति को मानवीय रूप में चित्रित करते हैं । उनके काव्य-जगत में प्राकृतिक सौंदर्य चित्रों की मात्रा बहुत ज्यादा नहीं है, परंतु जो थोड़े–बहुत है, उनमें एक आकर्षण है । कहीं-कहीं तो प्रकृति के सौंदर्य का अंकन करते-करते वे सामाजिक बुराईयों और विडम्बनाओं को चित्रित कर देते हैं । कहा जा सकता है कि प्राकृतिक सौंदर्य अंकन में भी कवि की सामाजिक यथार्थदृष्टि परिलक्षित होती है । उदाहरण के तौर पर उनका यह शे’र देखा जा सकता है –

‘‘ एक चादर साँझ ने सारे नगर पर डाल दी,

यह अँधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है ।’’[48]

कवि साँझ के बाद के अँधेरे को मिटते हुए भोर की ओर जाते हुए देखते हैं । ‘अँधेरे की सड़क का उस भोर तक जाना’ जनविरोधी सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की आशा का सूचक है । दुष्यंत कुमार ने अपनी अधिकांश गज़लों में प्राकृतिक सौंदर्य के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को ही वर्णित किया है । इसी तरह बारिश में तालाब जब जल से परिपूर्ण हो जाती है तब तालाब का सौंदर्य द्विगुणित हो जाता है । दुष्यंत कुमार लिखते हैं –

‘‘ एक तालाब-सी भर जाती है हर बारिश में ,

मैं समझता हूँ ये खाई नहीं जाने वाली ।’’[49]

यहाँ कवि प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से सत्तावर्ग के आश्वासनों की सच्चाई को अनावृत करते हैं । ‘खाई के बने रहने’ का आशय यही है कि राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक असमानता समाज से कभी भी मिटनेवाली नहीं है, भले ही आश्वासनों में उन्हें बार–बार जड़ से मिटाने की बात ही क्यों न की जाए । उनकी ‘सूर्य का स्वागत’ शीर्षक कविता भी प्रकृति के मानवीय रूप को दर्शाती है । सूर्य को कवि आशा के प्रतीक के रूप में चित्रित करते हैं । चिकनी, काली और सीलन भरी दिवार पर सूर्य को चढ़ते हुए देख कवि को असीम सौंदर्य की अनुभूति होती है । कवि इस सौंदर्य से अभिभूत होकर उसके स्वागत-सत्कार के लिए दौड़

पड़ते हैं –

‘‘ आँगन में काई है,
दीवारें चिकनी हैं, काली हैं,
धूप से चढ़ा नहीं जाता है,
X X X
पर तुम आए हो–स्वागत है !
स्वागत!...घर की इन काली दीवारों पर !’’[50]

कवि प्रकृति को ‘लज्जा’ जैसे कोमल मानवीय भावों से सुसज्जित कर नई मनमोहक भंगिमा प्रदान करने में अत्यंत सफल हुए हैं । कवि हवा को एक सलज्ज लड़की के रूप में चित्रित करते हैं जो अपने स्वजनों को छोड़कर विदा नहीं होना चाहती । वह अपनी आकांक्षा को शालीनता के साथ अपने पिता के सम्मुख रखती है । उसकी आकांक्षा जानकर पिता विदाई का प्रसंग टाल जाते हैं । कवि ने प्रकृति सौंदर्य के साथ–साथ भारतीय नारी की छवि को बहुत ही सुन्दर तरीके से वर्णित किया है –

‘‘ एक शोख वय वाली लड़की-सी हवा
इधर–उधर कपड़े झटकती हुई
आँगन बुहारती है ।
‘थोड़े दिन और अभी रहने दो’

सलज कोयलिया बोल मारती है ।
वृद्ध–वृक्ष, गर्दन हिलाते हैं
पिता–पर्वत
काली-सी चादर में मुँह लपेट
विदा का प्रसंग टाल जाते हैं ।''[51]

कवि को लगता है कि व्यक्ति के विकास में प्रकृति की भूमिका हमेशा से महत्त्वपूर्ण रही है । प्रकृति की गोद में असीम शांति है । प्रकृति का सानिध्य व्यक्ति को तनाव रहित कर उसमें नवीन उर्जा और उत्साह का संचार करता है । ऊँचे शिखरों की मनोहारी सुषमा व्यक्ति के तन और मन दोनों को अवसाद रहित कर असीम आन्नद की अनुभूति कराती है । कवि ऊँचे शिखरों की सुन्दरता के साथ-साथ उसके जुझारूपन और कल्याणकारी स्वरूप से आकर्षित होकर लिखते हैं –

'' लिपटाए हरियाली तन से
प्रमुदित स्थिर आलिंगन से
गर्वित हो देख रहे जग को
हर्षित हो अपनी किस्मत पर
ये ऊँचे शैल शिखर सुन्दर
निश्चलता अपने साथ लिए

अवसाद मिटाता है उसका

जो आता निर्झर के तट पर ''[52]

'फूल ये कमल के' शीर्षक कविता में कवि कमल फूल को जल का मालिक सम्बोधित करते हुए उसके अपूर्व सुन्दरता का वर्णन करते हैं –

'' मालिक हैं जल के

फूल ये कमल के

किरनें उतरीं तो पहले इनके घर आई

इंद्रधनुष के रंगों की छवि इन पर छाई

पहले ये जागे फिर भौरे रस पागे

गन–गन स्वर छलकी

फूल ये कमल के ''[53]

दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं प्रकृति के सौंदर्य का मनोहारी अंकन किया है । उनकी कविताओं में प्रकृति का कोमल रूप दिखाई पड़ता है । प्रकृति में सर्वत्र मनुष्य को आनन्दानुभूति कराने वाला सौंदर्य विद्यमान है । इस सौंदर्य के आनन्द को महसूस करने के लिए व्यक्ति को प्रकृति की शरणागति में जाना होगा । प्रकृति उपचारिका की भूमिका भी निभाती है । प्रकृति व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक आरोग्य प्रदान करता है । इसीलिए कवि तपेदिक के रोगियों को प्रकृति के सानिध्य में जाने के लिए कहते हैं –

‘‘ ओ तपेदिक के मरीजों !

तुम अगर आए न हो

तो कभी आओ

यहाँ आकर पहाड़ों में रहो ’’[54]

कवि ‘ओ बुलबुल’ शीर्षक कविता में गीत गाती हुई बुलबुल की क्रियाशीलता देखकर और मनमोहक गीत सुनकर अचम्भित है । उत्सुकतावश कवि बुलबुल से प्रश्न करते हैं –

‘‘ इस पेड़ से उस पेड़ पर जाती हुई

हँसती हुई

गाती हुई-ओ बुलबुलो !

बोलो कहाँ है प्रेरणा का स्रोत, इस संगीत का

जो गा रही भरकर स्वरों में क्षीण

चिंताहीन तुम ’’[55]

प्राय: कवियों ने प्रकृति का अंकन करते हुए चाँदनी रातों पर अपनी लेखनी चलाई है । कवि दुष्यंत कुमार भी चाँदनी रात में चाँद के सौंदर्य का वर्णन करते हैं । रात की समाप्ति और प्रात:काल के आगमन का जो सौंदर्य चित्र कवि ने खींचा हैं, वह बरबस अपनी ओर खींचता है –

‘‘ अम्बर के काले आँचल में

चंद्र छिपा मुख, मौन सो गया,

धीरे हटा तिमिर अवगुंठन

ऊषा ने अपना मुख खोला,

सरमित ढलता जीवन उसका

यों रवि के यौवन से बीता ।''[56]

प्रकृति के बदलाव का मानवीय क्रिया-कलापों पर भी प्रभाव पड़ता है । प्रकृति के उद्दीप्त सौंदर्य से प्राचीन कवि अत्यंत प्रभावित रहे । आधुनिक कवियों ने भी प्रकृति के उद्दीप्त सौंदर्य के प्रभाव को सुन्दर ढ़ंग से वर्णित किया है । दुष्यंत कुमार प्रकृति के उद्दीप्त सौंदर्य का चित्र खींचते हैं –

'' जब बूँदों में आकाश उतर आता है,

जब धरती पर मधुमास उतर आता है,

जब किसी वियोगी के सूखे अधरों पर

फिर से वह खोया हास उतर आता है

तब आँखों में सावनी मेघ छा जाते

इस व्यथित ह्रदय की पीड़ा बढ़ जाती है ।''[57]

इस तरह कहा जा सकता है कि कवि ने प्रकृति का सौंदर्याकन बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से किया है । कवि के यहाँ प्रकृति का उपयोगितावादी सौंदर्य देखने को मिलता है । प्रकृति के सौंदर्य को निहारते हुए भी कवि मानवीय संवेदना से

आपूरित दिखते हैं । उनके यहाँ प्रकृति का परम्परागत रूप कम देखने को मिलता है । उनके यहाँ प्रकृति के सहज सौंदर्य का अंकन हुआ है ।

मानवीय सौंदर्य

दुष्यंत कुमार के काव्य में मानवीय सौंदर्य के कई चित्र दृष्टिगत होते हैं । मानवीय सौंदर्य के अंतर्गत स्त्री और पुरूष के शारीरिक और आंतरिक सौंदर्य का अंकन किया गया है । नारी के शरीर की सुडौलता, उसके नयनों का आकर्षण कवि को मंत्रमुग्ध करता है । नारी के शारीरिक सौंदर्य का कवि हृदयस्पर्शी वर्णन करते हैं –

‘‘ था सुडौल औ’ गोरी बाँहों का कैसा विस्तार
निठुर के थे कैसे भुजपाश कि मेरी देह
निबल औ’ क्षीण हो गई
और नयन, क्या कहूँ देखकर हुए उन्हें निश्चेत
नहीं तनिक भी रह पाया था लोक-लाज का ध्यान मुझे
डूब गया था ज्यों जल में जलयान
वात में दीप बुझे ’’[58]

‘दो पोज’ कविता में कवि ने सद्यस्नाता नारी के केशों का मनोहारी अंकन किया है –

" पर जब तुम
केश झटक देती हो अनायास
तारों-सी बूँदें
बिखर जाती हैं आसपास "[59]

दुष्यंत कुमार की एक प्रसिद्ध कविता है 'दो लाज भरे सुरमई नयन' । इस कविता में कवि नवपरिणीता पत्नी श्रीमती राजेश्वरी त्यागी के अपूर्व रूप सौंदर्य का चित्ताकर्षक अंकन करते हैं । नवपरिणीता पत्नी का अपूर्व सौंदर्य कवि को पूरी तरह से वशीभूत कर लेता है । विवाह के दूसरे दिन लिखी गई इस कविता में कवि लिखते हैं –

" नूपुर ध्वनि-सी रून-झु-रून-झुन
करती आई दृग के पथ में
वह चपल बालिका भोली थी
कर रही लाज का भार वहन
झीने घूँघट पट से चमके
दो लाज भरे सुरमई नयन ।"[60]

दुष्यंत कुमार नारी के बाह्य सौंदर्य को देखकर ही मंत्रमुग्ध नहीं होते अपितु उन्हें नारी का आंतरिक सौंदर्य भी आकर्षित करता है । उसकी लज्जाशीलता, उसकी सौम्यता, उसकी कोमलता, उसका निश्छल स्नेह कवि के हृदय पर अमिट प्रभाव

डालती है । 'पत्नी के प्रति' कविता में हम इसे देख सकते हैं । कवि लिखते हैं –

" दृग उत्पल रूपी सतरंगे कजरारे बादल
अधरों में मधु की गहराई, सागर का जल
वर्ण कि जैसे राका की रश्मियाँ समुज्ज्वल
संसृति व्यापी रूप तुम्हारा तन का घेरा
बोलो किन तत्त्वों से निर्मित प्राण तुम्हारा
बोलो किन तत्त्वों से निर्मित स्नेह सितारा
जो पग-पग पर प्रेयसि मुझको दिया सहारा
ज्योतिर्मय कर दिया पंथ पर घिरा अँधेरा ।"[61]

इसी तरह जब वे पुरूष सौंदर्य के अंतर्गत भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के शारीरिक सौंदर्य का वर्णन करते हैं तब उनकी दृष्टि बापू के आंतरिक सौंदर्य पर ठहर जाती है । वे बापू के आंतरिक सौंदर्य का चित्र खींचते हुए लिखते हैं –

" अस्थि का कंकाल फिर भी शक्तिमय
वृद्ध एवमा शुष्क फिर भी ज्योतिमय
नेत्र थे कुछ क्षीण फिर भी अग्निमय
था अरे कृश कंठ फिर भी ओजमय "[62]

अस्तु, यही कहा जा सकता है कि कवि ने अपनी कविताओं में मानवीय सौंदर्य के मनमोहक चित्र खींचे हैं ।

श्रमशील-सौंदर्य

दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में श्रमशील सौंदर्य का अंकन किया है । जहाँ एक तरफ कवि प्रेमिका और प्रकृति के अपूर्व सौंदर्य से विस्मित है, वहीं दूसरी तरफ वे श्रमशील किसान के दीन, जर्जर शरीर में अद्भूत सौंदर्य देखते हैं । कवि ने 'गौतम बुद्ध से' शीर्षक कविता में लिखा है कि वे 'भूखी मानवता के कवि और जर्जर जनता के उद्घोषक' है । अपने को सामान्यजन से सम्पृक्त करनेवाले कवि दुष्यंत का जर्जरित और तथाकथित असुन्दर सौंदर्य से अभिभूत होना स्वाभाविक ही है । 'किसान' शीर्षक कविता में कवि किसान के सौंदर्य का सजीवांकन करते हैं –

" गतिहीन, दीन, जर्जर शरीर
मुख पर चिंता की लिए छाप
युग-युग से सोया आँख मूँद
सोया हो ज्यों कालुष्य पाप "[63]

प्रगतिशील कवि नागार्जुन की भाँति कवि दुष्यंत कुमार को आमजन का सौंदर्य सहज आकर्षित करता है । पेट भरनेवाले किसान की काया अन्नाभाव से जर्जरित और दुर्बल है, फिर भी कवि को उसमें आकर्षण दिखता है क्योंकि यह दुर्बल और जर्जरित शरीर करोड़ों लोगों की क्षुधापूर्ति का कारक है । इसी तरह कवि चट्टानों पर पड़े छाप को देखकर आनन्दित होते हैं । यह छाप बनावटी नहीं,

यह उन मजदूर के पैरों की छाप है जो बोझा लादकर चट्टानों पर चढ़ते हैं । कवि इस श्रमशील सौंदर्य का खूबसूरती से अंकन करते हैं –

> ‘‘ चट्टानों पर खड़ा हुआ तो छाप रह गई पाँवों की,
> सोचो कितना बोझ उठाकर मैं इन राहों से गुजरा ।’’[64]

कवि को श्रम करनेवालों का सौंदर्य, उनके घोर संघर्ष के कारण खींचता है । किसान-मजदूर के श्रम-सौंदर्य को चित्रित करते हुए कवि उनके कटु–त्रासदायक जीवन की विडम्बना को भी सहज अनावृत्त कर देते हैं । मजदूर के ‘सूखे पपड़ी पड़े हुए होंठ’ उनके कभी खत्म होने वाले कठोर श्रम की व्यथा को ही उजागर करते हैं –

> ‘‘ लेकिन कुछ हाथ इसी जमीन में
> जिन्दगी भर खुदाई करते रहे
> और कुछ सूखी पपड़ियों वाले होंठ
> पानी-पानी चिल्लाते हुए
> खामोश हो गए ?’’[65]

कवि दुष्यंत कुमार की कविताओं में सौंदर्य चित्र के आधार पर यही कहा जा सकता कि उनकी सौंदर्य-दृष्टि यथार्थ चेतना से अनुप्राणित है । सौंदर्यांकन में भी उनकी दृष्टि समाज में व्याप्त सच्चाईयों पर ही रही है । उनकी सौंदर्य-दृष्टि उदार और व्यापक है । वह कल्पित न होकर स्वानुभूत सत्य पर आधारित है ।

3. प्रशंसात्मक कविताएँ

दुष्यंत कुमार के काव्य जगत में एक विशेष पहलू देखने को मिलता है । उन्होंने कई महान हस्तियों की प्रशंसा की है । उनके सामाजिक प्रदेय एवं जनहित की चिंता देखकर कवि अभिभूत है । राजनीतिक व्यक्तित्वों में कवि जहाँ राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी और 'आजाद हिन्द फौज' के संस्थापक नेताजी सुभाषचंद्र बोस की प्रशंसा करते हैं, वहीं साहित्यिक व्यक्तित्वों में गोस्वामी तुलसीदास और महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के सामाजिक और साहित्यिक प्रदेय को स्मृत कर, मुक्त कंठों से उनकी प्रशस्ति करते हैं ।

भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की प्रशंसा करते हुए दुष्यंत कुमार ने कई कविताएँ लिखी हैं । भारत देश को विदेशी दासता से मुक्त कराने में महात्मा गाँधी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । 'सत्य और अहिंसा' रूपी हथियार से गाँधीजी ने भारतवासीयों को विदेशी दासता से मुक्त कराया । यह मुक्ति एक समय अकल्पनीय थीं किंतु बापू की दृढ़ता और जन-समर्पण ने मुक्ति की कल्पना को हकीकत में परिवर्तित कर दिया । गाँधीजी ने केवल विदेशी सत्ता से ही मुक्ति नहीं दिलवाई बल्कि भारतीय समाज में व्याप्त मानवविरोधी सभ्यता और संस्कृति पर भी कुठाराघात किया और समाज में समता स्थापित करने के लिए संघर्षशील रहें । वे सच्चे अर्थो में समाज के शोषित और उपेक्षित जनों के सच्चे हितैषी थें । वे मानव-मात्र के कल्याण के लिए सर्मपित थे । कवि को लगता है कि गाँधीजी के

चिंतन के केंद्र में केवल मानव-मात्र के लिए ही चिंता समाहित थी । गाँधीजी ने समाज से संकीर्णता हटाने के लिए अपना तन-मन न्यौछावर कर दिया । बापू ने दिशाहीन भारतवासियों को पथ दिखाया । वे युग के पथ-प्रदर्शक थे –

‘‘ जिसकी भृकुटी से जन–जन की
तलवारें छूटा करती थीं
जिस मधुर कंठ से अमृत की
फव्वारें फूटा करती थीं
वह शक्ति पुंज ,वह ज्ञान कुंज, संबंध
तोड़कर चला गया ’’[66]

गाँधीजी ने समाज में सद्भाव और एकता स्थापित करने की चेष्टा की । मानव-मानव के बीच प्रेम और भाईचारा का पाठ सिखाया । उन्होंने अपनी कई कविताओं में बापू के योगदान की प्रशंसा की है । कवि बापू की सामाजिक चेतना के बारे में लिखते हैं –

‘‘ रूप मानव का धरे अवतार था
स्कंध पर निज राष्ट्र का ही भार था
जिस पे आश्रित राष्ट्र का उद्धार था
जिन रगों में मातृ भू का प्यार था ’’[67]

‘आज युग का पथ–प्रदर्शक खो गया’,‘सिंधु ने अपने हृदय में ज्वार लाकर’,‘यह

बार–बार कह रहा कौन' ,'वह भारत का भगवान' ,'अब सुमनों की भरमार कहाँ', 'इस दिन सारा जग रोया था' आदि कविताएँ बापू के अविस्मरणीय योगदान को दर्शाती है । कवि ने बापू के लिए 'भारत का भगवान','भारत की नौका का नाविक', 'युग का पथ-प्रदर्शक' आदि सम्मानीय सम्बोधन प्रस्तुत किये हैं ।

'आजाद हिन्द फौज' के संस्थापक सुभाषचंद्र बोस ने कवि को प्रभावित किया था । सुभाषचंद्र बोस की प्रशंसा में दुष्यंत कुमार ने 'हे भारत जननी के किरीट' शीर्षक से एक कविता लिखी है । उनपर लिखी गई इस एकमात्र कविता में कवि दुष्यंत कुमार उनकी देश-भक्ति की प्रशंसा करते हैं । देश को आजादी दिलाने में उनकी सेना का अहम योगदान रहा । इसी योगदान की चर्चा करते हुए कवि लिखते हैं –

'' हे भारत जननी के किरीट
तुमको है शत-शत नमस्कार
जब घोर अमाँ की रातें थीं
काली-काली बरसातें थीं
हम चलने में घबराते थे
जब चली झंझावतें थीं
तब तुमने नभ-कालिख धोकर
था खोल दिया नभ प्रात-द्वार ''[68]

वैविध्य के कवि महाप्राण निराला हिन्दी के एक जीवट रचनाकार थे । वे क्रांतिकारी व्यक्तित्व के धनी थे । सामाजिक और साहित्यिक रूढ़ियों को नकारने का जो अपरिमित साहस निराला में देखने को मिलता है, वह शायद ही उनके समकालीनों में दिखता हो । उनकी कविताओं ने आने वाले कवियों का मार्गदर्शन किया । उन्हें खुलकर भावाभिव्यक्ति का मौका दिया । आज जिस मुक्तछन्द को रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम मानते हैं, उस मुक्त छन्द में रचना करने पर कवि निराला की काफी आलोचना हुई । कई आलोचकों ने उसे 'रबर छन्द', 'केंचुआ छन्द' जैसे विशेषणों से विभूषित किया और कवि का मजाक उड़ाया । किंतु निराला स्वयं में निराले थे । युगीन आलोचना से वे कभी भी विचलित नहीं हुए । जितनी अधिक उनकी आलोचना हुई, कथ्य और शिल्प और अधिक सशक्त होते गये । कवि दुष्यंत कुमार ने महाप्राण निराला की प्रशस्ति में 'निराला' शीर्षक से एक कविता लिखी है । इस एक कविता में दुष्यंत कुमार ने निराला के विलक्षण व्यक्तित्व और कृतित्व को हमारे समक्ष विराट् रूप में प्रस्तुत कर दिया है । कवि निराला की दृढ़ता, अविचल, अविरत साधना की प्रशंसा करते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं –

'' अविरल सतत तुम

साधना में रत तुम

हिले नहीं फिरे नहीं

डरे नहीं गिरे नहीं ''[69]

निराला ने हिन्दी साहित्य को 'राम की शक्ति-पूजा','सरोज-स्मृति','जूही की कली', 'कुकुरमुत्ता', 'भिक्षुक', 'विधवा' जैसी अनोखी और सामाजिक यथार्थ से युक्त रचनाओं से समृद्ध किया । 'सरोज-स्मृति' में कवि जहाँ एक ओर तटस्थ भाव से अपनी एकमात्र पुत्री की कारूणिक मृत्यु से उत्पन्न शोक का वर्णन करते हैं, वही समाज में व्याप्त जातिगत रूढ़ियों पर कुठाराघात भी करते हैं । स्वयं एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण होकर समजातिवालों पर बेपरवाह, बेखौफ व्यंग्य कसना कवि निराला के ही बूते की बात थीं । इसीलिए कवि दुष्यंत कुमार लिखते हैं –

''पंथ के खोबों से
दुबे और चौबों से,
बढ़ते गए आठ पहर
चढ़ते गये गिरि गह्वर ''[70]

निराला ने समाज को नया दृष्टिकोण प्रदान किया । सामाजिक बंधन के साथ-साथ, साहित्यिक बंधन को तोड़कर साहित्याभिव्यक्ति को सहज और सरल बनाया । भाषागत रूढ़ियों को तोड़नेवाला 'मुक्त छन्द' निराला का हिन्दी साहित्य-संसार को दिया गया अमूल्य और अतुलनीय उपहार है । आज की विराट और वैभवपूर्ण हिन्दी साहित्य सम्पदा इसी पर अवस्थित है । दुष्यंत कुमार लिखते हैं –

'' बसा सके नई धरा

कि तोड़कर परंपरा

नए विचार रीति से

नए दुलार प्रीति से

कठोर हो दुलारकर

पुकारकर सुधारकर

बना लिया नया गगन

नई लगन नए नयन

नवीन दृष्टिकोण से

जहाँ देखते रहे ''[71]

निराला के बारे में रामविलास शर्मा ने लिखा है –''साहित्य और समाज में कौन ऐसा निहित स्वार्थ है जिसे निराला से भय न हुआ हो ? नायिका-भेद के उपासक पुरातनपंथी कवि, जातिप्रथा के सहारे जीने वाले धर्मध्वज पंडे-पुरोहित, सामंतों और पूँजीपतियों के दलाल, सभी इस व्यक्तित्व से चौकन्ने थे । ''[72] निराला के चरित्र की इसी अद्वितीयता से दुष्यंत कुमार प्रभावित थे –

'' न दुःख तुझे रूला सका

न सुख तुझे सुला सका

कि हार–हारकर थके

तुम्हें न पर समझ सके

सदय करूण इंसान हो

खुद आप में भगवान हो ''[73]

दुष्यंत कुमार ने निराला को 'नववधू हिन्दी की माँग की लाली' संबोधन कर उनके अमूल्य अवदान की ओर इशारा किया है । कवि को लगता है कि निराला 'भाषा की नाज' और 'हिन्दी के प्राण' है । उनके साहित्य के बिना हिन्दी का साहित्य संसार कंगाल और अनाथ है । निराला महज एक कवि नहीं हिन्दी के सबसे बड़े कवि और सबसे अधिक मान्य-पूज्य व्यक्तित्व थे । दुष्यंत कुमार ने निराला के ऊपर 'निराला:एक याद,एक उत्सव' नाम से एक लेख भी लिखा है ।

दुष्यंत कुमार ने अपने रचना-संसार में भक्तिकाल के महान्तम कवि गोस्वामी तुलसीदास को स्थान दिया है । तुलसीदास का अभिनन्दन करते हुए कवि ने 'ओ अमर गायक करो स्वीकार अभिनन्दन' शीर्षक से एक कविता लिखी है । कवि ने उन्हें 'देव का अवतार', 'पावन ज्योति' आदि कहकर सम्बोधित किया है । तुलसीदास ने राम-भक्ति की अजस्र धारा प्रवाहित कर हताश हिन्दू–जाति में नवीन आशा और उत्साह का संचार किया । तुलसीदास ने समाज में व्याप्त नैतिक अवमूल्यन को मिटाने के लिए आदर्श और मर्यादा की स्थापना की । उनके आदर्श चरित्र समाज और परिवार में बढ़ रही विशृंखलता को दूर करने में सहायक है । तुलसीदास कृत ग्रंथ 'रामचरित मानस' हिन्दुओं का पवित्र ग्रंथ माना जाता है । तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ को अंकित किया है । गउनके

'रामराज्य' की परिकल्पना में समाज के सभी वर्ग का कल्याण विन्यस्त है । महाकवि की प्रशंसा करते हुए दुष्यंत कुमार लिखते हैं –

"इस धरा पर तुम अमा में चाँद बन उतरे
भक्ति का सौभाग्य पहिने ज्ञान के गजरे
क्या हुआ यदि स्वर्ग में तुम हो नहीं जग में
ध्वनि तुम्हारी तो ध्वनित है आज तक मग में
गूँजते हैं आज भी जग में वही स्वन ।
ओ अमर गायक करो स्वीकार अभिनन्दन ।"[74]

कवि अपने जीवन में अनेक लोगों से प्रभावित हुए । उनकी समाज और जन-सचेतंता ने कवि के मर्म का संस्पर्श किया । कवि इन महान् व्यक्तिव के प्रति श्रद्धारत है और अपनी श्रद्धा को उनकी प्रशस्ति कर व्यक्त करते हैं । जहाँ महात्मा गाँधी और सुभाषचंद्र बोस भारतीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, वहीं गोस्वामी तुलसीदास और महाप्राण निराला के बिना हिन्दी साहित्य अधूरा और आधारहीन है । इन महान विभूतियों के प्रति अपने हृदयस्थ सहज एवं सरल उद्गारों को कवि ने मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त किया है ।

समग्रत: दुष्यंत अनुभूतियों के कवि हैं । उनके अनुभव का दायरा व्यापक है । उनकी कविताओं में युग जीवन का भयावह यथार्थ भी है और प्रेम एवं सौंदर्य जैसे कोमल भाव का अंकन भी । प्रेम और सौंदर्य से संबंधित कविताओं में

कवि का भावुक रूप दृष्टिगत होता है । उनकी प्रेम, सौंदर्य और प्रशंसात्मक रचनाओं में चित्रित सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव अर्थ-गांभीर्य से परिपूर्ण है । सामान्यजन के प्रति उनमें अगाध स्नेह है । यही वजह है कि वे अपने कवि-कर्म की सार्थकता उन करोड़ों लोगों की वाणी बनने में मानते हैं, जिनकी थकन और बेबसी उन्हें विचलित करती है । उनके प्रेम, सौंदर्य और प्रशंसात्मक कविताओं में भी यह सामान्यजन चित्रित है । जहाँ एक ओर आभिजात्य सौंदर्य के प्रति उनमें रूझान दृष्टिगत होता है, वहीं दूसरी ओर किसान और मजदूर का श्रमशील सौंदर्य देखकर वे अभिभूत होते हैं । महान विभूतियों की प्रशस्ति करते वक्त भी उनके जहन में सामान्यजन के प्रति लगाव ही दिखाई देता है । इस तरह कहा जा सकता है कि उनकी कविताओं के अन्य पहलू उनकी अनुभूतियों की व्यापकता और गहनता, सृजनात्मक कुशलता और रचनात्मक वैविध्य को प्रकट करते हैं ।

सन्दर्भ सूची

1. सं.– नामवर सिंह, चिंतामणि भाग–3, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय आवृत्ति, 2004, पृष्ठ संख्या – 232

2. शर्मा रमाकांत, कविता की लोकधर्मिता, रॉयल पब्लिकेशन, राजस्थान, प्रथम संस्करण 2009, पृष्ठ संख्या – 191

3. श्रीवास्तव एकांत, कविता का आत्मपक्ष, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2010, पृष्ठ संख्या – 49

4. शर्मा ब्रजमोहन, कवि अज्ञेय : विश्लेषण और मूल्यांकन, इतिहास शोध संस्थान, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000, पृष्ठ संख्या – 80

5. KavitaKosh.org/kk/ चिर तृषित कंठ से तृप्त विधुर/ जयशंकर प्रसाद, accessed on 24/02/14 at2:00pm

6. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग –1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007, पृष्ठ संख्या – 25

7. वही, पृष्ठ संख्या – 199

8. वही, पृष्ठ संख्या – 199

9. वही, पृष्ठ संख्या – 199

10. वही, पृष्ठ संख्या – 128

11. वही, पृष्ठ संख्या – 193

12. वही, पृष्ठ संख्या – 282

13. वही, पृष्ठ संख्या – 193

14. वही, पृष्ठ संख्या – 158

15. वही, पृष्ठ संख्या – 168

16. वही, पृष्ठ संख्या – 163

17. वही, पृष्ठ संख्या – 199

18. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों का यार पृष्ठ संख्या –27

19. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 136

20. वही, पृष्ठ संख्या – 193

21. वही, पृष्ठ संख्या – 150

22. वही, पृष्ठ संख्या – 179

23. वही, पृष्ठ संख्या – 190

24. वही, पृष्ठ संख्या – 222

25. वही, पृष्ठ संख्या – 197

26. वही, पृष्ठ संख्या – 204

27. घोरपड़े पद्मजा, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में प्रणय–चित्रण, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1998, पृष्ठ संख्या – 94

28. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 24

29. वही, पृष्ठ संख्या – 135

30. वही, पृष्ठ संख्या – 141

31. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग– 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 291

32. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 140

33. वही, पृष्ठ संख्या – 144

34. वही, पृष्ठ संख्या – 143

35. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 261

36. मुजावर डॉ. सरदार, दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों का समीक्षात्मक अध्ययन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003, पृष्ठ संख्या – 37

37. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 140

38. वही, पृष्ठ संख्या – 266

39. वही, पृष्ठ संख्या – 288

40. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 25

41. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007, पृष्ठ संख्या – 172

42. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों का यार, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 66

43. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग– 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 82

44. शर्मा रामविलास, आस्था और सौंदर्य, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहली आवृत्ति, 2002, पृष्ठ संख्या – 36

45. शुक्ल रामचंद्र, चिंतामणि भाग–1, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण, संवत् 2058 वि., पृष्ठ संख्या – 91

46. वही, पृष्ठ संख्या – 92

47. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 394

48. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 263

49. वही, पृष्ठ संख्या – 263

50. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 381

51. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 199

52. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 123

53. वही, पृष्ठ संख्या – 375

54. वही, पृष्ठ संख्या – 395

55. वही, पृष्ठ संख्या – 243

56. वही, पृष्ठ संख्या – 201

57. वही, पृष्ठ संख्या – 179

58. वही, पृष्ठ संख्या – 241

59. वही, पृष्ठ संख्या – 175

60. वही, पृष्ठ संख्या – 223

61. वही, पृष्ठ संख्या – 145

62. वही, पृष्ठ संख्या – 358

63. वही, पृष्ठ संख्या – 141

64. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन,

नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 285

65. वही, पृष्ठ संख्या – 228

66. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 148

67. वही, पृष्ठ संख्या – 144

68. वही, पृष्ठ संख्या – 139

69. वही, पृष्ठ संख्या – 215

70. वही, पृष्ठ संख्या – 215

71. वही, पृष्ठ संख्या – 216

72. शर्मा रामविलास, निराला, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, तीसरी आवृत्ति, 2000, पृष्ठ संख्या – 146

73. वही, पृष्ठ संख्या – 216

74. वही, पृष्ठ संख्या – 219

अध्याय-6

दुष्यंत कुमार की जीवन-दृष्टि

1. गाँधीवादी दृष्टि
2. संघर्ष का स्वर
3. क्रांति का स्वर
4. आस्थावादी दृष्टि
5. आशावादी दृष्टि
6. मानवतावादी दृष्टि

सन्दर्भ-सूची

जीवन और साहित्य का संबंध घनिष्ठ होता है। जीवन साहित्य–सर्जन के लिए प्रेरित करता है। साहित्य जीवन को शब्दों के द्वारा नया रूपाकार देता है। साहित्य में हम समाज के विविध रूपों को देखते हैं। प्रत्येक रचनाकार जीवन के विविध रूपों को अपने नजरिये से गहराई से देखता है, परखता है, फिर उसे रचनात्मक रूप देता है। जीवन को देखने और परखने की कसौटी प्रत्येक रचनाकार की भिन्न-भिन्न होती है। जीवन का प्रत्येक रूप, प्रत्येक भाव रचनाकार की संवेदना का संस्पर्श नहीं कर पाता है। जो रूप और जो भाव उसकी संवेदना को झकझोरता है, उसे उद्वेलित करता है, वहीं जीवन-दृष्टि बनकर उसके रचना–संसार में प्रकट होता है। रचनाकार सर्वप्रथम जीवन को भोगता है, उसके विविध पहलुओं का सूक्ष्म अवलोकन करता है, तत्पश्चात् उसे अपने सृजन-संसार में नई भाव-भंगिमा के साथ चित्रित करता है। प्रत्येक रचनाकार की जीवन-दृष्टि पृथक होती है। इस पृथकता के मूल में रचनाकार के जीवनावलोकन और जीवनानुभव की भिन्नता है। जीवनावलोकन और जीवनानुभव की क्षमता रचनाकार की संवेदनशीलता पर निर्भर है। जितनी गहरी संवेदनशीलता होगी, उतनी ही परिपक्व उसकी वैचारिकता होगी। रचनाकार किन मूल्यों को महत्वपूर्ण मानता है और कौन से मूल्य उसके लिए व्यर्थ है, यह जीवन के प्रति उसके नजरिये से जाना जा सकता है। रचनाकार अपने युग और परिवेश से गहन रूप से प्रभावित होकर ही रचना–कर्म की ओर प्रवृत होता है। उसका युग और परिवेश ही उसे रचना कर्म के

लिए कच्चा माल प्रदान करता है । युगीन हलचल रचनाकार के चिंतन पक्ष को जागृत कर, उसमें वैचारिकता का उन्मेष करती है । यही वैचारिकता प्रौढ़ होकर उसकी जीवन-दृष्टि के रूप में उसके रचना–संसार में प्रकट होती हुई पाठकों से साक्षात्कार करती है । राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिवेशगत यथार्थ रचनाकार की सृजनशीलता और वैचारिकता को नये सन्दर्भो के साथ सम्पृक्त करती है । रचनाकार की जीवन-दृष्टि की निर्मिति में युगीन परिवेश और संस्कारों का विशेष प्रभाव तो रहता ही है, कई विशिष्ट व्यक्तित्व का भी प्रभाव रहता है । एक रचनाकार की जीवन-दृष्टि रचना के रूप में, उसकी सोच, उसके चिंतन को जाहिर करती है ।

दुष्यंत कुमार हिन्दी साहित्य की नई कविता धारा के विशिष्ट कवि और एक संवेदनशील सर्जक है । कवि दुष्यंत कुमार की चेतना के केंद्र में हमेशा से सामान्यजन रहा है । वे हर क्षण अपने आसपास सामान्यजन को महसूस करते हैं । उनकी जीवन-दृष्टि का विकास इसी सामान्यजन की दुरावस्था को देखकर हुआ । वे लिखते हैं –

‘‘ मेरे चारों ओर
सड़कों और झोपड़ों के जाल
और तरह–तरह के सवाल क्यों हैं ? ’’[1]

सर्जन-कर्म को महत्वपूर्ण और जनोपयोगी माननेवाले कवि दुष्यंत कुमार की जीवन-दृष्टि युगीन जन-विरोधी परिस्थितियों की निर्मिति है । दुष्यंत कुमार एक कवि के रूप में जब हिन्दी जगत में पदार्पण करते हैं, वह अस्थिरता, अराजकता और अनास्था का समय था । भारत वर्षो की गुलामी से मुक्त हो रहा था । पर इस मुक्ति के साथ ही कई तरह की विसंगतियाँ समाज में पनपने लगी थीं । अंग्रेजो की 'फूट डालो और राज करो' की नीति का नया संस्करण पूँजी परिचालित लोकतंत्र के रूप में नजर आया । चारों ओर के मानवविरोधी स्थितियों ने जन-प्रतिबद्ध रचनाकार के मर्म को गहरे स्तर तक आन्दोलित किया । वे आसपास के भयावह यथार्थ को चुपचाप दर्शक बनकर नहीं देख सकें और इस व्यवस्था में बदलाव लाने के लिए अपनी लेखनी को सशक्त बनाने में जुट गये । सामाजिक यथार्थ के प्रवक्ता दुष्यंत कुमार की जीवन–दृष्टि मूल रूप से मानवतावादी है । वे मानवता की रक्षा और विकास के लिए प्रतिबद्ध है । उन्होंने स्वयं को 'भूखी मानवता का कवि' और 'जर्जर जनता का उद्घोषक' कहा है । उनकी रचनाओं के समग्र अवलोकन से यह बात प्रमाणित हो जाती है कि उन्होंने अपने बारे में जो कुछ कहा है, वह बिल्कुल सच है । सामान्यजन के प्रति आत्मीयता और सामाजिक अव्यवस्था के प्रति क्षोभ ने उनकी जीवन-दृष्टि को मानवीय-चेतना से परिपूर्ण बनाया । वास्तव में कवि का चिंतन कोरी कल्पना पर आधारित नहीं, वह जीवन के भयावह यथार्थ के साक्षात्कार से निष्पन्न है । यही कारण है कि जहाँ

भी उन्हें मानवता के समर्थक दिखायी दिये, वे उनकी ओर आकृष्ट हो गए । अपने कवि-कर्म के आरम्भिक दौर में जहाँ वे गाँधीजी के 'अहिंसात्मक दृष्टि' की ओर आकर्षित होते हैं , वही समाज की अतिशय निष्ठुरता से आहत हो मार्क्स के 'विद्रोह और क्रांति' को उचित ठहराते हुए सामान्यजन को प्रतिवाद का स्वर तेज करने के लिए प्रेरित करते हैं । कवि तत्कालीन सत्ता और शासन के प्रति मोहभंग से उत्पन्न निराशा और अनास्था के बीच आशा और आस्था के सूर्य को लेकर परिवर्तन का नया सवेरा लाने के लिए सूर्य का स्वागत करने हेतु चल पड़ते हैं ।

1. गाँधीवादी-दृष्टि

दुष्यंत कुमार की सृजन–यात्रा का आरम्भ आजादी के आसपास हुआ । उम्र से तो वे किशोरवय थे, पर युगीन हलचलों से अनभिज्ञ न थे । भारतीय जनमानस पर महात्मा गाँधी का प्रभाव किस कदर व्याप्त था, इसको वे प्रत्यक्ष देख रहे थें । गाँधीजी आमजन के सर्वप्रिय नेता बने हुए थे । बापू का आमजन के प्रति प्रेम और उत्तरदायित्वबोध ही था जिससे सभी सम्मोहित थे । कवि के पिता चौ. भगवत सहाय स्वयं गांधीवादी थे । कवि के आरम्भिक लेखन पर गाँधीजी के सत्य और अहिंसा जैसे मानववादी विचारों का व्यापक प्रभाव पड़ा । बापू के अंतर्मन में गरीब, बेबस, उपेक्षित मानव के लिए जो गहन करूणा व्याप्त थी, उससे कवि अत्यंत अभिभूत हुए । समाज के विपन्न वर्ग के लिए बापू की संवेदना मात्र

वाचिक नहीं अपितु आत्मिक थी । गाँधीजी ने अपने आप को सम्पूर्ण रूप से भारत की आजादी और आमजन के उद्धार के लिए समर्पित कर दिया था । वरिष्ठ गांधीवादी आलोचक विष्णु प्रभाकर ने लिखा है – ‘‘गाँधीजी मानते थे कि उनके सपनों का स्वराज्य गरीबों का स्वराज्य होगा । जीवन की जिन आवश्यक वस्तुओं का उपयोग राजा और अमीर लोग करते हैं, वही उन्हें भी सुलभ होनी चाहिये । उनके लिए प्रजातंत्र का अर्थ था कि इस तंत्र में नीचे-से-नीचे और ऊँचे से ऊँचे आदमी को बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिए ।’’[2] इस कथन से स्पष्ट है कि गाँधीजी ने सामाजिक और आर्थिक समानता पर विशेष बल दिया । गरीब गाँधीजी के चिंतन के केंद्र में थे । वे स्वराज्य के द्वारा गरीबों के जीवन से दुख और अभाव को मिटाना चाहते थे । दुष्यंत कुमार की आरम्भिक कविताओं में गाँधीजी के मानवतावादी विचारों का खासा प्रभाव दिखता है । कवि भी अपनी कविता को समाज के बेबस, लाचार, विपन्न, उपेक्षित वर्ग के समर्थन में खड़ा करते हैं । कवि के अंत:करण में समाज और आमजन के प्रति जो करूणा और संवेदनशीलता दिखलाई पड़ती है, उसका उद्‌गम गाँधीजी के विचारों से माना जा सकता है । गाँधीवाद की ओर उनका झुकाव कैसे हुआ है, इन कारणों की पड़ताल करते हुए विजय बहादुर सिंह लिखते हैं – ‘‘राष्ट्रीय आन्दोलन को उसने अपनी किशोर आँखों से देखा था । पिता चौ. भगवत सहाय भी गाँधीजी के क्रियाकलापों से अत्यंत प्रभावित रहे हैं । किशोर काल में गाँधी पर लिखी उसकी अनेक कविताएँ यह

साबित करती हैं कि गाँधी को वह भारत के लोगों का राष्ट्रपिता और भाग्यविधाता ही नहीं, देवदूत भी समझता है और उसकी यह धारणा निरंतर बलवती होती गई। शायद तभी से अन्याय का प्रतिरोध और रामराज्य का सपना उसके कवि-जीवन का बुनियादी धर्म बन गया।"[3]

उन्होंने अपनी कई आरम्भिक कविताओं में गाँधीवादी विचारधारा का समर्थन किया है। वे महात्मा गाँधी को कई विशेषणों से सम्बोधित करते हैं। उनके अनुसार बापू 'भारत का भगवान','विष्णु का अवतार',मानवता का समर्थक', 'युगपुरूष', 'शक्तिपुंज', 'ज्ञानकुंज' आदि कई रूपों में अवतरित हुए हैं। कवि बापू के योगदान और महत्ता से सम्पूर्ण जगत को परिचित कराते हैं। वे यह मानते हैं कि सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और सांस्कृतिक समस्याओं के निराकरण के लिए गाँधीजी के विचार ही श्रेष्ठ है। संसृति के विकास के लिए गाँधीजी का मानवतावादी पथ ही सर्वोत्तम है। कवि जीवन के प्रत्येक क्रिया-व्यापार को मानवीय नजरिये से देखते और परखते हैं।

" मानकर आदर्श चल पद-चिह्न पर
तभी संसृति हो सकेगी अग्रसर "[4]

गाँधीजी ने भारत को केवल अंग्रेजो से मुक्त कराने की ही चेष्टा नहीं की अपितु सत्य और अहिंसा रूपी हथियार से मानवविरोधी संकीर्णता को दूर करने के लिए भी तत्पर रहे। कवि दुष्यंत कुमार भी कलम रूपी हथियार से समाज में व्याप्त

विषमता, अव्यवस्था और जनविरोधी शक्तियों से लोहा लेने के लिए प्रेरित होते हैं । वे रचनाकार को 'योद्धा' संबोधित करते हुए लिखते हैं –

" कविता से धर्म भला निभता है
पूरा हो पाता कर्तव्य कहीं !
कविता दस-पंद्रह को सुख देती
लेकिन दस-पंद्रह की सृष्टि नहीं
अंबर के आँचल को छोड़े हम
धरती पर टिके हुए हाथ गहे
मैंने तो यही कहा-
लड़े पक्षधर हो मानवता के
कवि भी औ' योद्धा भी हमीं रहें ।"[5]

गाँधीजी मानवीय-मूल्यों के प्रसार के लिए प्रतिबद्ध थे । वे सच्चे अर्थों में एक राजनीतिक व्यक्तित्व नहीं बल्कि एक मानवीय व्यक्तित्व एवं मानवतावादी मूल्यों की पहचान है । स्वानुभूत सत्य पर आधारित उनका चिंतन प्रत्येक दृष्टिकोण से जन के पक्ष में है, उनके उन्नयन के लिए हैं । वास्तव में बापू विदेशी शासन के दमन चक्र से उतने व्यथित नहीं थे, जितने की उस मानसिक जड़ता और दासवृत्ति से जो भारतीय समाज के धनी और ऊँच्च वर्ग में परिव्याप्त थी । हमारी पारस्परिक वैमनस्य भावना, एकता और भाईचारे की कमी की वजह से

हम अंग्रेजो की दासता के शिकार हुए । हमारी आपसी फूट का फायदा अंग्रेजो ने बखूबी उठाया । आर्थिक, सामाजिक और नैतिक सभी दृष्टियों से हमें काफी क्षति पहुँचाई गई । इस क्षति की पूर्ति के लिए बापू ने सत्य, प्रेम और अहिंसा जैसे मानवीय मूल्यों के विस्तार को बढ़ावा दिया । चिंतक फुलार मिलर ने एक स्थान पर गाँधीजी के बारे में लिखा है –‘‘किसी जमाने में बुद्ध के सम्मुख जिस तरह मानवप्राणी की वेदना अपना अवगुंठन उठाकर खड़ी हो गई थी, उसी तरह अब वह गाँधी के सामने खड़ी हो गई है । इसलिए वे अपनी भावनाएँ और शक्तियाँ ऐसे किसी उद्योग में खर्च नहीं कर सकते जो भूखों को खिलाने में, नंगों की काया ढापने में और दुखियों को ढाढस बँधाने में प्रत्यक्ष रूप से सहयोग न दे ।’’[6] फुलार मिलर के इस कथन से जाहिर है कि गाँधीजी प्रत्येक कार्य-व्यापार को मानवीयता की कसौटी पर कसा करते थे और उसी को महत्व देते थे जो इस पर खड़ा उतरता था ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी आरम्भिक कई कविताओं में गाँधीजी के विचारों की प्रशंसा की है । वे बापू के बिना स्वस्थ और खुशहाल समाज की परिकल्पना ही नहीं कर पाते हैं । बापू उनके विचार से ‘युग के पथ प्रदर्शक’ थे । कवि को लगता है कि उनकी मृत्यु के उपरांत युग दिग्भ्रमित हो गया है –

‘‘ श्वास में जिसकी स्वराज्य दुलार था
आज में बस ऐक्य का सुविचार था

परिस्थितियाँ हाथ बाँधे डोलतीं
मुश्किलें आसान होकर बोलतीं
एकता का सुदृढ़ हार पिरो गया
आज युग का पथ प्रदर्शक खो गया ।''[7]

चन्दौसी काल के एक रजिस्टार पर किशोर कवि का अंग्रेजी में लिखा हुआ एक निबंध उपलब्ध होता है, जिसका शीर्षक है – 'हाउ डू यू सेलिब्रेट योर इंडिपेंडेंस डे'। इस निबंध में बापू की मृत्यु से उत्पन्न दर्द और निराशा का भाव दृष्टिगत होता है । विजय बहादुर सिंह का कथन इस सन्दर्भ में उल्लेख्य है – ''निबंध स्मृतिपरक है और 15 अगस्त, 1947 के दिन के उल्लासपूर्ण आयोजनों का इतिहास प्रस्तुत करता है, किंतु आखिर के कुछ वाक्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, जिनका सार यह है कि भारत अब एक स्वाधीन राष्ट्र है । हम भारतवासी दुनिया के सामने अपना मस्तक ऊँचा कर गौरव और स्वाभिमान के साथ खड़े होते हैं । प्रत्येक नागरिक को विकास करने की समान सुविधाएँ प्राप्त हो सकेंगी । भारत के लोग अपनी भूख, गरीबी, अज्ञानता और अन्य सामाजिक अभिशापों से लड़कर मुक्ति पा सकेंगे । लेख का अंतिम वाक्य अत्यंत उल्लेखनीय है जिसमें कवि लिखता है कि 'लेकिन यह बेहद शर्मनाक है कि हमीं में से एक ने राष्ट्रपिता की हत्या कर दी ।''[8] कवि को लगता है कि जिस राष्ट्रपिता ने भारतवासियों को विदेशी पराधीनता से मुक्त कराने के लिए अस्त्र-शस्त्र के समक्ष अहिंसा का रास्ता अपनाया और अकल्पनीय जीत हासिल

की, भारत को गरीबी मुक्त कराने के लिए कई उद्योग किए, स्त्रीयों की शिक्षा और उद्धार के लिए कार्य किए, जिसकी हर सोच में, हर उद्यम में सामान्यजन की हितचिंता समाहित थी, उस राष्ट्रपिता की इंसानियत के प्रत्युत्तर में अपने ही भारतवासी भाई द्वारा गोली चलाकर हत्या कर देना, साहस नहीं कायरता है । उनकी हत्या से संसृति शून्यता से भर गई है । कवि के लिए बापू जन-जन की आशा के केंद्र और शक्तिपुंज थे ।

कवि दुष्यंत कुमार की जीवन-दृष्टि पर गाँधीजी का प्रभाव परिलक्षित होता है खासकर समाज के हाशिये पर खड़े लोगों के प्रति जो उत्तरदायित्वबोध और मानवीयता दिखाई देती है, उसके प्रस्फुटन में गाँधीजी के विचारों का योगदान रहा है । दुष्यंत कुमार के समकालीन कवियों में एक भवानीप्रसाद मिश्र विशुद्ध गाँधीवादी रचनाकार माने जाते हैं । भवानीप्रसाद मिश्र ने गाँधीवादी विचारधारा को पूर्णत: अपनाया है । दुष्यंत कुमार इस अर्थ में गाँधीवादी नहीं है । वे विचारधाराओं को इस कसौटी पर परखा करते थें कि उसमें आम उपेक्षित जनों के लिए सच्ची संवेदना और हितचिंता किस हद तक व्याप्त है । उन्होंने लिखा भी है –''जहाँ सच्चाई का हनन होता है, जहाँ स्वतंत्राता के मिजाज को दबाया जाता है, वहाँ अपनी अहिंसा की सारी परम्परा और पृष्ठभूमि के बावजूद हम खामोश नहीं बैठ सकते और हम क्या, शायद विश्व के किसी भी देश के साहित्य में ऐसी मिसाल न मिले कि कोई ऐसी तीखी प्रतिक्रिया हुई और वहाँ का साहित्य उससे निस्संग रह

गया ।''[9] स्पष्ट है कि कवि के लिए मानवीयता सर्वप्रमुख है । उनके जीवन-दृष्टि के मूल में मानवीय हित–चिंता समाहित है । यही वजह है कि दुष्यंत कुमार की परवर्ती दौर की रचनाओं में गाँधीजी की मानवतावादी दृष्टि तो विद्यमान है किंतु गाँधीवादी आदर्श विलुप्त है । जो कवि अपने सृजन के आरम्भिक दौर में 'सत्य और अहिंसा' के पथ पर चलने का आग्रह करते हैं और इस पथ को सही ठहराते हैं, वही कवि सृजन के परवर्ती दौर में समाज की अतिशय निष्ठुरता और अमानवीय व्यवहार देखकर आमजन को 'तबीयत से पत्थर उछालने', 'पेट भरकर गालियाँ देने' और 'हंगामा खड़ा करने' के लिए कहते हैं ।

अत: यही कहा जा सकता है कि वे विचारधारा का पिछलगुआ बनने के बजाये, उसमें निहित मानवीय मूल्यों को ग्रहण कर लेते हैं । उनकी आरम्भिक रचनाओं में गाँधीवादी विचारधारा के प्रति समर्थन दिखता है, वही परवर्ती रचनाओं में वे इसका विमर्थन करते हुए दिखते हैं ।

2. संघर्ष का स्वर

संघर्ष कवि की जीवनाशक्ति है । वे उस जीवन को निष्फल मानते हैं, जहाँ संघर्ष नहीं है । संघर्ष व्यक्ति को उसके आंतरिक शक्ति से परिचित कराती है । उसमें मौलिकता का सृजन करती है-

'' खंड–खंड होकर जिसने

जीवन-विष पिया नहीं ,
सुखमय, संपन्न मर गया, जो जग में आकर
रिस-रिसकर जिया नहीं ,
उसकी मौलिकता का दंभ निरा मिथ्या है
निष्फल सारा कृतित्व
उसने कुछ किया नहीं ।''[10]

दुष्यंत कुमार निर्भय कवि है । वे पराजय स्वीकरने के बजाए, उस स्थिति को छेड़ना ज्यादा पसन्द करते हैं इस बात की चिंता किए बगैर कि इस वजह से उसका हश्र क्या होगा –

‘‘ अब अपने मेहरबाँ से छेड़ करना भी जरूरी है
भले ही शख्सियत अपनी टुकड़ों में बदल जाए ।''[11]

अपनी निर्भयता के बारे में वे लिखते हैं –

‘‘ मैं अब किसी से डरता नहीं हूँ
चाहे वह चिड़िया हो या शेर
धर्म हो या नैतिकता
आदमी हो या राजनीति ''[12]

डॉ. कांतिकुमार के शब्दों में कहा जाए तो- ‘‘एक संवेदनशील प्रबुद्ध नागरिक की तरह दुष्यंत समसामयिक समस्याओं के प्रति जागरूक रहते हैं किंतु उनकी

संवेदनशीलता कभी पलायन, समझौते या भय का रूप ग्रहण नहीं करती । वे समसामयिक जीवन की समस्याओं का साक्षात्कार करते हैं किंतु कभी उनसे आक्रांत नहीं होते ।''[13]

स्पष्ट है कि कवि दुष्यंत कुमार ने जीवन में संघर्ष के महत्त्व को जाना और समझा था । उनकी रचनाधर्मिता इस संघर्ष से निखरकर ही पाठकों को संवेदित कर पायी है ।

3. क्रांति का स्वर

कहीं-कहीं पर दुष्यंत कुमार की जीवन–दृष्टि मार्क्सवाद से प्रभावित दिखती है । मार्क्स का मानना है कि क्रांति से ही समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है । मार्क्स अन्याय के दमन के लिए क्रांति के रास्ते पर चलने का आह्वान करता है । कवि दुष्यंत कुमार भी बदलाव के लिए क्रांति को महत्त्वपूर्ण मानते हैं । 'आवाजों के घेरे' संग्रह की अंतिम कविता 'गौतम बुद्ध से' में गौतम बुद्ध की इस मान्यता से सहमत दिखते हैं कि दुःख जीवन का शाश्वत सत्य है और यह सर्वत्र व्याप्त है, किंतु कवि यह मानने को तैयार नहीं है कि 'संघ धम्म की शरण' से वर्तमान विसंगतिपूर्ण व्यवस्था में एक जन–प्रतिबद्ध कवि को शांति मिलेगी । कवि को लगता है कि जब चारों ओर अराजकता छाया हुआ हो, सब गलियों और दरवाजों से चीख और कराहें उठ रही हो, ऐसी भयावह स्थिति में समस्या का यह

किंचित मात्र भी सटीक समाधान नहीं हो सकता । कवि गौतम बुद्ध से ही प्रश्न करते हैं –

“ आज धुएँ के इस घेरे में
तुम जीते होते तो बोलो,
तुम ‘दर्शन’ की सीख माँगते
या कहते ‘ये खिड़की खोलो’
क्या तब भी ये ‘दर्शनशास्त्र’
‘धम्म’ या ‘संघ’ सुहा सकते थे,
क्या तुम युग के स्वर से कोई
स्वर अलगा कर गा सकते थे?
ये जो उठती चीख-कराहें
सब गलियों सब दरवाजों से,
सच कहना क्या बचकर जा सकते थे
तुम इन आवाजों से? ”[14]

भगवान बुद्ध ने जिस दुःख की बात की थी वह ‘अनायास दुःख’ था । आज चतुर्दिक ‘सायास दुःख’ व्याप्त है । भूख, गरीबी, बेरोजगारी, महँगाई आदि दुःख चन्द लोगों की स्वार्थपरता के कारण समाज में अपनी जड़े गहरी करता जा रहा है । ऐसे दुःखों का निवारण बोधिवृक्ष के नीचे आँख मीचने पर नहीं हो सकता । इसके

लिए प्रत्यक्ष संघर्ष ही एकमात्र उपाय है । कवि क्रांति का बिगुल बजाते हुए लिखते हैं –

“ मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ ,
हर गज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है ।”[15]

अपनी क्रांतिकारी चेतना के कारण कवि अपने सृजन को हथियार के तौर पर इस्तेमाल कर संकटपूर्ण जीवन स्थिति से सामान्यजन को उबारने के लिए हंगामा करते हैं । वे तानाशाही और जुल्म को अब और बरदाश्त करने के लिए तैयार नहीं है । वे सामान्यजन को उत्प्रेरित करते हुए कहते हैं –

“ पक गई है आदतें , बातों से सर होगी नहीं ,
कोई हंगामा करो, ऐसे गुजर होगी नहीं ।”[16]

इसी तरह वे घुट –घुट कर जीवन जीने के पक्ष में भी नहीं है । कवि व्यवस्था की अराजकता को नेस्तानाबूद करने के लिए पूरी तरह से तैयार है –

“ हर दर्द बेनकाब हुआ चाहता है अब
सीने में इंकलाब हुआ चाहता है अब ।”[17]

संविधान में ‘सर्वोपरि’ रहनेवाले आमजन को ‘कीड़ों–सी कुलबुलाती जिन्दगी’ जीते हुए देखकर कवि का हृदय आहत होता है । पूँजीवादी तंत्र के पैरों तले सामान्यजन को दो वक्त की रोटी जुटाते–जुटाते ‘अस्थि-कंकाल’ बनते देख कवि में व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश उत्पन्न होता है । स्थिति में बदलाव लाने की बात बार-बार

की जाती है, पर स्थिति बदलने के बजाए और भी बदतर होती देख कवि असहनशील हो उठते हैं । उन्हें लगता है कि ऐसी असंवेदनशील व्यवस्था में परिवर्तन एकमात्र क्रांति के द्वारा ही लाई जा सकती है । कवि भलीभांति समझ चुके हैं कि जब तक हम जुल्म के खिलाफ आवाज नहीं उठायेंगे, तब तक हमपर जुल्म होता ही रहेगा । किंतु जिस दिन सचमुच प्रतिवाद का स्वर मुखरित होगा, कोई भी जन विरोधी ताकत उस स्वर को दबा नहीं पायेगी । वे सामान्यजन से कहते हैं –

‘‘ जुल्म चाहे कितना हो
आवाज मरती नहीं है
उसने सिर्फ इतना कहा था कि आवाजें देते रहो
कोई पूरब से दो
कोई उत्तर–दक्खिन और पच्छिम से
सिर्फ जुड़े रहो .....बोलते हुए
यानी खामोशी तोड़ते रहो
जैसे सड़कों पर पत्थर
या शोषण की जंजीरें तोड़ी जाती हैं ’’[18]

कवि यह मानते थे कि प्रतिकूल परिस्थिति हो या व्यवस्था, किसी के भी सामने हार नहीं मानना चाहिए अपितु उसे बदलने के लिए, उसके विरोध में खड़ा होना

चाहिए । तभी जाकर बदलाव हो सकता है । वे परिवर्तन के लिए क्रांति का आह्वान करते हैं –

‘‘ गाओ...!

काई किनारे से लग जाए

अपने अस्तित्व की शुद्ध चेतना जग जाए

जल में

ऐसा उबाल लाओ.....!’’[19]

दुष्यंत कुमार की कविताओं में आर्थिक शोषण के कई चित्र उपलब्ध होते हैं । मार्क्स ने पूँजीवादी सभ्यता की विकृतियों से परिचित कराया । शोषण को आधार बनाकर अपना विकास करनेवाले पूँजीतंत्र की मार्क्स ने आलोचना की है । दुष्यंत कुमार ने अपनी कई कविताओं में पूँजीवादी समाज-व्यवस्था से आक्रांत किसान और मजदूरों की विपन्न अवस्था और नारकीय जीवन को उभारते हुए पूँजीवादी समाज–व्यवस्था की विसंगतियों पर तीव्र आलोचना की है । उनकी कविताओं में किसान-मजदूरों के प्रति सहानुभूति का भाव दिखाई पड़ता है । ‘तुमने देखा ’, ‘सवाल ये है’, ‘गाते-गाते’,‘कहाँ से शुरू करे यात्रा’ ,‘मंत्री की मैना’ ‘तुलना’, ‘जनता’ आदि कविताओं आमजन की दुरावस्था को साकार कर दिया गया है । एक विपन्न, क्षुधातुर आमजन की दयनीय अवस्था को प्रकट करते हुए कवि पूँजी परिचालित संसदीय लोकतंत्र पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं –

" भूख है तो सब्र कर,रोटी नहीं तो क्या हुआ
आजकल दिल्ली में है जेरे बहस यह मुद्दा "[20]

'क्यों अपने प्रण को भूल गये' कविता में कवि अपने को 'सोशलिस्ट ' मानते हुए पूँजीपतियों पर कटाक्ष करते हैं –

" हम सोशलिस्ट हैं, भारत में
मजदूर राज्य दिखला देंगे
पूँजीपतियों के छीन सभी
आसन, किसान बिठला देंगे "[21]

अन्याय का विरोध दुष्यंत कुमार की जीवन-दृष्टि का प्रमुख वैशिष्ट्य रहा है । इसी विरोध के क्रम में वे बार-बार जनविरोधी व्यवस्था की खामियों और चालाकियों को उजागर करते हुए दिखलाई पड़ते हैं । प्रस्तुत शे'र में भी वे सीधे-सीधे व्यवस्था के नकारेपन को प्रकट कर देते हैं –

" बड़ा लगाव है इस मोड़ से निगाहों को,
कि सबसे पहले यहीं रोशनी हलाल हुई ।
कोई निजात की सूरत नहीं रही, न सही ,
मगर निजात की कोशिश तो एक मिसाल हुई ।"[22]

दुष्यंत कुमार के तीनों काव्य-संग्रहों और गजल-संग्रह में उनकी दृष्टि विद्रोहात्मक रही है । कवि का यह विद्रोह 'स्व-अस्तित्व' से अधिक 'पर-

अस्तित्व’ के लिए हैं । दुष्यंत कुमार के अंतिम दौर की रचनाएँ ‘जलते हुए वन का वसंत’ और ‘साये में धूप’ में उनका विद्रोही तेवर चरम पर है ।

अस्तु, दुष्यंत कुमार की रचनाओं में मार्क्स का प्रभाव भले ही परिलक्षित होता हो, किंतु वे सीधे तौर पर मार्क्सवादी नहीं थे । समाज के उपेक्षित जनों के प्रति जो करूणा और सहानुभूति मार्क्सवाद में दिखायी देता है, उससे कवि आकृष्ट हुए । उन्होंने विचारधारा को केवल और केवल मानवीयता की कसौटी पर ही परखा है । आलोचक विजय बहादुर सिंह का मानना है –‘‘उनकी कविता एक ऐसी व्यवस्था का सपना लिए हुए हैं जिसका विश्वास प्रत्येक स्तर पर लोक की मुक्ति में है । वे गांधी के दरिद्रनारायण और मार्क्स के सर्वहारा-मजूर और किसान-दोनों की मुक्ति के पक्षधर हैं । वे उस अवाम के साथ हैं जिसका ऐतिहासिक सपना चूर–चूर हो गया है और जो खुद अपने ही लोकतंत्र में आत्मनिर्वासित-सा है ।’’[23]

कवि ने कभी भी अपने-आप को वाद की संकीर्ण सीमा में बाँध कर नहीं रखा । वे मार्क्सवाद के सामाजिक चेतना से प्रभावित अवश्य होते हैं, पर उसके पालतू अनुचर नहीं बनते । समाज व्यवस्था में परिवर्तन लाकर सामान्यजन की स्थिति सुधारने के लिए वे क्रांति का रास्ता अपनाने पर जो जोर देते हैं, उसे केवल मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव ही मानना चाहिये । दुष्यंत कुमार की कविता जनता से सम्पृक्त है । यही सम्पृक्ता उनमें शोषकों के प्रति आक्रोश और

क्षोभ तथा उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति और करूणा की सृष्टि करती है ।

4. आस्थावादी दृष्टि

दुष्यंत कुमार जिस दौर में सृजनरत थे, वह दौर अनास्था, अविश्वास, संशय और निराशा का दौर था । युगीन संत्रास से पीड़ित कवि निज में आबद्ध होकर अपनी लेखनी को भी कुंठित बना रहे थे । ऐसे दौर में जीवट व्यक्तित्व के स्वामी कवि दुष्यंत कुमार आत्मविश्वास से परिपूर्ण होकर साहित्य जगत में कदम रखते हैं । कुंठा न तो कवि दुष्यंत कुमार के व्यक्तित्व की पहचान है और न ही उनके लेखन की । जीवन के प्रति उनमें आस्था है । वे जीवन की विषमताओं से घबराकर अपने को निजत्व में आबद्ध नहीं करते । वे समष्टि के कवि हैं । समष्टि के संसार का आरोह-अवरोह उन्हें उद्वेलित करता है, उनके जीवन की त्रासदी को देखकर कवि कभी-कभी निराश भी हो जाते हैं, किंतु यह निराशा क्षणिक होती है –

‘‘ बोलो मान लूँ क्यों जिन्दगी से हार
माना मौत के आते यहाँ त्यौहार
X X X
मुस्कराकर जो बनाते है विपद गलहार
उनको, सिंधु बन जाता स्वयं पतवार
जिन्दादिल मनुज जो हैं उन्हीं के पास ’’[24]

दुष्यंत कुमार की जीवन-दृष्टि आस्थावादी है । नई कविता के अनास्थावादी दौर में वे 'सूर्य का स्वागत' संग्रह के माध्यम से आस्था के सूर्य से जग को रौशन करने के लिए 'काई भरे आँगन' और 'चिकनी-काली दिवार' पर सूर्य का स्वागत करने के लिए उत्सुक दिखते हैं । आलोचक विजय बहादुर सिंह कवि दुष्यंत कुमार के आस्थावादी जीवन–दृष्टि की महत्ता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं – ''यह लक्ष्य करने की बात है कि जिस दौर में समूचा नवलेखन निराशा और अनास्था के अनुभवों की अभिव्यक्तियों से भरा हुआ था, कुंठा और संत्रास जिसके चरित्र से हुए बैठे थे, दुष्यंत 'सूर्य का स्वागत' में आस्था और पौरूष का स्वर लेकर आए थे ।''[25]

'सूर्यास्त: एक इम्प्रेशन' दुष्यंत कुमार की आस्थावादी दृष्टि को प्रमाणित करनेवाली एक महत्वपूर्ण कविता है । इस कविता में कवि अपने मानसिक द्वंद्व को चित्रित करते हैं –

'' सूरज के साथ
हृदय डूब गया मेरा
अनगिन क्षणों तक
स्तब्ध खड़ा रहा वहीं
क्षुब्ध हृदय लिए ।
औ' मैं स्वयं डूबने को था

स्वयं डूब जाता मैं
यदि मुझको विश्वास यह न होता–
'मैं कल फिर देखूँगा यही सूर्य
ज्योति-किरणों से भरा–पूरा
धरती के उर्वर-अनुर्वर प्रांगण को
जोतता-बोता हुआ,
हँसता, खुश होता हुआ ।''[26]

कवि की यह आस्थावादी दृष्टि द्वंद्वात्मक स्थिति में कवि को विचलित होने नहीं देता है। आस्था की पतवार थामे कवि पुन: आशा रूपी सूर्य को देखने के लिए इंतजार करने लगे ।

आमजन में कवि को अगाध आस्था है । उन्हें विश्वास है कि सामान्यजन अपने तमाम संशय एवं भय को दरकिनार करते हुए दमनकारी व्यवस्था में परिवर्तन के लिए आगे बढ़ेंगे । वे सामान्य जन को खुद पर विश्वास करना सिखाते हैं । उन्हें लगता है कि अगर व्यक्ति को स्वयं पर आस्था होगा, तो हर चीज सम्भव हो जाएगा–

'' कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो!'' [27]

दुष्यंत कुमार की यही आस्था, उन्हें अविस्मरणीय बना देती है । मूल्य विघटन के उस दौर में भी कवि आस्था का पतवार थामे निरंतर आगे बढ़ रहे थे और उस अवाम को भी आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रहे थे, जो मोहभंग और मूल्यहीनता से आक्रांत होकर अनास्थावादी हो रही थी–

'' इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है ,
नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है ।''
एक चादर साँझ ने सारे नगर पर डाल दी,
यह अँधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है । ''[28]

दुष्यंत कुमार के बारे में कवि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना लिखते हैं –''वह वर्तमान की पीड़ा समझता था । उसे आने वाले दिनों पर आस्था थी । हँसता रहता और जहर पीता रहता । वह जानता था इंसान को तोड़नेवाली शक्ति कौन-सी है । वह अपना सब कुछ निछावर कर देना भी चाहता था ।''[29]

अस्तु, कवि ने अपने समय में जनविरोधी परिस्थितियों को पनपते और विकसित होते देखा था पर उन्हें उस जन में अगाध आस्था थी कि वह एक दिन जागरूक और सचेत होकर अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए अग्रसर होगा । यह आस्था और विश्वास ही है कि कवि जाते-जाते तेल से भींगी हुई बाती छोड़ जाते हैं ।

5. आशावादी दृष्टि

आशा दुष्यंत कुमार के जीवन-दृष्टि का केंद्रीय तत्व है । दुष्यंत कुमार कितनी ही विपरीत परिस्थिति क्यों न हो, आशा के दीप को बुझने नहीं देते हैं । यही आशा कवि के हर नामुमकिन कार्य को मुमकिन बना देती है –

‘‘ तुम न मानो शब्द कोई है न नामुमकिन
कल उगेंगे चाँद–तारे, कल उगेगा दिन,
कल फसल देंगे समय को, यही ‘बंजर खेत’ । ’’[30]

कवि का यही आशावादी नजरिया, उनमें विपरीत परिस्थितियों पर विजय होने का उत्साह जगाती है । उन्हें दृढ़ निश्चयी बनाती है –

‘‘ फेनिल आवर्तो के मध्य
अजगरों से घिरा हुआ
विष-बुझी फुंकारें
सुनता-सहता,
अगम, नीलवर्णी,
इस जल के कालियादाह में
दहता,
सुनो, कृष्ण हूँ मैं ,
भूल से साथियों ने

इधर फेंक दी थी जो गेंद,

उसे लेने आया हूँ

(आया था

आऊँगा)

लेकर ही जाऊँगा!''[31]

अपनी आशावादी दृष्टि के कारण कवि वर्तमान वीभत्स यथार्थ का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने के बावजूद निराश और हताश नहीं होते हैं । आशा की एक क्षीण लौ को लेकर कवि आश्वस्त है कि परिवर्तन होगा और सामान्यजन के पक्ष में होगा । जनकवि दुष्यंत कुमार को जब भी उम्मीद की एक किरण नजर आयी है, वे उत्साहित होकर निराश, हताश जनता को आश्वस्त करते हुए दिखने लगते हैं । मोहभंग की कष्टदायी पीड़ा को झेलने वाली आम जनता को नाउम्मीदी से उम्मीद की ओर ले जाने के लिए कवि सजग ही नहीं दृढ़ प्रतिज्ञ दिखते हैं । वे नाउम्मीद जनता से कहते हैं –

'' एक चिनगारी कहीं से ढूँढ़ लाओ दोस्तो ,

इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है ।''[32]

'यह साहस' कविता में कवि निराश जनता में व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठाने का साहस जगाते हुए दिखाई देते हैं –

'' लेकिन दीवारों को कौन लोग जोड़ते हैं ?

कौन लोग राहों को स्वयं उधर मोड़ते हैं ?
कौन लोग माथों की पीड़ा से तंग आकर ,
या अपनी राहों के मोड़ों से उकताकर
जाकर दीवारों को नींव तक झिंझोड़ते हैं !
एक साथ कई–कई दीवारें तोड़ते हैं !
– पर तुम में यह साहस क्यों नहीं उभरता है ?''[33]

कवि को आदत है रोशनी खोजने और उससे अंधकार मिटाने की –

'' मेरी तो आदत है
रोशनी जहाँ भी हो
उसे खोज लाऊँगा
कातरता, चुप्पी या चीखें
या हारे हुओं की खीज
जहाँ भी मिलेंगी
उन्हें प्यार के सितार पर बजाऊँगा ।''[34]

दुष्यंत कुमार की आशावादी दृष्टि के बारे में आलोचक विजय बहादुर सिंह लिखते हैं – ''अपने अन्य कई समकालीनों की तरह वे यह मानने को राजी नहीं थे, कि हमारे पास कोई मूल्य बचे ही नहीं हैं और दो–दो महायुद्धों के बाद विश्व लगभग स्वप्नहीन हो उठा है । ''[35]

दुष्यंत कुमार ने अपने कवि-कर्म के साथ कभी भी समझौता नहीं किया । उनके लिए कविता उनके अस्तित्व से भी अधिक महत्त्वपूर्ण थी और उसके साथ वे पूरी ईमानदारी के साथ पेश आये । कविता ने उन्हें जिन्दा किया और अब वे कविता के द्वारा मृतप्राय जनता को जिन्दा करने के इच्छुक है –

‘‘ कभी इन्हीं शब्दों ने
जिन्दा किया था मुझे
कितनी बढ़ी है इनकी शक्ति
अब देखूँगा
कितने मनुष्यों को और जिला सकते हैं ?’’[36]

कविता की सच्चाई की रक्षा के लिए उन्होंने हर जोखिम को सहर्ष उठाया पर किसी भी सूरत में कविता पर आँच नहीं आने दी । दुष्यंत कुमार के भाई प्रेम त्यागी उनके इसी जुझारूप के बारे में लिखते हैं –‘‘अपने कवि की जरूरतों को पूरा करने के लिए उन्होंने जिन्दगी को उस जोखिम के साथ जिया, जिससे कि दूसरे अक्सर कतराकर निकल जाते हैं ।’’[37] जब दुष्यंत कुमार के समकालीन अन्य कवि कविता में नकली मुखौटे लगाकर ख्याति अर्जित करने में लगे हुए थे, तब भी दुष्यंत कुमार अपने में बेफिक्र केवल सामान्यजन को केंद्रित करके कवि-कर्म कर रहे थे । कवि दुष्यंत कुमार की मानवतावादी दृष्टि उन्हें एक जुझारू सर्जक बनाती है । उनका यह जुझारू व्यक्तित्व उनकी रचनाधर्मिता का प्राण तत्व है ।

दुष्यंत कुमार ने जीवन को भरपूर जिया । निराशा के गहन स्तर पर पहुँचकर भी उन्होंने उदासी को अपने चेहरे पर आने नहीं दिया । कवि का मानना है कि जब तक प्राण है, व्यक्ति को धैर्य के साथ विरोधी ताकतों का सामना करना चाहिये । हताशा और निराशा मनुष्य की आंतरिक शक्ति को क्षीण कर उसे दुर्बल बना देती है । इसीलिए कवि थके हुए बटोही से कहते हैं –

‘‘ अगर जिन्दगी की साँसों के पृष्ठ बदलते हैं
अगर माँगकर विदा प्राण भी तन से चलते हैं
जीवन –पथ के थके बटोही मत उदास हो
अगर नियति की कोप–दृष्टि का दीपक
जल सकना संभव है
अगर आँधियों का रूख तेरी ओर
बदल सकना संभव है
तो यह भी मत भूल कि जीवन की मंजिल भी यहीं कहीं ’’[38]

6. मानवतावादी दृष्टि

मानवतावादी दृष्टि सम्पन्न रचनाकार दुष्यंत कुमार का मानवता का हनन करनेवाली शक्तियों से छत्तीस का आकड़ा है । उन्होंने लिखा भी है – ‘‘मेरे लिए मनुष्य मात्र की अवमानना सबसे अधिक कष्टप्रद है । उस पर मेरी प्रतिक्रिया

नितांत व्यक्तिगत ढ़ग से होती है । ''[39] आमजन के जीवन के दर्द और अभाव को कवि ने गहराई से महसूस किया है । यही वजह है कि उनमें मानव-मात्र के लिए गहन करूणा और चिंता दिखलाई पड़ती है । मानवतावादी जीवन-दृष्टि होने के कारण ही उनकी रचनाओं का स्वर व्यंग्यात्मक हो गया है । व्यंग्य के सहारे कवि ने निरंकुश, जनविरोधी शासन-व्यवस्था की धज्जियाँ उड़ाकर रख दी है । अन्याय को मौन होकर देखना, दुष्यंत कुमार की फिदरत नहीं है । वे लिखते हैं –

'' मैंने सोचा था-जब किसी को दिखाई नहीं देता
मैं भी बन्द कर लूँ अपनी आँखें
न सोचूँ
एक ज्वालामुखी फूट रहा है ।
घुल जाने दूँ लावे में
तड़प- तड़पकर एक शिशु
प्रजातंत्र का भविष्य –
जो मेरे भीतर मीठी नींद सो रहा है ।
मुझे क्या पड़ी है
जो मैं देखूँ, या बोलूँ या कहूँ कि मेरे आसपास
नरहत्याओं का एक महायज्ञ हो रहा है ।''[40]

उनकी कविता और गज़लों में मानवतावादी स्वर जगह-जगह मुखरित

हुई है । कवि ने अपने को 'भूखी मानवता का कवि और जर्जर जनता का उद्‌घोषक' घोषित किया है और सही मायने में कवि मानव-मात्र के कवि सिद्ध हुए हैं । कवि आमजन के साथ अपने को और अपनी लेखनी को सम्पृक्त महसूस करते हैं –

'' तुम लोगों के ही क्षण मैं भी तो जीता हूँ
मत समझो तुम अपने को एकाकी हरगिज
मैं भी तुम लोगों के समान ही जीता हूँ
मैंने कोशिश की नहीं कभी बस यों ही
ये फूट पड़ी है जलसोते–सी अनायास
बालिका समझकर कलम अंगुली पकड़ा दी
अब अपने पाँवों चलने लगी समझती है
हँसती–रोती है देख–देखकर आस-पास''[41]

कवि दुष्यंत कुमार मानते हैं कि शब्दों को जोड़कर और थोड़ी–बहुत भावुकता मिश्रित कर कविता का निर्माण कर कवि धर्म का निर्वाह तो किया जा सकता है किंतु जीवन की पीड़ा को भोगकर उसे महज कविता का शक्ल न देते हुए, बिना शर्त अपने सामाजिक और जन सरोकारों को उसमें विन्यस्त कर देना ही सच्चे कवि की सच्ची पहचान है –

'' मैंने तो यही कहा

कविता की पीड़ा से कहीं अधिक

गहरी पीड़ाएँ हैं जीव

जो झेली जाती हैं बिना

बिना किसी आँसू के हर क्षण में ''[42]

दुष्यंत कुमार ने लिखा है–''आज अपने दायित्वों के विश्लेषण का और यह सोचने का समय आ गया है कि अगर साहित्य को संकट का सामना करने योग्य बनाना है तो साहित्यकार को एक जीवन–दर्शन अपनाना पड़ेगा, और वह जीवन–दर्शन घृणा और युद्ध का प्रचार का न होकर ऐसे शाश्वत मूल्यों का होगा जिसमें शक्ति होगी, पर दया–रहीत नहीं, अहिंसा होगी पर साहस–शून्य नहीं, प्रेम और विश्व–बंधुत्व होगा पर परावलम्बन नहीं ।

ऐसा साहित्य बिसरती–छितराती जनशक्ति को एक सूत्र में बाँधकर दिशा देनेवाला तो होगा ही, साथ ही स्थायी भी होगा ।''[43]

कवि दुष्यंत कुमार के सृजन-संसार में सामान्यजन का उल्लेखनीय स्थान रहा है । यही वजह है कि उनकी जीवन-दृष्टि भी उन्हीं के सरोकार के अनुरूप निर्मित हुई है । मानवतावादी दृष्टिकोण दुष्यंत कुमार की संवेदना और चिंतन की धुरी है । लोकहित को केंद्र में रखने के कारण ही वे कभी गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित होते हैं, तो कभी मार्क्सवादी विचारधारा से । उनकी प्रारम्भिक और परवर्ती जीवन-दृष्टि में जो बदलाव दृष्टिगोचर होता है, उसके मूल में

युगीन जनविरोधी परिस्थितियों का अवदान रहा है। उनकी जीवन-दृष्टि का विकास मानवता की आवश्यकता के अनुरूप हुआ। इसी मानवता की रक्षा के लिए परवर्ती दौर में वे विद्रोही हो जाते हैं और मानव-विरोधी शक्तियों की कटु आलोचना करने लगते हैं। उनकी जीवन–दृष्टि आध्यात्मिक धरातल पर अवस्थित न होकर सामाजिक यथार्थ के कठोर धरातल पर अवलम्बित है, जिसका ध्येय समाज में प्रेम और विश्व-बंधुत्व की स्थापना करना है।

सन्दर्भ-सूची

1. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 179

2. प्रभाकर विष्णु, गाँधी: समय, समाज और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003, पृष्ठ संख्या – 148

3. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –26

4. वही, पृष्ठ संख्या –145

5. वही, पृष्ठ संख्या –307

6. प्रभाकर विष्णु, गाँधी: समय, समाज और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003, पृष्ठ संख्या –112

7. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 144

8. वही, पृष्ठ संख्या –26

9. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 4, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 374

10. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 338

11. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 245

12. वही, पृष्ठ संख्या – 222

13. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 103

14. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 488

15. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 288

16. वही, पृष्ठ संख्या – 284

17. वही, पृष्ठ संख्या – 250

18. वही, पृष्ठ संख्या – 232

19. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 374

20. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –266

21. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 155

22. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 288

23. वही, पृष्ठ संख्या –16

24. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 244

25. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 13

26. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 361

27. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –283

28. वही, पृष्ठ संख्या –263

29. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 76

30. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –381

31. वही, पृष्ठ संख्या –38

32. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 263

33. वही, पृष्ठ संख्या – 196

34. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 457

35. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 105

36. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 370

37. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 81

38. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 253

39. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 140

40. वही, पृष्ठ संख्या – 170

41. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 389

42. वही, पृष्ठ संख्या –307

43. . सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 4, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या –375

अध्याय-7

दुष्यंत कुमार का काव्य-शिल्प

1. भाषा
2. बिम्ब
3. प्रतीक
4. अलंकार
5. मुहावरे
6. शैली
7. मिथक

सन्दर्भ-सूची

कथ्य और शिल्प रचना के दो महत्त्वपूर्ण पक्ष होते हैं । भाववादी आलोचक रचना में कथ्य को प्रमुख मानते हैं तो कलावादी आलोचक शिल्प को । यह हमेशा से आलोचना का विषय रहा है कि इन दोनों में सर्वप्रमुख कौन है । खासकर प्रयोगवाद और नई कविता के दौर में तो यह बहस का प्रमुख मुद्दा ही था । प्रयोगवादी दौर के कवि शिल्पगत प्रयोग के लिए हमेशा आलोचना के केंद्र में रहे हैं । शिल्प के लिए अंग्रेजी में 'टेकनीक' शब्द का प्रयोग किया जाता है । काव्य-शिल्प के लिए काव्य-सौंदर्य, अभिव्यंजना-सौंदर्य, रचना-विधान, रूप-रचना, अभिव्यक्ति-विधान आदि समानार्थक शब्दों का प्रयोग होता है । भाषा, शैली, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार आदि का समुच्चय ही शिल्प कहलाता है । ये सभी उपादान मिलकर काव्य का ढाँचा तैयार करते हैं और अंततः एक काव्यकृति का निर्माण होता है । शिल्प का सीधा संबंध अभिव्यक्ति से है । कथ्य कविता की आंतरिक संरचना है और शिल्प बाह्य संरचना । रचनाकार अपनी अनुभूति को जिस माध्यम द्वारा सम्प्रेषणीय बनाता है, वही शिल्प है । शिल्प के सहारे कवि अपने अंतर्जगत को रूपाकार देता है, उसे प्रत्यक्ष करता है । इसके अभाव में कवि की आंतरिक संवेदना बाह्यरूप ग्रहण करने में असमर्थ है ।

शिल्प को परिभाषित करते हुए खगेंद्र ठाकुर लिखते हैं –''रूप को सजाने–सँवारने के लिए अनेक साधन जुटाए और काम में लाए जाते हैं । उन साधनों का विन्यास जिस तरह किया जाता है, उसे शिल्प कहा जाता है ।''[1]

शोरर शिल्प की महत्ता को बताते हुए लिखते हैं –''शिल्प ही वह साधन है जिसके माध्यम से लेखक का अनुभव जो कि उसकी विषयवस्तु है, उसे अपनी ओर ध्यान देने के लिए विवश करता है । शिल्प वह एकमात्र साधन है जिसके द्वारा वह अपने विषय को खोजता है, उसकी छानबीन करता है, उसका विकास करता है, जिसके माध्यम से वह उसके अर्थ को सम्प्रेषित करता है और अंतत: उसका मूल्यांकन करता है ।''[2] इस कथन का आशय यही है कि शिल्प ही वह माध्यम है जिसके सहारे रचनाकार अपनी संवेदना को भलीभाँति समझ पाता है और सार्थक ढ़ंग से व्यक्त भी कर पाता है ।

एकांत श्रीवास्तव शिल्प के बारे में लिखते हैं –''सुगठित शिल्प में कविता की वस्तु अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त करती है । चरम लक्ष्य यानी सम्प्रेषणीयता ।''[3] आलोचक का मानना है कि शिल्प कथ्य को सम्प्रेषणीय बनाकर, उसे सार्थक करता है । सम्प्रेषणीयता कविता के लिए अनिवार्य है क्योंकि इसके कारण ही रचना पाठक की सहृदयता प्राप्त करती है । कविता की प्रभावोत्पादकता उसकी सम्प्रेषणीयता में ही निहित रहती है ।

अत: कह सकते हैं कि शिल्प अभिव्यंजनात्मक शैली है । शिल्प के द्वारा कवि के अमूर्त भाव और विचार मूर्त हो जाते हैं । शिल्प के माध्यम से ही कवि की आंतरिक संवेदना शब्दबद्ध होकर बाह्य रूप ग्रहण करती है । रचनाकार के मन-मानस में जो भी भाव या विचार उद्वेलित होते हैं, शिल्प के माध्यम से उनका

निष्कासन होता है । शिल्प रचनाकार की संवेदना को सार्थक और संप्रेषणीय बनाता है । शिल्पगत प्रयोग में इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि शिल्प का प्रयोग सहज और सन्दर्भानुकूल हो । शिल्प तभी प्रभावशाली हो पाएगा जब वह रचनाकार की संवेदना को संप्रेषित करने में पूर्ण समर्थ हो सकेगा ।

कवि दुष्यंत कुमार कविता में शिल्प के महत्त्व पर लिखा है – ''नया कवि अकसर शिल्प के प्रति आग्रहशील नहीं है क्योंकि उसके सामने तात्कालिक प्रश्न नए मूल्यों की खोज का है – टेक्नीक का नहीं ।

उसका विवेक 'टेंशन' या ' संघर्ष ' की भयंकर स्थिति से गुजर रहा है जिसमें शिल्प के छोटे–मोटे प्रश्न स्वभावत: गौण हो जाते हैं और एक बड़ा प्रश्न उभरता है ।''[4] जाहिर है कि कवि के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण वे प्रश्न है जो 'जीवन से जुड़े' हुए हैं । अभिव्यक्ति से कहीं बड़ा प्रश्न है अनुभूति का । अनुभूति की तीव्रता अभिव्यक्ति को सशक्त बनाती है । हिन्दी के जितने भी कालजयी लेखक है, उनकी अनुभूति इतनी तीव्र रही है कि अभिव्यक्ति के लिए उन्हें सोचना ही नहीं पड़ा । कबीर, निराला, नागार्जुन ऐसे ही कवि हैं जिन्होंने शिल्प को गढ़ने की तनिक भी चेष्टा नहीं की फिर भी उनकी अभिव्यक्ति अनुभूति को अभिव्यक्त करने में समर्थ हुई है ।दुष्यंत कुमार की कविता में शिल्प का सहज और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है । उनकी कविताओं का शिल्प-पक्ष, भाव-पक्ष की भाँति ही सशक्त है । उन्होंने ऐसे शिल्प को अपना काव्यगत आधार बनाया जो महज चौंकाने या

आतंकित करने के लिए नहीं है, अपितु रचनाकार और पाठक के बीच आत्मीय संवाद स्थापित करने में अहम भूमिका निभाती है । उनके शिल्प में उनकी जन-प्रतिबद्धता दृष्टिगत होती है । कवि ने लिखा है –''मैं बराबर महसूस करता हूँ कि कविता में आधुनिकता का छद्‌म कविता को बराबर पाठकों से दूर करता गया है । कविता और पाठक के बीच इतना फासला कभी नहीं था, जितना आज है । इससे भी ज्यादा दु:खद बात यह है कि कविता शनै:-शनै: अपनी पहचान और कवि अपनी शख्सियत खोता गया है । ऐसा लगता है, गोया दो दर्जन कवि एक ही शैली और शब्दावली में एक ही कविता लिख रहे हैं । इस कविता के बारे में कहा जाता है कि यह सामाजिक और राजनीतिक क्रांति की भूमिका है और यह दलील खोटी है । जो कविता लोगों तक पहुँचती नहीं, उनके गले नहीं उतरती, वह किसी भी क्रांति की संवाहिका कैसे हो सकती है ।''[5]

दुष्यंत कुमार की संवेदना उनके आस–पास उदास होकर फिरते रहने वालों को देखकर प्रखर हो जाती है । वही ममत्व उनकी रचनाधर्मिता में अनायास प्रकट होती है, इसीलिए उनकी शिल्पगत रचनात्मकता में कोई सायास जादू या कारीगरी दिखाई नहीं देती है । दुष्यंत कुमार ने ऐसे शिल्प से अपनी कविता को सँवारा है, जो उनके कथ्य को सम्प्रेषित कर उस पाठक से तादात्म्य स्थापित कर सके, जो उनका वरेण्य है ।

दुष्यंत कुमार के काव्य-शिल्प के विविध उपादान इस प्रकार हैं – भाषा, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, मिथक, मुहावरे तथा शैली ।

1. भाषा

भाषा भावाभिव्यक्ति का सबसे ठोस और सार्थक माध्यम माना जाता है । हमारे मौन भाव और विचार, भाषा के द्वारा ही मुखर हो पाते हैं । नन्ददुलारे वाजपेयी काव्य-भाषा के संबंध में लिखते हैं –''कवि के आशय की अभीप्सित व्यंजना सामान्यत: काव्य-भाषा का प्रयोजन है । आशय की अनुरूपता के साथ भाषा का स्वरूप-विधान कविता की भाषा-योजना का प्रमुख नियामक तत्व है । दूसरे शब्दों में भाव और भाषा का अविच्छिन संबंध साहित्य सर्जना का मुख्य उपादान और लक्षण है । इस तथ्य का निर्देश कविगण और विचारक प्राचीन काल से करते आए हैं । कालिदास ने वागर्थाविद सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये कह कर काव्य की भाषा और उसके आशय के सम्पृक्त होने का उल्लेख किया है । गिरा अर्थ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न पंक्ति के द्वारा गोस्वामी तुलसीदास ने वाणी और उसके अर्थ की अभिन्नता द्योतित की है । अतएव सिद्धांत–रूप में कहा जा सकता है कि काव्य–भाषा का आदर्श स्वरूप वही है जो कवि के व्यक्तव्य को उत्कृष्ट रूप में अभिव्यक्त कर सके ।''[6] कथन से स्पष्ट है कि आलोचक भाव और भाषा के संबंध को अविछिन्न और अभेद मानते हैं । उनकी मान्यता है कि दोनों

की अर्थवत्ता एक-दूसरे के होने से ही है । किसी भी रचना में निहित भाव और विचार भाषा के माध्यम से ही प्रकट होते हैं । अत: यह अपेक्षित है कि काव्य-भाषा कवि के मनोभाव और संवेदना को सार्थक और सम्प्रेषणीय बना सके ।

नामवर सिंह ने लिखा है – ''कविता शब्दों की संख्या से धनी नहीं होती, इस्तेमाल में आनेवाले शब्दों के 'सार्वजनिक मूल्य' से धनी होती है ।''[7] नामवर सिंह के विचारों पर गौर किया जाए तो यह बात सामने आती है कि वे कविता को सुन्दर और लुभावने शब्दों की नुमाइश नहीं मानतें । उनके लिए कविता की महत्ता और उपयोगिता इस बात में है कि कवि जिनके लिए कविता लिखता है और जिनके जीवन को सन्दर्भ स्वरूप अपने काव्य का आधार बनाता है, वह कविता उससे सम्पृक्त है या नहीं ? कविता में निहित शब्द उस साधारण को असाधारण तरीके से अभिव्यक्त कर पाता है कि नहीं ? जिस समाज के मूल्यों को वह अपने सृजन संसार में विन्यस्त करता है, वह कविता के रूप में समाज के व्यापक वर्ग की पक्षधर है या नहीं ? इस प्रसंग में एकांत श्रीवास्तव के विचार उल्लेखनीय है – ''कविता के इतिहास में और उसकी दीर्घ परंपरा में इसके पर्याप्त प्रमाण हैं कि जब–जब कोई भाषा अपने जन के संघर्ष और उसकी आकांक्षा को व्यक्त करने में असमर्थ साबित हुई है, कविता उसे केंचुल की तरह छोड़कर आगे बढ़ गयी है । भाषा अपनी प्रकृति में धर्म और जाति निरपेक्ष ही नहीं बल्कि

जनतांत्रिक भी होती है । दरबारों में उसकी साँस घुटने लगती है । जीवन का लोक उसे पसन्द आता है, आभिजात्य नहीं ।''[8]

दुष्यंत कुमार की भाषा का अवलोकन करने के पश्चात् यह दृष्टिगत होता है कि वे हमेशा से उस भाषा के हिमायती रहे हैं जिसके माध्यम से वे उस अवाम तक पहुँच पाये जो उनके सृजन-कर्म की प्रेरणा है, जिनकी तकलीफ, हताशा, आक्रोश, हर्ष, अवसाद, आकांक्षा, टूटन, घुटन सभी से वे खुद को सम्पृक्त महसूस करते हैं । जिसकी दुनिया को वे अपने काव्य-संसार में चित्रित करते हैं । दुष्यंत कुमार की भाषा सीधी-सादी और सहज है । उनकी भाषा में बौद्धिकता का आडंबर दिखाई नहीं पड़ता । कवि 'आत्मीय-सी' भाषा में संवाद स्थापित करते हैं । कवि ने साधारण जन की भाषा को काव्यात्मक आधार पर ग्रहण किया है । शब्दों का सटीक प्रयोग करने के लिए कवि हमेशा सजग रहे हैं । उन्होंने हमेशा शब्दों के 'सार्वजनिक मूल्य' का ध्यान रखा है । कवि के लिए शब्द शक्ति है, प्राणदायिनी है –

'' कभी इन्हीं शब्दों ने
जिन्दा किया था मुझे
कितनी बढ़ी है इनकी शक्ति
अब देखूँगा
कितने मनुष्यों को और जिला सकते हैं ?''[9]

जन से हृदयस्थ संबंध स्थापित करनेवाले शब्दों ने मिलकर व्यक्ति दुष्यंत कुमार को कवि दुष्यंत कुमार बनाया है । अब कवि इन शब्दों को जनहित के लिए एक हथियार के तौर पर इस्तेमाल करना चाहते हैं –

“ मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ ,
हर गज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है ।”[10]

‘शब्दों की पुकार’ शीर्षक कविता में कवि ‘सार्वजनिक मूल्य’ की रक्षा के लिए कविता माँ से प्रार्थना करते हैं –

“ शब्द नामधारी
सारे के सारे युवक, प्रौढ़ औ’ बालक,
एक तुम्हारे इंगित की कर रहे प्रतीक्षा,
चाहे जिधर मोड़ दो
कोई उजर नहीं है–
ऊँची–नीची राहों में
या उन गलियों में
जहाँ खुशी का गुजर नहीं है–
लेकिन मंजिल तक पहुँचा दो, ओ कविता माँ !”[11]

कविता से गज़ल की ओर जाने के पीछे भी कवि की ‘सार्वजनिक मूल्य’ की रक्षा की मंशा थी । दुष्यंत कुमार शब्दों का कृत्रिम खेल खेलना नहीं चाहते और न ही

पाठकों के समक्ष शब्दों का मायाजाल उत्पन्न करना चाहते हैं । वे केवल और केवल उस सार्वजनिक समाज को चित्रित करना चाहते हैं जो उनकी सर्जनात्मकता की मूल प्रेरणा है । कवि ने लिखा है –''मैंने अपनी तकलीफ को ...उस शदद तकलीफ, जिससे सीना फटने लगता है, ज्यादा से ज्यादा सचाई और समग्रता के साथ ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिए ग़ज़ल कही है ।''[12] स्पष्ट है कि कवि अपनी ने दुहरी तकलीफ (जो व्यक्तिगत भी है और सामाजिक भी) को इस माध्यम के सहारे व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचाने की कोशिश की है ।

विजय बहादुर सिंह ने दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में व्याप्त खुरदरेपन के बारे में लिखा है –''भले ही यह नाजुक और मीठी ग़ज़ल न हो, पर ऐसी भी क्यों हो जो लोगों के सामूहिक दु:खों और उनसे पैदा हुई उदासियों को ललित कला के छलावे में बदल दे । इसलिए उन्होंने अपनी ग़ज़लों में उस खुरदरेपन को एक नई बसाहट दी, जिसमें बेईमान किस्म की झूठी शब्दाडंबरमयी आक्रामकता और शैलीगत अनाड़ीपन का नकली चेहरा उजागर हो सके । वस्तुत: यह खुरदरापन तो उन अनुभवों और विचारों का है, जिनसे बुनियादी इंसानीपन और उसके जीवन संघर्ष की पहचान हुआ करती है ।''[13] आलोचक का मंतव्य है कि कवि ने उस शिल्प को अपनाया जो बौद्धिकता के बजाए जीवन की कड़वी सच्चाई को उजागर कर सके । जहाँ भी कवि को उसमें बदलाव की जरूरत महसूस हुई, उन्होंने उसमें परिवर्तन कर दिया । गजल को लेकर किया गया बदलाव इसी का साक्ष्य है । कवि

लिखते हैं – ‘‘यों प्रयोग के लिए मैंने कुछ गज़लें शुद्ध हिन्दी और कुछ शुद्ध उर्दू में भी कही हैं । किंतु मैंने देखा कि उनमें से ज्यादातर या तो ज्यादा साहित्यिक हो गई हैं या ज्यादा कृत्रिम । और मैं सामान्य जीवन की जिस बेचैनी को उजागर करना चाहता हूँ, वह शब्दों की चमक–दमक में कहीं खो गई है । इसलिए इन गज़लों में गज़लियत के साथ मेरी एक कोशिश यह भी रही कि हिन्दी और उर्दू के बीच ये एक सेतु का काम कर सकें । और यह इसलिए संभव लगता है कि कथ्य के स्तर इनमें मौजूदा हालात की बात कही गई है । जो दृश्य सामने है, वह दृश्य जो सामने होना चाहिए उसकी जरूरत, समाज का जूझता और टूटता हुआ रूप, राजनीति और राजनीतिज्ञों का मुल्क और समाज के साथ सुलूक, इंसान यानी अवाम की जिन्दगी, जरूरतें और उसके खतरे... इन सबको मैंने इन गज़लों में बाँधा है और इन संजीदा और भारी-भरकम मुद्दों को सहज से सहज अभिव्यक्ति और सादी से सादी भाषा में बयान करने की कोशिश की है ’’[14]

भाषा के महत्त्व पर प्रो. भगवानदीन मिश्र ने लिखा है –‘‘भाषा हमारी मानवीय पहचान है, वैयक्तिक पहचान है, सामुदायिक एवं राष्ट्रीय पहचान है तथा इससे संस्कृति की भी पहचान होती है ।’’[15] दुष्यंत कुमार की भाषा में ये विशेषताएँ दिखाई पड़ती है । उनकी भाषा मानवीय सरोकार से युक्त है । यही वजह है कि कवि यथार्थ की उपेक्षा कर कोरी कल्पना को अपने सृजन-संसार में प्रश्रय नहीं देते हैं –

‘‘ आँगन में नई खिली कली,
और द्वार पर निमंत्रण की पुर्जी-सी धूप पड़ी रहती है,
बालों में खोंसकर गुलाब
घर के सामने से गुजरती हैं सुन्दरियाँ,
रंगों के साथ तैर जाते हैं आँखों में साड़ियों के
कई-कई रूप–
किंतु मुखर नहीं होती है कल्पना:
चाय का प्यारा सँभाले
एक सेर गेहूँ या चावल के लिए
सस्ते अनाज की दुकान पर कतारों में
अपने को खड़ा हुआ पाता हूँ,
अथवा
संत्रस्त और युद्धग्रस्त देशों की प्रजा की जमात में –
खड़ा हुआ सोचता हूँ –
कितने खुशकिस्मत थे पहले जमाने के कवि
अपनी परिस्थिति से बचकर आकाश ताक सकते थे ।’’[16]

जब युगीन यथार्थ जनविरोधी और भयावह हो चुका हो, तब किसी भी जन चेतना सम्पन्न रचनाकार के लिए कल्पना के सुखद संसार में विचरण करना असम्भव हो

जाता है । यह बात कवि बखूबी जानते और समझते थें । कवि ने अपनी विद्रोहात्मक भाषा के द्वारा युगीन यथार्थ को सशक्त ढ़ंग से अनावृत किया है । सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विसंगति को दर्शाने में कवि की भाषा इतनी समर्थ हैं कि वे छात्र, शिक्षक, नेता, आम आदमी आदि सभी के अपने कवि बन गये । आज भी छात्र, शिक्षक, नेता, आम आदमी सभी उनकी रचनाओं की पंक्तियों को अपने वक्तव्य में उधृत करते हैं । यहाँ तक कि हिन्दी सिनेमा में भी उनके उद्धरणों का प्रयोग बहुतायत मात्रा में मिलता है । सामाजिक यथार्थ को अनावृत करने में कवि की भाषा कितनी समर्थ है, इसका प्रमाण उनकी रचनायें हैं ही । समाज की भयावह स्थिति को कवि ने अपनी भाषा द्वारा कितने सशक्त ढ़ंग से उजागर किया है, वह इन पंक्तियों में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है –

‘‘ लेकिन कुछ हाथ इसी जमीन में
जिन्दगी भर खुदाई करते रहे
और कुछ सूखी पपड़ियों वाले होंठ
पानी–पानी चिल्लाते हुए
खामोश हो गए ?’’[17]

सामाजिक यथार्थ को प्रत्यक्ष करने के क्रम में दुष्यंत कुमार की भाषा व्यंग्यात्मक रूप धारण कर लेती है । खासकर ‘जलते हुए वन का वसंत’ और ‘साये में धूप’ संग्रह की भाषा का अवलोकन करे तो वहाँ व्यंग्य प्रधान है ।

आपातकालीन परिस्थिति पर कवि की व्यंग्यात्मक भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत है –

" तेरा निजाम है सिल दे जुबान शायर की,
ये एहतियात जरूरी है इस बहर के लिए ।"[18]

यहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करनेवाली आपातकालीन व्यवस्था पर कवि का आक्रोश फूट पड़ा है । उनके लिए कविता सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर भरोसे का हथियार रही है । इस हथियार को धारदार बनाने में उनकी भाषा ने अहम भूमिका निभाई है ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी भाषा में हिन्दी और उर्दू के शब्दों का जो सम्मिश्रण किया है, वह भाषागत सांस्कृतिक समन्वय का ही परिचायक है । उन्होंने लिखा भी है – "मेरी दिक्कत यह थी कि उर्दू मैं जानता नहीं और हिन्दी में मुझे वह चुहल, वह मुहावरा और बोलचाल का वह बहाव नहीं मिला, जिसके सहारे ग़ज़ल कही जाती है या जो ज्यादातर लोगों की जबान पर चढ़ा है । मगर यही अज्ञानता मेरे लिए एक शक्ति बन गई, क्योंकि मुझे लगा कि आम आदमी एक मिली-जुली जबान बोलता है । वह न तो शुद्ध उर्दू होती है, न शुद्ध हिन्दी । इसलिए मैंने इस भाषा की तलाश शुरू की जो हिन्दी को हिन्दी और उर्दू को उर्दू दिखाई दे और आम आदमी उसे अपनी जुबान समझकर अपना सके ।"[19] इस भाषागत सांस्कृतिक समन्वय के मूल में कवि की केंद्रीय चिंता आम आदमी की

समझ की है । उनकी काव्य-भाषा के बारे में रोहिताश्व लिखते हैं –''सामाजिक सरोकारों के कारण.... आम जनता तक तरसील का अल्मिया याने सम्प्रेषण की समस्या हल करने के लिए दुष्यंत आम हिन्दुस्तानी की बोलचाल का मिजाज और भाषा प्रयोग अपनाते हैं ।''[20]

दुष्यंत कुमार ने तत्सम, तद्भव, देशज तथा अंग्रेजी, अरबी, फारसी आदि अनेक विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा में किया है । कवि ने शब्दों का चयन सरलता, बोधगम्यता और सहजता के आधार पर किया है । तत्सम शब्दों के अंतर्गत उन्होंने हिंसक, क्रूरता,गंतव्य, विह्वल, अस्तित्व, आकांक्षा, क्षणिक, उत्तेजना, व्यक्तिगत, नेपथ्य, संस्कार, शून्य, चाक्षुष, मूल्य, प्रज्ञा, संस्कृति , निर्जन आदि का प्रयोग किया है ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी भाषा में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग कर भाषा को नया सौंदर्य और भंगिमा प्रदान की है । उन्होंने अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग इस सहजता से किया है कि वे हिन्दी शब्दों में घुल–मिल गये हैं । तहजीब, इनायत, अलाव, गम, करिश्मा, खामोश, जुनून, हरगिज, दरख्त, खुदा, दहशत, मयस्सर, चिराग, ख्याल, बहार, सहर, आफताब आदि अरबी-फारसी की शब्दावली उनके काव्य संसार में दिखाई पड़ती है । दुष्यंत कुमार ने कई उर्दू शब्दों के तत्सम रूपों को खत्म कर, उनका प्रयोग हिन्दी के प्रचलित रूपों में किया जैसे– वज्न को वजन, शह्र को शहर आदि । ऐसा करके दुष्यंत कुमार ने भाषा को सहज

और आमजन के सन्निकट लाने का प्रयास किया है जो उनका मूल अभिप्रेत है । दुष्यंत कुमार ने अपनी भाषा में छोटे-छोटे शब्दों द्वारा विविध मन:स्थितियों को सुन्दर ढ़ंग से उजागर किया है –

‘‘ कितना स्वीकार्य और सहज हो गया है परिवेश
कि सत्य
चाहे नंगा होकर आए, दिखता नहीं है ।’’[21]

व्यक्ति के समक्ष सत्य नंगा होकर रहता है फिर भी व्यक्ति अपनी अंध मानसिकता के कारण सत्य को अनदेखा कर देता है । मनुष्य की निरपेक्ष दृष्टि को कवि ने यहाँ शब्दों से प्रत्यक्ष कर दिया है ।

कवि ने हमेशा इस बात का ध्यान रखा है कि भारी-भरकम शब्दों के बोझ से भाव न दब जाये । उनकी कई कविताएँ ऐसी है जिसके कई प्रारूप (draft) मिलते हैं । उदाहरण के तौर पर ‘प्रथम प्रारूप’ और ‘अंतिम प्रारूप’ शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ है । प्रथम प्रारूप में कवि लिखते हैं –

‘‘ जगती का प्यासा कण-कण है
प्यासा मानव का जीवन है
तुम मधु वाणी से कवि अपनी
शांति सुधा-रस पान करा दो’’[22]

वहीं ‘अंतिम प्रारूप’ कविता में कवि भाषा को गहन स्तर पर भावानुकूल प्रयुक्त

करते हुए दिखते हैं –

“ तृषावंत जग का कण-कण है
तृषावंत मानव जीवन है
कवि तुम अपनी मधु वीणा से
शांति सुधा-रस पान करा दो ”[23]

जहाँ ‘प्रथम प्रारूप’ में कथ्य सतह पर ही रह गया है, वहीं ‘अंतिम प्रारूप’ में कथ्य की गहनता उभरकर आयी है । शब्दों के सार्थक और उचित चयन से कवि की तीव्र संवेदना बखूबी जाहिर हुई है ।

समग्रत: कवि अपनी अभिव्यक्ति के लिए ऐसी भाषा का चुनाव करते हैं जो सहज, सरल और आमजन के निकट हो । अपनी भाषा द्वारा उन्होंने हिन्दी और उर्दू की भाषायी साहित्यिक विरासत को साझा करने की कोशिश की है और उसमें वे सफल भी हुए हैं । सहज भाषिक बुनावट के कारण कोई भी अध्येता उनकी कविताओं की ओर आकर्षित हो जाता है । उर्दू की ग़ज़ल विधा को आधार बनाकर हिन्दी में जिस सहजता और कलात्मकता से वे सामाजिक विद्रूपता और विसंगति को प्रस्तुत कर सके, वह उनकी भाषागत कुशलता का प्रमाण है ।

2. बिम्ब

बिम्ब शिल्प का एक महत्त्वपूर्ण तत्व है । इसके लिए अंग्रेजी में ‘इमेज’ शब्द का प्रयोग किया गया है । आधुनिक युग की जटिलता को व्यक्त

करने में बिम्ब प्रभावी अभिव्यंजन पद्धति है । बिम्ब किसी वस्तु की मानसिक प्रतिकृति है । काव्य-अंकन में जब प्रस्तुत और अप्रस्तुत का भेद मिट जाता है, तब बिम्ब की सृष्टि होती है । बिम्ब के लिए हिन्दी में प्रतिच्छवि, प्रतिच्छाया, प्रत्यंकन, चित्र भाषा आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है । काव्य–बिम्ब में कवि अपने भाव और विचारों का चित्रात्मक रूप प्रस्तुत करते हैं अर्थात् काव्य में बिम्ब–विधान के द्वारा चित्रात्मकता की सृष्टि होती है । केदारनाथ सिंह ने काव्य सर्जना में बिम्ब को अधिक महत्त्व दिया है । वे बिम्ब को परिभाषित करते हुए लिखते हैं –'' 'बिम्ब वह शब्द-चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐंद्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है ।''[24] केदारनाथ सिंह के कहने का आशय यही है कि बिम्ब का निर्माण कवि की सर्जनात्मक कल्पना से होता है । कवि जब किसी वस्तु से गहन स्तर तक सम्बद्ध हो जाता है, तब बिम्ब की निर्मिति होती है ।

कांता पंत ने लिखा है – ''बिम्ब सादृश्य पर आधारित वह कल्पित विधान है जिसके द्वारा काव्यगत अर्थ हमारे सामने रूपायित हो जाता है । इसके लिए हम साम्य के आधार पर कोई ऐसा भाषिक प्रयोग करते हैं जो भाव को हमारे सामने इस रूप में चित्रित कर सके, कि उसका हम उसी रूप में अनुभव कर सकें, जैसे भौतिक जगत के किसी तत्त्व का किसी भी इंद्रिय के द्वारा अनुभव करते हैं ।''[25] कहने का अर्थ यही है कि जो शब्द इंद्रियानुभव भाव चित्र उकेर दे, वही

बिम्ब है । बिम्ब सादृश्य के आधार पर किसी वस्तु या गुण की प्रतिछवि है । बिम्ब निर्माण में आलोचक ने कल्पना के महत्त्व को भी स्वीकारा है ।

एकांत श्रीवास्तव का मानना है कि – ‘‘बिम्ब और प्रतीक बहुत दूर तक कविता की भाषा को एक परिपक्वता और काव्यात्मकता प्रदान करते हैं । ......बिम्ब हमारे दैनन्दिन संसार और प्रकृति को कविता में मूर्त और सजीव करते हैं ।’’[26] अर्थात् बिम्ब काव्य-शिल्प का वह तत्व है जो रचना में वर्णित कथ्य को जीवंत बना देता है । दिनकर तो बिम्ब को ‘कविता का एक मात्र शाश्वत तत्त्व’[27] मानते हैं ।

बिम्ब रचनाकार की कुशलता का प्रमाण है । रचनाकार अपने कथ्य को शब्द और भाषा के सहारे ऐसे प्रकट करता है कि पाठक के सामने रचनाकार का कथ्य चित्र रूप में निर्मित हो जाता है । पाश्चात्य विचारक ड्राइडन के अनुसार- ‘‘बिम्ब विधान कविता की उत्कृष्टता नहीं, उसका प्राण तत्व है ।’’[28]

अत: यह कहा जा सकता है कि रचनाकार की कुशलता अपने भाव एवं विचारों को पाठक तक पहुँचाने में है और यह कार्य वह उत्कृष्ट बिम्ब-विधान द्वारा करता है । बिम्ब एक प्रकार का शब्द–चित्र है जो कवि के ऐंद्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होती है । बिम्ब-विधान के द्वारा भाव में मूर्तता आती है । बिम्ब सर्जक के भाव और विचार को प्रत्यक्ष करता है । यह भाव एवं विचारों की

कलात्मक पुनर्सृष्टि है क्योंकि यह रचनाकार की संवेदना, उसकी कल्पना, उसका काव्यार्थ सभी का संतुलित समन्वय है ।

दुष्यंत कुमार का बिम्ब-विधान उत्कृष्ट है । बिम्बों के प्रयोग से उनके शिल्प में ताजगी आयी है । उनके काव्य जगत में विविध प्रकार के बिम्ब दिखायी देते हैं । दृश्य बिम्ब, स्पर्श बिम्ब, रस बिम्ब, ध्वनि बिम्ब, वैज्ञानिक बिम्ब, धार्मिक बिम्ब, पौराणिक बिम्ब का प्रयोग उनकी कविताओं में हुआ है । दुष्यंत कुमार की कविताओं में प्राकृतिक बिम्ब का प्रयोग अत्यंत आकर्षक ढ़ंग से हुआ है । प्राकृतिक बिम्ब के अंतर्गत कवि अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए प्रकृति से सामग्री संकलित करता है । छायावादी कवियों में पंत ने सर्वाधिक बिम्ब प्रकृति से लिए हैं । दुष्यंत कुमार के काव्य में प्राकृतिक बिंबों की भरमार है । उनके काव्य-संग्रहों - 'सूर्य का स्वागत', 'जलते हुए वन का वसंत', 'साये में धूप' के नामकरण प्राकृतिक बिम्ब का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । 'सूर्य का स्वागत' काव्य-संग्रह की कविता 'सूर्य का स्वागत' में कवि प्राकृतिक बिम्ब की रचना अत्यंत रमणीयता के साथ करते हैं –

> " आँगन में काई है,
> दीवारें चिकनी हैं , काली हैं,
> धूप से चढ़ा नहीं जाता है,"[29]

काई और सीलन से भरी दिवार पर चढ़ पाने में असमर्थ धूप का जो बिम्ब कवि ने

उकेरा है, वह नवीन तो है ही, आकर्षक भी है । समुद्र, धूप, शाम, सूर्य, वर्षा, इंद्रधनुष, चाँदनी, धुँआ, हवा आदि बिम्बों का कवि ने बार-बार प्रयोग किया है । उनकी रचनाओं में धूप और सूर्य अधिक बार आये हैं । उनकी 'स्वस्तिक क्षण' कविता में धूप का जो बिम्ब खींचा गया है, वह अनूठा है –

" आँगन में पड़ी हुई पायल–सी धूप !
छूम छनन छन ! "[30]

'साये में धूप' संग्रह में धूप से संबंधित कई बिम्ब दिखाई पड़ते हैं । संग्रह के नामकरण में ही बिम्ब का सुन्दर प्रयोग दिखता है । इसके अलावा कुछेक निम्नलिखित उदाहरण है –

1. " यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है ,
चलो यहाँ से चलें और उम्र–भर के लिए ।"[31]
2. " कहीं पे धूप की चादर बिछा के बैठ गए,
कहीं पे शाम सिरहाने लगा के बैठ गए ।"[32]
3. " धूप ये अठखेलियाँ हर रोज करती है ,
एक छाया सीढ़ियाँ चढ़ती-उतरती है ।"[33]

धूप के अतिरिक्त अन्य प्रकृति रूपों के प्रभावी बिम्ब देखिए–

1. " खरगोश बन के दौड़ रहे हैं तमाम ख्वाब ,
फिरता है चाँदनी में कोई सच डरा-डरा ।"[34]

2. “ एक चादर साँझ ने सारे नगर पर डाल दी,

यह अँधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है ।”[35]

3. “ निर्वचन मैदान में लेटी हुई है जो नदी ,

पत्थरों से, ओट में जा-जाके बतियाती तो है ।”[36]

जब कवि अपने कथ्य को मूर्त करने के लिए पौराणिक चरित्रों का सहारा लेता है, तब वहाँ पौराणिक बिम्ब की सृष्टि होती है । दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में पौराणिक बिम्बों के माध्यम से आधुनिक जीवन-सन्दर्भो को प्रतिपादित किया है । कवि ने अधिकांश पौराणिक बिम्ब महाभारत के पौराणिक प्रसंग से लिये हैं । कवि यहाँ पौराणिक पात्र और घटनाओं के द्वारा अपने गम्भीर भाव और विचारणाओं को मूर्त करते हैं ।‘दृष्टांत’,‘दिग्विजय का अश्व’,‘कवि- धर्म’,‘कुंठा’, ‘सत्यान्वेषी’ आदि कविताओं में पौराणिक बिम्ब का सफल प्रयोग देख सकते हैं ।‘कुंठा’ शीर्षक कविता में पौराणिक बिम्ब की सृष्टि कवि आकर्षक तरीके से करते हैं –

“ गर्भवती है

मेरी कुंठा-क्वारी कुंती !

बाहर आने दूँ

तो लोक-लाज मर्यादा

भीतर रहने दूँ

तो घुटन, सहन से ज्यादा,

मेरा यह व्यक्तित्व

सिमटने पर आमादा ।''[37]

यहाँ अभिव्यक्ति की छटपटाहट को पौराणिक बिम्ब द्वारा कवि ने मूर्तिमान कर दिया है ।

दृश्यात्मकता प्रत्येक बिम्ब का मुख्य लक्षण है । सर्जक के भाव और विचारों की जो प्रतिछवि पाठक के मानस में गठित होती है, उसकी मुख्य वजह यही दृश्यात्मकता है । इसे ऐंद्रिय बिम्ब भी कहा जाता है । दृश्य बिम्ब के दो रूप माने गये हैं – स्थिर और गतिशील । स्थिर बिम्ब में केवल चित्र का बोध होता हैं जबकि गतिशील बिम्ब गतिशील क्रिया-व्यापार का बोध कराते हैं । दुष्यंत कुमार की कविताओं में कई दृश्य बिम्ब दिखाई पड़ते हैं । स्थिर बिम्ब का यह प्रस्तुत उदाहरण देखे–

'' बंजर धरती, झुलसे पौधे, बिखरे काँटे, तेज हवा,

हमने घर बैठे-बैठे ही सारा मंजर देख लिया ।''[38]

सूखे की स्थिति को कवि ने यहाँ प्रत्यक्ष कर दिया है । उनकी 'दिग्विजय का अश्व' कविता में भी स्थिर बिम्ब का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है –

'' अस्तबल में बँधा यह निर्वाक प्राणी !

उस 'चमेली' गाय के बछड़े सरीखा

आज बंधनहीन होकर

यहाँ कितना रम गया है !

यह कि जैसे यहीं जन्मा हो, पला हो ।''[39]

गतिशील बिम्ब के कई सुन्दर उदाहरण उनकी रचनाओं में मिल जाते हैं । तेज रफ्तार जिन्दगी का जो बिम्ब कवि ने उकेरा है, वह कवि की सामाजिक चिंता को प्रमाणित करती है । आपाधापी भरी जिन्दगी का यह बिम्ब प्रस्तुत है –

'' पाँच बजे टूट पड़ती

एक भीड़ अपार

अनगिन लोग-कारें बसें बाइसिकलें

राजमार्गों पर उतरती दौड़ती हैं ''[40]

वैज्ञानिक बिम्ब में रचनाकार वैज्ञानिक उपादानों के द्वारा अपने अभिप्रेत को चाक्षुष बना देता है । कवि दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में वैज्ञानिक दुनिया के कई बिम्बों का स्वाभाविक प्रयोग किया है । गैस, बिजली का स्विच, मशीन, लैम्प पोस्ट की चिमनियाँ आदि इसके प्रमाण है । निम्नलिखित उदाहरण में 'गैस के गुब्बारों ' का बिम्बात्मक अंकन द्रष्टव्य है –

'' गैस के गुब्बारों-से

जिन्दगी के ख्वाब जहाँ उड़ते हैं

हवाओं के बच्चे जिन्हें

छूकर फोड़ देते हैं ''[41]

'प्रेरणा के लिए' कविता में कवि वैज्ञानिक बिम्ब के माध्यम से मानवीय प्रकृति को रूपायित करते हैं –

'' जैसे बिजली का स्विच दबे
औ' मशीन चल निकले
वैसे ही मैं था बस ,
मूक.... विवश.....
कर्मशील इच्छा के सम्मुख
परिचालक थे जिनके तुम ।''[42]

इसी तरह सामाजिक क्रांति को उभारता हुआ यह वैज्ञानिक बिम्ब देखें –

'' आटा पीसने की चक्कियाँ
जनता के सम्मिलित नारों की-सी आवाज में
गड़गड़ाने लगी हैं,''[43]

दुष्यंत कुमार ने ध्वनि बिम्ब का प्रयोग अपनी कविताओं में बहुलता से किया है । ध्वनि बिम्ब गम्भीर भावों के सहज प्रकाशन में पूर्ण समर्थ है । ध्वनि बिम्ब की एक विशेषता यह है कि इसमें संक्षेप में ही रचनाकार पूरी कलात्मकता के साथ अपने अभीष्टार्थ को सहृदय तक पहुँचा देता है । कवि दुष्यंत कुमार की कविताओं में ध्वनि बिम्ब का सार्थक प्रयोग हुआ है । 'साड़ी के पल्लू-सी सरसराहट ', 'मौत की धड़धड़ाहत', 'चिड़िया के पंख की फड़फड़ाहट' आदि को

कवि गहनता से सुनते हैं और उसे कविताओं में प्रत्यक्ष कर देते हैं । दुष्यंत कुमार के ध्वनि बिम्बों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है । ध्वनि बिम्ब का निम्न उदाहरण प्रस्तुत है –

‘‘ मनुष्यों जैसी
पक्षियों की चीखें और कराहें गूँज रही हैं ,
टीन के कनस्तरों की बस्ती में
हृदय की शक्ल जैसी अँगीठियों से
धुआँ निकलने लगा है,
आटा पीसने की चक्कियाँ
जनता के सम्मिलित नारों की-सी आवाज में
गड़गड़ाने लगी हैं ,’’[44]

दुष्यंत कुमार की रचनाओं में धार्मिक जगत से भी कई बिम्ब आए हैं । निम्न शे’र इसका प्रमाण है –

1. ‘‘ रस्मों-रिवाज के तहत कुछ लोग मुस्करा दिए ,
दिन-रात एक बात पर क्या सोचकर रहा करूँ ।’’[45]

2. ‘‘ शीशे चटख गए तो आज अक्स अजनबी हुए
मांगू कहाँ मनौतियाँ जाकर कहाँ दुआ करूँ । ’’[46]

3.‘‘ ये लोग होमो-हवन में यकीन रखते हैं ,
चलो यहाँ से चलें, हाथ जल न जाए कहीं ।’’[47]

अस्तु, यह कहा जा सकता है कि कवि दुष्यंत कुमार की बिम्ब-योजना अत्यंत आकर्षक है । बिम्ब के माध्यम से कवि अपने भाव एवं विचारों को मूर्त करने में सक्षम हुए हैं । उन्होंने नये और पुराने दोनों तरह के बिम्बों को अपनी कविताओं में प्रयुक्त किया है । उनके बिम्ब सार्थक, प्रभावशाली और सबसे बढ़कर सम्प्रेषणीय है । वह पाठकों के मन-मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव डालने वाला है । बिम्बों का प्रयोग कर कवि ने अपनी भावाभिव्यक्ति को आकर्षक और रमणीय बना दिया है । कवि ने बिम्बों के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को प्रत्यक्ष कर दिया है । उनकी कविताओं में प्रयुक्त बिम्ब आधुनिक युग की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विसंगति और विडंबना को रूपायित करने में समर्थ हुए हैं । सामान्यजन के जीवन की त्रासदी बिम्बों के द्वारा जीवंत हो उठी है । उनकी बिम्ब-योजना सहज और स्वाभाविक है, उसमें दुरूहता और बनावटीपन नहीं है ।

3. प्रतीक-योजना

प्रतीक के लिए अंग्रेजी में ‘सिम्बल’ शब्द का प्रयोग मिलता है । प्रतीक भी काव्य–सृजनात्मक प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण तत्व है । प्रतीक सादृश्य पर आधारित होता है । प्रतीक सफल भावाभिव्यक्ति में सहायक होते हैं ।

भारतीय साहित्य कोश में प्रतीक के संबंध में लिखा है –‘‘यह अंग्रेजी के ‘सिम्बल’ का पर्याय है । इसका प्रयोग किसी मूर्त, अमूर्त और गोचर

तथा इंद्रियातीत विषय का किसी अन्य मूर्त एवं इंद्रियगोचर वस्तु द्वारा प्रतिविधान किए जाने के अर्थ में होता है । अत: प्रतीक योजना में सामान्यत: चार तत्वों की स्थिति होती है- परोक्ष एवं अप्रस्तुत कथन की शैली ; अतींद्रिय विषय की इंद्रियगोचर व्याख्या ; प्रस्तुत से भिन्न सूक्ष्मतर अर्थ की व्यंजना; प्रस्तुत के कथन के स्थान पर केवल अप्रस्तुत का कथन ।''[48]

रामचंद्र तिवारी के अनुसार –'' 'प्रतीक का अर्थ होता है किसी एक वस्तु के प्रतिनिधि या व्यंजक के रूप में दूसरी वस्तु को प्रस्तुत करना ।''[49]

हिन्दी साहित्य के आरम्भिक काल से ही काव्य में प्रतीकों का प्रयोग मिलता है । मध्यकाल के कवि कबीर और जायसी के काव्य में इसकी प्रचुरता देखी जा सकती है । कुछ प्रतीक तो विशेष रूप से हमारे रोजमरी के जीवन के अंग बन गये हैं, जैसे वीरता के लिए शेर, चालाकी के लिए लोमड़ी, आत्मा के लिए हंस, कायर के लिए गीदड़ आदि । प्रतीकों की योजना अर्थ-सन्दर्भो को व्यंजित करने के लिए किया जाता है । प्रतीकों के प्रयोग से काव्य-भाषा की व्यंजना शक्ति समृद्ध होती है । कवि सूक्ष्म और गहन अनुभूतियों को प्रतीकों के द्वारा सहजता से अभिव्यक्त करने में समर्थ होता है । प्रतीक किसी वस्तु का निश्चित और सर्वस्वीकृत संकेत है । जब रचनाकार अपनी बातों को स्पष्टत: नहीं कह पाता है, तब वह प्रतीकों के माध्यम से अपने विचारों को प्रकट करता है ।

प्रतीकों का प्रयोग दुष्यंत कुमार के रचना जगत में बहुतायत मात्रा में

हुआ है । उन्होंने विभिन्न प्रतीकों का सार्थक प्रयोग कर अपनी सृजनात्मकता को नई अर्थवत्ता दी है । दुष्यंत कुमार मानवीय मूल्यों के कवि है । समकालीन सामाजिक यथार्थ को निरूपित करने के लिए कवि पौराणिक प्रतीकों का सहारा लेते हैं । पौराणिक प्रतीकों में कृष्ण, अर्जुन, भीम, सहदेव, धर्मराज, नकुल, अभिमन्यु, कर्ण, कुंती, चक्रव्युह, युद्ध–स्थल, कौरव–सेना प्रमुख है । 'दिग्विजय का अश्व' शीर्षक कविता उनकी प्रतीकात्मक कविता है । इसमें कवि पौराणिक प्रसंग को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत कर अपनी विद्रोही चेतना को अभिव्यक्त करते हैं । कवि ने इस कविता के माध्यम से साम्राज्यवादी ताकतों के प्रति अपनी विद्रोही चेतना को व्यक्त किया है । इस कविता में कृष्ण, अर्जुन, भीम, सहदेव, धर्मराज, नकुल साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रतीक है । उनका अश्व और हाथी शक्तिशाली साधनों का प्रतीक है । 'फसल' आम-जनता, 'निर्वाक प्राणी' लोकतंत्रीय संविधान का, फाड़वे और लाठी जनता के संघर्ष का प्रतीक है । महाभारत के पौराणिक पात्रों के माध्यम से कवि सत्ता वर्ग के दबदबे, उनके शक्तिभिमान को व्यंजित करते हैं । 'दिग्विजय का अश्व' शीर्षक कविता में निहित प्रतीकों की प्रशंसा करते हुए प्रभाकर क्षोत्रिय लिखते हैं – '' 'दिग्विजय का अश्व' जैसी कविताओं में वे पारम्परिक प्रसंग को प्रतीक में बदलकर अपनी विद्रोही चेतना को क्रीड़ा-भाव के निराले अन्दाज में रचते हैं ।''[50]

प्रभाकर क्षोत्रिय कवि दुष्यंत कुमार के प्रतीक योजना में उनके चरित्र

के 'तबीयत से पत्थर उछालने' वाले तेवर को देखते हैं । आलोचक का मानना है कि कवि के प्रतीक सन्दर्भानुकूल ही नहीं बल्कि सारगर्भित भी होते हैं ।

इसी तरह 'सत्यान्वेषी' शीर्षक कविता में कवि कृष्ण को दृढ़–प्रतिज्ञ व्यक्ति के प्रतीक के रूप में चित्रित करते हैं, जो अपने मूलभूत अधिकारों को प्राप्त करने के लिए पूर्णरूपेण सचेष्ट है –

'' सुनो, कृष्ण हूँ मैं,
भूल से साथियों ने
इधर फेंक दी थी जो गेंद , अन
उसे लेने आया हूँ
(आया था
आऊँगा)
लेकर ही जाऊँगा !''[51]

इसके अतिरिक्त इस कविता में अजगर प्रतिरोधात्मक शक्ति का, कालियादाह युग का और गेंद सत्य का प्रतीक है । उनकी 'कुंठा' शीर्षक कविता में कुंती कुंठित अभिव्यक्ति का प्रतीक है । कवि की अभिव्यक्ति क्वारी कुंती की तरह गर्भावस्था की त्रासदायक पीड़ा को झेल रही है–

'' प्रसव-काल है!
सघन वेदना !

मन के चट्टानों कुछ खिसको
राह बना लूँ ;
ओ स्वर-निर्झर बहो कि तुममें
गर्भवती अपनी कुंठा का कर्ण बहा लूँ,
मुझको इससे मोह नहीं है
इसे विदा दूँ।''[52]

उनकी रचनाओं में अभिमन्यु संघर्षशील व्यक्तित्व का, क्वारी कुंती व्यक्ति मन की कुंठा का, क्वारी कुंती का पुत्र कर्ण प्रतिशोधात्मक मन का, कौरव-दल अन्यायी शक्तियों का प्रतीक है । इन प्रतीकों के माध्यम से कवि ने जीवन-सत्य को अनावृत किया है । ये प्रतीक आधुनिक जीवन-सन्दर्भो को रूपायित करने में पूर्ण समर्थ हुए हैं ।

कवि दुष्यंत कुमार ने अपने कथ्य को सारगर्भित रूप में अभिव्यक्त करने के लिए प्रकृति और प्राकृतिक उपादानों से प्रतीक ग्रहण किया है । इनकी कविताओं में प्राकृतिक प्रतीकों की भरमार है । इन प्रतीकों के द्वारा कवि अपनी व्यंजना शक्ति को सशक्त बनाते हैं । कवि ने छोटी–छोटी मन:स्थितियों और संवेदनाओं को प्राकृतिक प्रतीकों के द्वारा सुन्दर तरीके से व्यक्त किया है । अपनी कविताओं में नदी, तालाब, पेड़–पौधे, आकाश, फूल, साँप, मैना आदि प्राकृतिक उपादानों को कवि ने प्रतीक के तौर पर प्रयुक्त किया है । इनके माध्यम से कवि ने

भ्रष्ट राजनीति और लोकतंत्र की विसंगतियों को सशक्त रूप में अनावृत्त किया है । 'साँप आस्तीनों में' शीर्षक कविता के भाग–1 में कवि ने प्राकृतिक प्रतीकों के द्वारा राजनीतिक विसंगतियों को सुन्दर तरीके से उजागर किया है । इस कविता में प्रतीकों का उत्कृष्ट प्रयोग देखा जा सकता है –

" हमने पाले साँप आस्तीनों में
दूध पिलाया
खुले हुए आँगन में छोड़ा
पक्का फर्श उखाड़
बनाए उसके लिए रास्ते
उसको अपना माना
पर ये साँप रहे
उनके दाँतों से विष न गया
हमने तोड़े नहीं
इन्होंने उन्हें प्रयोग किया "[53]

यहाँ साँप भ्रष्ट और स्वार्थी राजनेताओं का, खुला हुआ आँगन भारत देश का, पक्का फर्श लोकतंत्रीय संविधान का, विष नेताओं के छल-कपट का प्रतीक है । इस कविता में कवि ने प्रतीकात्मक रूप में राजनीतिक विसंगतियों को वृहत्तर स्तर पर प्रकट किया है । प्राकृतिक प्रतीक का एक और उदाहरण प्रस्तुत है–

'' जिएँ तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले,
मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए ''[54]

प्रस्तुत शे'र में गुलमोहर भारत देश का प्रतीक है । यहाँ प्रतीक का प्रयोग कर कवि देश के प्रति अपने अगाध प्रेम को अभिव्यक्त करते हैं । इसी तरह ''अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,/ये कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं ''[55] में तालाब लोकतंत्रीय व्यवस्था का, पानी नीतियों का, कँवल का फूल व्यवस्था के तले दबे हुए सामान्यजन का प्रतीक है ।

दुष्यंत कुमार के प्रथम काव्य-संग्रह 'सूर्य का स्वागत' में संग्रहित 'सूर्य का स्वागत' शीर्षक कविता में सूर्य आस्था का, काई घोर अभाव का, काली दिवारें निराशा का और धूप आशा का प्रतीक है –

'' आँगन में काई है ,
दीवारें चिकनी हैं, काली हैं,
धूप से चढ़ा नहीं जाता है,''[56]

इसके अलावा उनकी कविताओं में झील, हरसिंगार, परिन्दे, बरगद, मैना आदि प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग हुआ है ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में राजनीतिक प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग किया है । जहाँ वे अपना गहरा आक्रोश प्रकट करते हैं, वहाँ प्रतीकों के प्रयोग से आक्रोश तिलमिला देनेवाले व्यंग्य में परिर्वतित हो जाता है । उनकी

कविताओं का बहुलांश राजनीतिक जीवन की विसंगतियों, लोकतंत्र के जनविरोधी चरित्र को व्यापकता से उद्‌घाटित करती है । उदाहरण के लिए निम्न शे'र देखिये –

'' जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में ,
हम नहीं है आदमी, हम झुनझुने है ।''[57]

इस शे'र में दुष्यंत कुमार ने 'झुनझुना' को जनतंत्र में सामान्य जन के 'अस्तित्वहीन व्यक्तित्व' का प्रतीक बनाया है । इस प्रतीक के माध्यम से दुष्यंत कुमार ने जनतांत्रिक व्यवस्था की सच्चाई को तीखे तेवर के साथ सामने लाया है । आपातकालीन तानाशाही को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करने के लिए कवि ने राजनीतिक प्रतीकों का सहारा लिया है –

'' एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या यों कहो ,
इस अंधेरी कोठरी में एक रोशनदान है ।''[58]

यहाँ अंधेरी कोठरी देश में व्याप्त अव्यवस्था और अनाचार का तथा रोशनदान जन–समर्पित व्यक्तित्व स्व. जयप्रकाश नारायण का प्रतीक है ।

निष्कर्षत: दुष्यंत कुमार ने अपनी रचनाओं में प्रतीकों का स्वाभाविक प्रयोग किया है । उनके प्रतीक उनकी अभिव्यंजना को नया आयाम देते हैं । प्रतीकों के प्रयोग से उनकी कविताओं में रोचकता की सृष्टि हुई है ।

4. अलंकार

अलंकार का शाब्दिक अर्थ है–'आभूषण' । सामान्यत: विविध प्रकार के आभूषणों के प्रयोग से शरीर का सौंदर्यवर्धन किया जाता है । काव्य में अलंकारों का प्रयोगकर काव्य की शोभा और प्रभाव को बढ़ाने की चेष्टा की जाती है । अलंकार काव्य–शिल्प का प्रमुख तत्व न होकर भी उपयोगी तत्व अवश्य है । अलंकार के स्वरूप के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है – ''कविता में भाषा की सब शक्तियों से काम लेना पड़ता है । वस्तु या व्यापार की भावना चटकीली करने और भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुँचाने के लिए कभी किसी वस्तु का आकार या गुण बहुत बढ़ाकर दिखाना पड़ता है, कभी उसके रूप-रंग या गुण की भावना को उसी प्रकार के और रूप-रंग मिलाकर तीव्र करने के लिए समान रूप और धर्मशाली और-और वस्तुओं को सामने लाकर रखना पड़ता है । कभी–कभी बात को घुमा–फिराकर कहना पड़ता है । इस तरह के भिन्न-भिन्न विधान और कथन के ढ़ंग अलंकार कहलाते हैं ।''[59] शुक्ल जी मानते हैं कि अलंकार काव्यार्थ को नवीन रूप में विभूषित कर उसका उत्कर्ष बढ़ाता है । अलंकारों के प्रयोग से कथ्य में नवीन सौंदर्य की सृष्टि हो जाती है । अलंकार के संबंध में कविवर पंत के विचारों को जानना आवश्यक लगता है – ''अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं । भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं, वे

वाणी के आचार, व्यवहार, रीति, नीति है, पृथक स्थितियों के पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं ।''[60] पंतजी के कथन का आशय यही है कि अलंकार काव्य के लिए अनिवार्य तत्व न होकर भी काव्य की या कहे हुए कथन की शोभा बढ़ाने के लिए जरूरी है । अलंकार भावाभिव्यक्ति को विशेष बना देता है । अलंकार केवल सौंदर्य ही नहीं बढ़ाता बल्कि विविध भावों और स्थितियों को जीवंत भी कर देता है । अगर अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया जाए तो अलंकार से सुसज्जित विचार अपना प्रभाव बढ़ाने में समर्थ होती है । वही अगर अलंकारों को जबरन ठूस दिया जाए तो विचार और प्रभाव, दोनों खत्म हो जाता है ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में विविध अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है । अलंकारों के प्रयोग से उनकी भाषा की गरिमा में वृद्धि हुई है । वे अलंकार द्वारा भावों, विचारों एवं घटनाओं को प्रत्यक्ष और आकर्षक बनाते हैं । कविता को आकर्षक बनाने के लिए कवि उसका गैरजरूरी प्रयोग नहीं करते हैं । वे अलंकारों के द्वारा भाव को चित्रमयी बनाने में सफल हुए हैं । यही वजह है कि सप्तकीय परम्परा और शैलीगत प्रयोग से पृथक होकर भी वे पाठकों के हृदय में स्थायी प्रभाव डालने में समर्थ हुए हैं । उनके काव्य-संसार में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, मानवीकरण, अन्योक्ति, पुनरूक्तिप्रकाश आदि अलंकारों का सुन्दर और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी रचनाओं में उपमा अलंकारों की प्रचुरता है । उपमा अलंकार का प्रयोग कर कवि ने भाव को गम्भीर और आकर्षक बना दिया है । सादृश्य के माध्यम से कवि एक विराट् भाव एवं विचार को प्रभावशाली तरीके से नियोजित कर देते हैं । कवि ने सामान्यजन के जीवन की बेबसी को उपमा अलंकार के प्रयोग से मार्मिक बना दिया है –

‘‘ उत्साहवश या विवश करके
वहाँ लाए गए थे
वो लोग थककर बैठ जाएँगे
फिर किसी मनहूस दल के चिह्न-सी जीवन–पताका
झुकेगी या थरथराकर टूट जाएगी ।’’[61]

कवि ने उपमा अलंकारों के द्वारा उक्ति में चमत्कार ही नहीं उत्पन्न किया अपितु जीवन-संघर्ष के विविध आयामों को भी स्पष्ट किया है –

‘‘ हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए ।’’[62]

उपर्युक्त शे’र में व्यथा की पराकाष्ठा को उपमा अलंकार के प्रयोग से कवि ने जीवंत, मार्मिक और प्रभावशाली बना दिया है । कवि ने कतिपय नये उपमानों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है । जैसे –

‘‘ तू किसी रेल-सी गुजरती है,

मैं किसी पुल-सा थरथराता हूँ।''[63]

यहाँ ' रेल-सी' और 'पुल-सा' परम्परागत उपमानों से भिन्न नये उपमान है जिसका प्रथम प्रयोग दुष्यंत कुमार ने किया है। 'कवि-धर्म ', 'उपक्रम' जैसी कविताओं में उपमा अलंकारों का बहुत ही सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है। 'भूखे बालकों-सी बिलखती मर्यादाएँ ', 'साड़ी के पल्लू-सी सरसराहट' ,'जीने की आशाएँ चिकनी मछलियों–सी' 'आँखों में एक विचित्र मुलायम-सी हिंसक क्रूरता का भाव', 'लिपे–पुते आँगन–सी धरती पड़ी है', 'बदहवास लड़की-सी गरम-गरम साँसे', 'कुंठा / रेशम के कीड़ों-सी' आदि उपमा अलंकार के बेहतरीन उदाहरण है।

अनुप्रास अलंकार का प्रयोग दुष्यंत कुमार की कविताओं में बहुत अधिक मात्रा में हुआ है। अनुप्रास अलंकार में वर्णो की आवृत्ति बार-बार होती है। वर्णो की समानता का मतलब है व्यंजन वर्णो की समानता। इसमें एक अर्थ वाले पदों या वाक्यों की भी एक या एक से अधिक बार आवृत्ति होती है। दुष्यंत कुमार ने अनुप्रास के सभी रूपों का सुन्दर प्रयोग किया है। 'गहरी और गहरी अगर होती गई प्राण','पल-भर में जनता पर जादू कर जाता है','ओसारों में बैठे हुए बूढ़े बर्राते हैं','यह सोचे बिना कि कार्तिक में कितनी ठंड होती है','लहरों पर लिखे हैं किलोलों के दृश्य', 'पल-भर में जनता पर जादू कर जाता है', 'किसी भी कौम की तारीख के उजाले में', 'मेरे गीतों में कोई छिप-छिप गाता','खामोशी शोर

से सुनते थे कि घबराती,/खामोशी शोर मचाने लगे, ये तो हद है ।' आदि कतिपय उदाहरण है जिनमें अनुप्रास अलंकार का भावप्रवण प्रयोग देखने को मिलता है ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में विरोधाभास अलंकार की सुन्दर नियोजना की है । विरोधाभास अलंकार वहाँ होता है, जहाँ दो वस्तुओं में वास्तविक विरोध न होते हुए भी, विरोध का आभास होता है । विरोधाभास अलंकार के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है–

1)‘‘ मुझे स्वीकार हैं
वे हवाएँ भी
जो तुम्हें शीत देती
और मुझे जलाती हैं ।’’[64]

2)‘‘ मौन था मैं किंतु मैंने
मूक भाषा में कहा था ’’[65]

3)‘‘ जो आदमी मर चुके थे, मौजूद हैं इस सभा में ’’[66]

यहाँ हवा का एक साथ ताप और शीतलता प्रदान करना, कवि का मौन होकर भी कहना और दिवंगत हुए लोगों का सभा में मौजूद रहना, विरोध का आभास करा रहा है ।

दुष्यंत कुमार की कविताओं में उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है । इसके माध्यम से कवि की दार्शनिकता स्पष्ट हुई है । जीवन में सुख की

गैरमौजूदगी को कवि ने उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा बड़े ही आकर्षक ढ़ंग से अभिव्यक्त किया है । प्रस्तुत उदाहरण देखें –

‘‘ सुख कहाँ
यों भाप बन-बनकर चुका, रीता
भटकता, छानता आकाश ,’’[67]

छायावादी कवियों ने मानवीकरण अलंकार की उद्भावना की और अपने काव्य में उनका प्रचुर प्रयोग किया । कवि दुष्यंत कुमार के यहाँ मानवीकरण अलंकार का व्यापक प्रयोग देखने को मिलता है । उनकी ‘सूर्य का स्वागत’ संग्रह की कविताओं में मानवीकरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग दिखता है । ‘सूर्य का स्वागत’ शीर्षक कविता में कवि सूर्य को मानवीय रूप प्रदान करते हुए अपने अभद्र सत्कार के लिए क्षमा माँगते हैं । कवि बड़ी आत्मीयता के साथ सूर्य को ‘भाई’ सम्बोधित करते हुए कहते हैं –

‘‘ ओ भाई सूरज ! मैं क्या करूँ ?
मेरा नसीबा ही ऐसा है ! ’’[68]

‘ईश्वर की सूली’ कविता में कवि ‘प्रजातंत्र ’ को शिशु रूप में तो ‘साँझ : एक विदा दृश्य’ में कवि पर्वत को पिता, संध्या को दु:खी माँ और हवा को एक शोख वय वाली लड़की के रूप में चित्रित करते हैं ।

सामाजिक यथार्थ के कवि अपने आक्रोश को अभिव्यक्त करने हेतु

अन्योक्ति अलंकार का सार्थक प्रयोग करते हैं । इस अलंकार का प्रयोग बहुधा राजनीतिक सन्दर्भो में हुआ है । अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग कर कवि ने अपने व्यंग्य को धारदार और प्रहारक बनाया है ।

‘‘ एक गुड़िया की कई कठपुतली में जान है ,
आज शायर, ये तमाशा देखकर हैरान है।’’[69]

यहाँ तत्कालीन शासक की ओर इशारा किया गया है । इसी तरह अन्योक्ति अलंकार का प्रयोग कर कवि राजनेताओं के दोहरे चरित्र को उजागर करते हैं ।

‘‘ भारत यदि भूखा है, होने दे
वियतनाम जलता है, जलने दे,
व्यर्थ तू झूलसती है
बोल मेरी मैना, तुझे क्या दु:ख है ?’’[70]

दुष्यंत कुमार की कविताओं में जगह-जगह पुनरूक्तिप्रकाश अलंकार का सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है । ‘लड़ने के लिए शिथिल अंग-अंग जोड़ेगा’, ‘जगह–जगह शत्रुओं की फौजों का डेरा है’,‘नगर-नगर/द्वार-द्वार/कोई कुरूक्षेत्र नहीं’,‘कई-कई अग्नियों में’,‘हाय ! पानी में कैसी छलल-छलल होती है’,‘अभी खड़े-खड़े पानी पर फिसल गया ।’ ,‘सुबह-सुबह नहाने की ठान ली’, ‘अंधकार जगह-जगह ठहरा हुआ है’ ,‘यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ’,‘फिर धीरे-धीरे यहाँ का मौसम बदलने लगा है’ आदि कुछ ऐसे ही उदाहरण है ।

अंततः दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में विविध प्रकार के अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है । उनकी कविताओं में अलंकारों का सायास प्रयोग नहीं मिलता । उनके यहाँ अलंकार सहज समाविष्ट होकर उक्ति को सार्थक और सम्मोहक बना देने में समर्थ है । अलंकारों के प्रयोग से उनकी कविताओं में रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता आई है । उन्होंने परम्परागत अलंकारों को नई भाव-भंगिमा और सन्दर्भो के साथ प्रस्तुत किया है जिससे उनकी कविताओं का सौंदर्य द्विगुणित हो गया है ।

5. मुहावरे

अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए काव्य में मुहावरों का प्रयोग किया जाता है । मुहावरा शब्द अरबी के 'मुहावर:' शब्द का हिन्दी रूपांतरण है । इसे 'वाग्धारा' भी कहा जाता है । मुहावरा, एक वाक्यांश होता है, जो सामान्य अर्थ का बोध न कराकर किसी विशेष अर्थ का बोध कराता है । यह शिल्प का एक महत्त्वपूर्ण तत्व है । इनके प्रयोग से न केवल अर्थ सौंदर्य बढ़ता है, उक्ति भी चमत्कारपूर्ण और आकर्षक बन जाती है । मुहावरों के प्रयोग से वाक्य के अर्थ में लालित्य, लाक्षणिकता और प्रवाह की सृष्टि होती है । इनका प्रयोग प्रसंगानुकूल किया जाता है । समय और सोच में परिवर्तन के साथ-साथ मुहावरे भी बनते-बिगड़ते हैं । नये परिवेश के साथ नये मुहावरे गढ़े जा रहे हैं । कविता में

मुहावरों का प्रयोग कर कविता को प्रभावशाली बनाया जाता है । भक्तिकालीन कवि सूरदास और रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द के काव्य में मुहावरों का सुन्दर प्रयोग हुआ है । सूरदास की गोपियाँ तो अपनी वाक्-कुशलता के लिए पाठकों के हृदय में स्थायी जगह पा लेती है । कवि घनानन्द के काव्य में मुहावरों का प्रयोग बहुतायत मात्रा में हुआ है । आधुनिक युग के कवियों ने मुहावरों के प्रयोग से अपनी अभिव्यंजना को सशक्त बनाया है ।

नई कविता के कवि दुष्यंत कुमार के काव्य-संसार में मुहावरों का बहुतायत मात्रा में प्रयोग देखने को मिलता है । मुहावरों के प्रयोग से काव्य में प्रभावोत्पादकता आयी है । इसके द्वारा कवि ने सामाजिक यथार्थ को उजागर किया है । समसामयिक राजनीतिक विसंगतियों को मुहावरों के प्रयोग से कवि ने सशक्त ढ़ंग से अनावृत्त किया है । आपातकालीन तानाशाही को चित्रित करने के लिए कवि ने 'जुबान सिल देना', 'ऐहतियात बरतना' जैसे मुहावरों का सुन्दर प्रयोग किया है –

" तेरा निजाम है सिल दे जुबान शायर की,
ये एहतियात जरूरी है इस बहर के लिए ।"[71]

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन करनेवाले राजनीतिक ताकतों की चालबाजियों को कवि ने मुहावरे के प्रयोग से सशक्त ढ़ंग से अनावृत्त कर दिया है । उर्दू के भी कई प्रसिद्ध लोकोक्ति और मुहावरों को उन्होंने अपने रचना संसार में विन्यस्त कर

लिया है । जैसे–

“ हो गई हर घाट पर पूरी व्यवस्था,
शौक से डूबे जिसे भी डूबना है ।”[72]

वास्तव में मुहावरों के प्रयोग से कवि ने अपनी अनुभूति को ,अपने आक्रोश को धारदार बनाया है । ‘कई बार’ कविता में मुहावरे के प्रयोग से कवि की व्यंजना शक्ति तीव्र हो गई है –

“ मैंने कई बार तिलमिलाकर गुस्से से
माचिस निकाली और आग
दिखलाने की कोशिश की
सारी व्यवस्था को
लेकिन उन्हें आँच तक न आई ”[73]

कवि ने यहाँ ‘आँच तक न आई’ मुहावरे के प्रयोग से व्यवस्था की घोर अराजकता को उजागर किया है । उनके काव्य जगत में ‘जादू करना’ ,‘भाषण पिलाना’, ‘नंगा नर्तन होना’, ‘आँसू बहाना’, ‘साँस फूलना’, ‘बाँहें पसारना’,‘जादू करना’, ‘शौक से डूबना’, ‘हथेली सहलाना’, ‘खून पीना’, ‘साँचे में ढालना’, ‘हाथ से फिसलना’ , ‘आँच न आना’ आदि ऐसे मुहावरे हैं, जिनका कवि ने प्रसंगानुकूल सार्थक प्रयोग किया है ।

इस तरह यह कहा जा सकता है कि वर्तमान जीवन की विसंगति

और विद्रूपतओं को कवि ने मुहावरों के माध्यम से सुन्दर तरीके से चित्रित किया है । उनकी कविताओं में मुहावरे सहज समाविष्ट होकर काव्य-सौंदर्य को बढ़ा देते हैं ।

6. शैली

दुष्यंत कुमार ने गीत और गज़ल दोनों शैली का प्रयोग किया है । उनके गीत और गज़लों में प्रवाह और गेयता निहित है । प्रवाह काव्य-भाषा का एक मुख्य गुण माना जाता है । प्रवाह के कारण भाषा में एक अपूर्व सौंदर्य की सृष्टि होती है । लयात्मकता जो काव्य की एक प्रमुख विशेषता मानी जाती है, वह प्रवाह के कारण ही आती है । दुष्यंत कुमार की भाषा में सर्वत्र लयबद्धता और नादमयता निहित है, जिससे उनकी भाषा आकर्षक बन पड़ी है –

‘‘ सीमाओं में बँधा नहीं हूँ धरती मेरा देश है ।
मेरे कवि का धर्म जागरण है औ’ जन–उन्मेष है ।’’[74]

दुष्यंत कुमार ने अपनी कई कविताओं में वर्णनात्मक, चित्रात्मक और संवाद शैली की सुन्दर संयोजना की है । कहीं-कहीं पर उनकी भाषा का रूप गद्यात्मक हो जाता है –

‘‘ दीवारें होती हैं
और लोग आए दिन उनसे टकराते हैं ,

बुरी तरह घायल हो जाते हैं ,
कई बार गति बिलमा जाती है
रस्ते खो जाते हैं ''[75]

उनकी कविता में प्रयुक्त संवाद शैली का एक उदाहरण देखें –

'' मैं बार–बार इन बच्चों से पूछता हूँ।
मेरे बच्चो !
तुम यहाँ क्या देखने आए हो ?
कटे हुए सिर
धड़हीन चेहरे
विकृत आँखें
और मरी हुई संस्कृति ।
इतनी अधिक कीमत देकर देखने लायक
यहाँ कुछ तो नहीं है ।
लेकिन मेरी कोई सुनता नहीं ।''[76]

कहीं-कहीं पर दुष्यंत कुमार ने अपनी कविता में कथात्मक शैली का प्रयोग किया है । वे कविता में एक कथा के माध्यम से जीवन की कटु एवं तिक्त सच्चाईयों को अनावृत्त करते हैं । 'अपराध','आत्मालाप','एक सफर पर' आदि कविताओं में कवि ने घटना को कथात्मक शैली में व्यक्त किया है ।

7. मिथक

मिथक शब्द मूलतः यूनानी शब्द 'माइथोस' का हिन्दी रूपांतरण है। 'माइथोस' का अर्थ है - 'मुँह से निकला हुआ'। अंग्रेजी में इसके लिए 'मिथ' शब्द प्रचलित है। माइथोस ऐसे आख्यान को कहते हैं, जिसमें तार्किकता नहीं होती। इस तरह मिथक का सामान्य अर्थ हुआ - तर्कहीन आख्यान। मिथक के लिए हिन्दी में 'दंतकथा', 'पुरावृत्त', 'पुराकथा' आदि शब्द प्रचलित है। इसका संबंध पौराणिक कथाओं और रामायण, महाभारत की कथाओं से है। इन पुराकथाओं को आधार बनाकर आधुनिक जीवन-सन्दर्भों को चित्रित किया जाता है। जन भावनाओं के साथ इन कथाओं का घनिष्ट संबंध रहता है।रामचंद्र तिवारी मिथक की उपयोगिता पर लिखते हैं –''मिथकों के प्रयोग आज का कवि कम से कम दो प्रयोजनों की सिद्धि करता है। एक तो वह आदिम विश्वासों को नये सन्दर्भ से जोड़कर नई अर्थवत्ता प्रदान कर देता है, दूसरे कविता कुछ अधिक सम्प्रेष्य बन जाती है क्योंकि उसे एक सन्दर्भ मिल जाता है।''[77]

मृगेंद्र राय लिखते हैं – ''मिथकों में ऐतिहासिक यथार्थ की अपेक्षा युगीन बोध और समयोचित संदेश प्रधान होता है।.....जनभावना से जुड़े होने के कारण इसमें प्रभावान्विति की संभावना भी अधिक होती है। यही कारण है कि रचनाकार इन मिथकों का आधार लेकर अपने समकालीन युगबोध को अभिव्यंजित करता है।''[78]

स्पष्ट है कि आधुनिक जीवन की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विडंबना और विद्रूपताओं को अभिव्यक्ति देने में मिथक पूर्ण समर्थ है, यही कारण है कि कवियों द्वारा मिथकों का प्रयोग आधुनिक काव्य में अधिक हो रहा है । मिथक के प्रयोग से साहित्य को सार्थक और सम्प्रेषणीय बनाया गया । नई कविता के दौर में मिथकों का प्रयोग ज्यादातर काव्य-नाटकों में किया गया । धर्मवीर भारती का 'अँधा युग', कुँवर नारायण का 'आत्मजयी' आदि इस युग के ख्यातिप्राप्त काव्य-नाटक है । कविताओं में भी भाव को सार्थक बनाने के लिए मिथकों का उपयोग किया गया ।

कवि दुष्यंत कुमार ने कई मिथकों को अपने शिल्प में समाविष्ट किया है । उनका 'एक कंठ विषपायी' गीतिनाट्य एक मिथकीय रचना है । उन्होंने अपनी कई कविताओं में मिथकीय चरित्रों के माध्यम से अपनी जीवन-दृष्टि को अभिव्यक्त किया है । 'एक कंठ विषपायी' गीतिनाट्य में जहाँ वे शिव और सती जैसे मिथकीय चरित्रों के माध्यम से समकालीन यथार्थ को अभिव्यंजित करते हैं । वहीं उनकी कविताओं में ज्यादातर मिथक महाभारत से आये हैं । अपनी कविताओं में वे भीम, अर्जुन, कुंती, कृष्ण, अभिमन्यु आदि मिथकीय चरित्रों के माध्यम से समसामयिक यथार्थ और अपनी जीवन-दृष्टि को व्यक्त करते हैं । कुंती जैसे मिथकीय चरित्र के द्वारा वे सृजन की कष्टदायक पीड़ा का हृदयस्पर्शी अंकन करते हैं –

‘‘ मेरी कुंठा
रेशम के कीड़ों-सी
ताने-बाने बुनती,
तड़फ-तड़फकर
बाहर आने को सिर धुनती,
स्वर से
शब्दों से
भावों से
औ’ वीणा से कहती-सुनती,
गर्भवती है
मेरी कुंठा-क्वारी कुंती ! ’’[79]

दुष्यंत कुमार ने मिथकों के द्वारा सामाजिक जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्त किया है । उनके मिथक उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता का प्रमाण देते हैं। ‘दिग्विजय का अश्व’ शीर्षक कविता में वे मिथकों के माध्यम से बंधनहीनता के महत्व और जरूरतों पर विचार करते हुए, उसे व्यक्ति के सही विकास के लिए जरूरी मानते हैं –

‘‘ अस्तबल में बँधा यह निर्वाक प्राणी !
उस ‘चमेली’ गाय के बछड़े सरीखा

आज बंधनहीन होकर

यहाँ कितना रम गया है !

यह कि जैसे यहीं जन्मा हो, पला हो ।

आज है कटिबद्ध हम सब

फावड़े लाठी सँभाले ।

कृष्ण, अर्जुन इधर आएँ

हम उन्हें आने न देंगे ।

अश्व ले जाने न देंगे ।''[80]

महाभारत के युद्ध के समय कृष्ण ने अर्जुन को मोह रूपी दुर्बलता का त्याग कर कर्तव्य-पथ पर चलने की प्रेरणा दी थी, जिसके परिणामस्वरूप असत्य के ऊपर सत्य की विजय हुई । 'कवि-धर्म ' कविता में दुष्यंत कुमार कृष्ण और अर्जुन के मिथकीय चरित्र द्वारा कवियों को उनका सृजन–धर्म बतलाते हैं । उन्हें समाज में रह रहे दुर्योधन और घृतराष्ट्र की मोहासक्ति से मुक्त होकर सत्य का पक्ष लेने के लिए उत्प्रेरित करते हैं । हमारे समाज में कई ऐसे भाई-बंधु है जो शोषक बने हुए हैं, हमारा हक छिनकर हमें नारकीय जीवन जीने के लिए छोड़ देते हैं । कवि लिखते हैं –

'' पार्थ हूँ न चाहे मैं

किंतु महाभारत-सा युद्ध सामने है

कृष्ण हो न चाहे तुम
किंतु तुम्हें अश्वों की डोर थामनी है
..... देर मत करो अब, हाँ
चंचल इन अश्वों को काबू में कर लो
और रथ बढ़ाओ ।''[81]

महाभारत के युद्ध को सामने रखकर कवि समसामायिक अराजकता को चित्रित करते हैं । इस कविता में मिथक के सहारे आधुनिक युग के ज्वलंत प्रश्नों यथा- भूख, अभाव, घुटन, बेबसी, निराशा आदि पर प्रकाश डाला गया है । कालियादह जैसी पौराणिक घटना को आधार बनाकर कवि ने 'सत्यान्वेषी 'शीर्षक कविता में सत्यान्वेषण की प्रबल लालसा को कृष्ण के मिथक द्वारा प्रकट किया है –

'' सुनो, कृष्ण हूँ मैं,
भूल से साथियों ने
इधर फेंक दी थी जो गेंद,
उसे लेने आया हूँ
(आया था
आऊँगा)
लेकर ही जाऊँगा ! ''[82]

अंतत: मिथकों के माध्यम से कवि ने समसामयिक जीवन यथार्थ को

व्यापक रूप में चित्रित किया है । मिथकों को आधुनिक जीवन-सन्दर्भो के साथ जोड़कर युग के ज्वलंत प्रश्नों पर चिंतन-मनन किया गया है । उनकी कविताओं के चरित्रों के नाम कृष्ण, कुंती, अभिमन्यु, अर्जुन भले ही हो, किंतु वे जो प्रतिपादित करते हैं, वह वर्तमान चिंतन की अभिव्यक्ति है । मिथकों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक जीवन की आशा-आकांक्षा, हास-रूदन, संघर्ष, कुंठा आदि को चित्रित किया है । उनके मिथकों में युगीन बोध और समयानुकूल सन्देश निहित है ।

निष्कर्षत: दुष्यंत कुमार का काव्य-शिल्प उनके भाव और सन्दर्भो के अनुकूल प्रयुक्त हुआ है । उनके काव्य-शिल्प को देखकर लगता है कि जिनके साथ उनका आत्मीय संबंध है, वे उनसे उसी आत्मीय भाषा में बात करते हैं और जिनके प्रति उनमें तीव्र आक्रोश है, उनकी आलोचना अत्यंत तीखे तेवर के साथ करते हैं । उनके शिल्प-विधान में कहीं भी बनावटीपन नहीं दिखता । उनके शिल्प उनकी गहनानुभूति को सहजाभिव्यक्ति देते है । उनके काव्य-शिल्प में जहाँ एक ओर आम-आदमी को अपना अक्स नजर आता है, आत्मीयता दिखलाई देती है, वही दूसरी ओर जनविरोधी शक्तियों को उसमें अपना घिनौना यथार्थ नजर आता है । उनका काव्य-शिल्प कहीं भी युगीन बौद्धिकता से ग्रस्त नहीं दिखाई पड़ता । युगीन सन्दर्भो को चित्रित करने में उनका काव्य-शिल्प पूरी तरह से समर्थ है । दुष्यंत कुमार ने अपनी अभिव्यक्ति को गीत शैली से परिर्वितित कर गज़ल में व्यक्त किया । इसकी वजह शिल्प के प्रति युगानुकूल अतिशय आग्रह नहीं था अपितु

उसके पीछे अपने समयगत सच्चाई को पूरी ईमानदारी से प्रकटकर जन विरोधी ताकतों के हौंसले को पस्त करना था ताकि जनतंत्र में जन–सापेक्ष परिवेश और परिस्थिति की निर्मिति हो । उनके कथ्य के अनुकूल उनके शिल्प भी सामाजिक यथार्थ को समूचे रूप से उजागर करते हैं ।

सन्दर्भ-सूची

1. सं.– अरूण कमल, आलोचना त्रैमासिक सहस्त्राब्दी अंक 43,नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 57

2. उद्धृत, जैन प्रेमलता, समाजवादी यथार्थवाद और हिन्दी कथा साहित्य, शब्दसृष्टि, दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या – 161

3. श्रीवास्तव एकांत, कविता का आत्मपक्ष, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2010 ,पृष्ठ संख्या – 25

4. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 4, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 430

5. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 238

6. सं.– इंद्रनाथ मदान, निराला, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या –124

7. सिंह नामवर, कविता की जमीन और जमीन की कविता, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, पहली आवृत्ति, 2011, पृष्ठ संख्या – 107

8. श्रीवास्तव एकांत, कविता का आत्मपक्ष, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या – 24

9. सं.– विजय बहादुर सिंह , दुष्यंत रचनावली भाग– 1 , किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 370

10. सं.– विजय बहादुर सिंह , दुष्यंत रचनावली भाग– 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 288

11. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 344

12. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 237

13. वही , पृष्ठ संख्या – 13

14. वही , पृष्ठ संख्या – 239

15. सं.– विजय कुमार देव, अक्षरा अंक – 90, भोपाल , जुलाई–अगस्त 2007, पृष्ठ संख्या – 45

16. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2007 , पृष्ठ संख्या – 159

17. वही, पृष्ठ संख्या – 228

18. वही, पृष्ठ संख्या – 261

19. वही, पृष्ठ संख्या – 239

20.रोहिताश्व, काव्य-सृजन और शिल्प-विधान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या –206

21. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन,

नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 159

22. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली , द्वितीय संस्करण 2007 , पृष्ठ संख्या – 124

23. वही, पृष्ठ संख्या – 125

24. उद्धृत तिवारी रामचंद्र, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, दूसरा संस्करण, 2012, पृष्ठ संख्या – 172

25. पंत कांता, पंत की काव्य भाषा शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, पृष्ठ संख्या – 103

26. श्रीवास्तव एकांत, कविता का आत्मपक्ष, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2010, पृष्ठ संख्या – 23

27. उद्धृत गुप्त उमाकांत, नयी कविता के प्रबंध काव्य शिल्प और जीवन दर्शन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2000, पृष्ठ संख्या –213

28. उद्धृत गुप्त उमाकांत, नयी कविता के प्रबंध काव्य शिल्प और जीवन दर्शन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2000, पृष्ठ संख्या –213

29. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 381

30. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन,

नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 192

31. वही, पृष्ठ संख्या – 261

32. वही, पृष्ठ संख्या – 267

33. वही, पृष्ठ संख्या – 283

34. वही, पृष्ठ संख्या – 281

35. वही, पृष्ठ संख्या – 263

36. वही, पृष्ठ संख्या – 263

37. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन , नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 335

38. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 285

39. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन , नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 346

40. वही, पृष्ठ संख्या – 416

41. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 148

42. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 368

43. वही, पृष्ठ संख्या – 347

44. वही, पृष्ठ संख्या – 347

45. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 244

46. वही, पृष्ठ संख्या – 244

47. वही, पृष्ठ संख्या – 269

48. सं.– डॉ नगेंद्र, भारतीय साहित्य कोश, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1981, पृष्ठ संख्या – 751

49. तिवारी रामचंद्र, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, दूसरा संस्करण, 2012, पृष्ठ संख्या – 169

50. सं.– विजय बहादुर सिंह, यारों के यार दुष्यंत कुमार, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 136

51. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 380

52. वही, पृष्ठ संख्या – 335

53. वही, पृष्ठ संख्या – 382

54. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 261

55. वही, पृष्ठ संख्या – 261

56. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 381

57. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 280

58. वही, पृष्ठ संख्या – 288

59. शुक्ल रामचंद्र, चिंतामणि भाग –1, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सं . 2058 वि., पृष्ठ संख्या – 100

60. पंत सुमित्रानन्दन, पल्लव, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, सातवाँ संस्करण, 1963, पृष्ठ संख्या – 32

61. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 120

62. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 272

63. वही, पृष्ठ संख्या – 290

64. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 295

65. वही, पृष्ठ संख्या – 247

66. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन , नई दिल्ली , द्वितीय संस्करण 2007 , पृष्ठ संख्या – 267

67. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 299

68. वही, पृष्ठ संख्या – 381

69. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग– 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 287

70. वही, पृष्ठ संख्या – 177

71. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 261

72. वही, पृष्ठ संख्या – 270

73. वही, पृष्ठ संख्या –126

74. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 385

75. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 196

76. वही, पृष्ठ संख्या – 227

77. तिवारी रामचंद्र, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना,

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, दूसरा संस्करण, 2012, पृष्ठ संख्या – 190

78. राय मृगेंद्र, हिन्दी काव्य–नाटक और युगबोध, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ संख्या – 135

79.सं. – विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 335

80. वही, पृष्ठ संख्या – 346

81. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 2, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 147

82. सं.– विजय बहादुर सिंह, दुष्यंत रचनावली भाग – 1, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007, पृष्ठ संख्या – 380

उपसंहार

एक विचारधारा के तौर पर सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम पाश्चात्य साहित्य में हुई । 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में समाज में कई परिवर्तन घटित हुए । पूँजीवादी समाज-व्यवस्था का उदय हुआ । कई नये वैज्ञानिक आविष्कार सामने आये । फोटोग्राफी और मुद्रण कला का आविष्कार हुआ । संचार के क्षेत्र में भी क्रांति आई । औद्योगीकरण और शहरीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो गई । फलस्वरूप सामाजिक व्यवस्था में विराट् बदलाव परिलक्षित होने लगा । इन परिवर्तनों के साथ सामाजिक और नैतिक मूल्य भी परिवर्तित होने लगे । इन सबका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ा । जन प्रतिबद्ध कवियों ने युगीन परिप्रेक्ष्य को देखते हुए अपनी कविताओं में समकालीन वास्तविकता को उजागर करना शुरू किया । इस तरह 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में साहित्य में सामाजिक यथार्थ एक विशेष दृष्टि बनकर उभरा ।

सामाजिक यथार्थ का सामान्य आशय है – समाज की वास्तविकता को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना । किसी भी वस्तु को ज्यों का त्यों केवल फोटोग्राफी के माध्यम से उतारा जा सकता । कविता में कुछ भी ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है । कविता अनुभूतियों की गहनता से सृजित होती है । कविता में कवि की निजी संवेदना और विचार निहित रहते हैं । यही कारण है कि कवि फोटोग्राफर की तरह देखे हुए को ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं कर सकता । कविता का मूल लक्ष्य 'सर्वजन सुखाय और बहुजन हिताय' है । इसीलिए समाज

की वास्तविकता को चित्रित करते हुए कवि उसके समाज-सापेक्ष प्रभाव के प्रति सजग रहता है । अत: यही कहा जा सकता है कि सामाजिक यथार्थ समाज की वास्तविकता का समाज-सापेक्ष अंकन है । सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत कवि समाज के बहुआयामी पक्ष को जन-सापेक्ष दृष्टि के साथ चित्रित करता है ।

सामान्य तौर पर हिन्दी कविता में सामाजिक यथार्थ अंकन भक्तिकाल से ही परिलक्षित होता है । कई भक्तिकालीन कवियों यथा सूर, तुलसी, कबीर आदि की कविताओं में समसामयिक जीवन की वास्तविकता व्यापक स्तर पर चित्रित हुई है । इन्होंने अपने समय के सच को जन सापेक्ष दृष्टि से उजागर किया है । एक विशेष जीवन-दृष्टि के तौर पर सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति सर्वप्रथम प्रगतिशील कविता में हुई है । प्रगतिशील कवि पाश्चात्य विचारक गोर्की और मार्क्स के जनोन्मुखी विचारधारा से अत्यंत प्रभावित थे । समाजवादी विचारधारा के प्रभावस्वरूप कई प्रगतिशील कवियों ने समाज के वास्तविक अंकन को अपनी सृजनशीलता का आधार बनाया और कविता को समाज के उपेक्षित, अवहेलित, शोषित वर्ग के पक्ष में खड़ा किया । उन्होंने तत्कालीन समाज की विकृतियों, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और दैहिक शोषण को उजागर किया । सामाजिक यथार्थवादी कवियों ने सामान्यजन के प्रति अपने कवि-कर्म की प्रतिबद्धता को जाहिर किया और उन्हें उनके मूलभूत अधिकारों से वंचित कर, नारकीय जीवन जीने को विवश करनेवाले समाज के तथाकथित प्रतिनिधियों की

भर्त्सना की । आरम्भ में अधिकांशत: आर्थिक आधार पर समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं विद्रूपताओं पर कवियों ने लेखनी चलाई पर परवर्ती समय में भारत की आजादी के साथ समाज में कई तरह के परिवर्तन घटित हुए, उसके साथ ही समाज का बहुआयामी यथार्थ चित्रित होने लगा । भारत देश की आजादी के साथ ही शोषण, स्वार्थपरता, नैतिक अवमूल्यन को बढ़ावा मिला । लोकतंत्र की स्थापना कर, लोक के साथ जो अमानवीय व्यवहार किया गया, उससे समाज में असंतोष का विस्तार हुआ । चतुर्दिक मूल्यों का क्षरण दिखाई पड़ने लगा । सामाजिक यथार्थ को अपना साध्य मानने वाले कवियों ने निर्भीक होकर समाज-व्यवस्था की अमानवीयता को परत-दर-परत उघाड़ा और समाज से असमानता, विसंगति आदि मिटाने के लिए प्रतिबद्ध हुए ।

दुष्यंत कुमार नई कविता के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं । नई कविता में व्यक्ति प्रमुख और समाज गौण है । समाज की महत्ता वहाँ व्यक्ति के सन्दर्भ में है । व्यक्ति की वैयक्तिकता की रक्षा करते हुए समाज को स्थान दिया गया । किंतु दुष्यंत कुमार की रचनाओं से गुजरते हुए ऐसा लगता है कि वे व्यष्टि सत्य की अपेक्षा समष्टि सत्य को अधिक महत्व देते हैं । उनकी कविताओं में व्यक्ति से अधिक महत्वपूर्ण समाज है । कवि ने अपनी सृजनशीलता को सामाजिक सरोकार से जोड़कर साम्प्रतिक समाज के यथार्थ अंकन को अपना साध्य बनाया । व्यक्तिगत कुंठा और हताशा के स्थान पर कवि ने सामान्यजन की पीड़ा, अभाव, उत्तेजना

और दबाव को चित्रित करने में अपने सृजन-कर्म की सार्थकता मानी है । उनकी कविताओं में सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति वृहत्तर स्तर पर हुई है । साम्प्रतिक राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक सच्चाई दुष्यंत कुमार की लेखनी से प्रत्यक्ष हो उठी है । अपनी कविताओं में सामान्यजन की दुर्दशा, आजादी की उपयोगिता, लोकतंत्र की सार्थकता, मूल्यों के क्षरण, अभाव, बेरोजगारी, नारी-शोषण आदि को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है । उनकी कविताएँ इस बात का साक्ष्य रही हैं कि सामान्यजन की पीड़ा, अभाव और घुटन को उन्होंने शिद्दत से महसूस किया है, उनकी अंतहीन व्यथा से भीतर तक व्यथित हुए हैं । दुष्यंत कुमार का समस्त काव्य-संसार समाज की विसंगति और विद्रूपताओं को व्यापक स्तर पर उद्घाटित करता है । अपने आप को समाज के करोड़ों लोगों के साथ सम्बद्ध करनेवाले कवि ने अपनी कविता को सामान्यजन के पक्ष में खड़ा कर, उन्हें पीड़ा से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया है । अपनी रचनाओं में सामान्यजन के जीवन सन्दर्भ, उनके संघर्ष, उनकी आशा-आकांक्षाओं को शब्दबद्ध किया ।

किशोर जीवन से सृजन-कर्म का आरम्भ करनेवाले कवि दुष्यंत कुमार के काव्य-संसार में आरम्भ से ही समाज का वीभत्स यथार्थ वर्णित हुआ है । दुष्यंत कुमार की आरम्भिक कविताओं में अधिकतर प्रेम और सौंदर्य की कविताएँ हैं । इन कविताओं में रोमानी आवेग की तीव्रता है । उनकी आरम्भिक कविताओं के अवलोकन से यह बात सामने आई कि एक तरफ कवि जहाँ प्रेम

जीवन के आरोह–अवरोह से आन्दोलित होते हैं, वहीं दूसरी तरफ एक प्रतिबद्ध रचनाकार की तरह युगीन यथार्थ को भी पकड़ते हैं । सामाजिक यथार्थ उनकी आरम्भिक कविताओं से ही परिलक्षित होता है । जीवन के आरम्भिक काल से ही समाज के शोषक चरित्र को देखकर कवि क्षुब्ध होते हैं । उपेक्षित तथा अवहेलित सामान्यजन के प्रति उनमें गहन उत्तरदायित्व बोध दिखाई देता है । उनकी चेतना में आमजन को नारकीय पीड़ा से निजात दिलाने की चिंता समाहित है । उनकी कविताओं के समग्र अध्ययन से यही लगता है कि सृजन के आरम्भिक दौर से ही उन्होंने अपनी लेखनी को सामान्यजन के प्रति समर्पित कर दिया है । उनके तीनों काव्य–संग्रहों 'सूर्य का स्वागत', 'आवाजों के घेरे ', और 'जलते हुए वन का वसंत' के अलावा गज़ल संग्रह 'साये में धूप' एवं कई अधूरी और असंकलित कविताओं में सामाजिक यथार्थ के विविध पहलूओं का अंकन व्यापक स्तर पर हुआ है ।

आजादी के बाद के राजनीतिक यथार्थ को उभारने में दुष्यंत कुमार की कविताएँ पूरी तरह से समर्थ हुई हैं । उनकी अधिकांश कविताएँ राजनीतिक छद्मता, राजनेताओं की चालबाजियाँ, उनके दोहरे व्यक्तित्व, भाई-भतीजावाद, स्वार्थपरता, अवसरवादिता, चुनावी पर्व की नाटकीयता, वोट बैंक के प्रति झूठी आत्मीयता और संवेदनशीलता, राजनेताओं के खोखले वादे और उनके षड्यंत्र को अनावृत्त करती हैं । देश की बागडोर सम्भालने वाले स्वार्थी नेताओं के कुत्सित

चरित्र का अनावरण कर, कवि ने सामान्यजन को उनके मूल अधिकारों के प्रति सचेत किया । संसद, संविधान और लोकतंत्र की खामियों को कवि ने वृहत्तर स्तर पर उद्घाटित किया है । 1975 में लगाये गये आपातकाल पर कवि की प्रतिक्रिया देखते ही बनती है । कवि ने जिस तरह बेलाग और बेखौफ होकर आपातकालीन तानाशाही की विसंगतियों पर लिखा, वह उन्हें पाठकों के बेहद करीब ले आया । उनके गज़ल संग्रह 'साये में धूप' में राजनीतिक यथार्थ के विविध रूप चित्रित हैं । उनकी कई गजलें आपातकालीन तानाशाही की धज्जियाँ उड़ाने के कारण बहुत प्रसिद्ध रहीं ।

दुष्यंत कुमार की कविताएँ समकालीन पूँजीवादी समाजवाद की सच्चाई को पूरी ईमानदारी से प्रकट करती है । कवि ने बेखौफ, बेलौस होकर शोषक वर्ग के चरित्र को अनावृत्त किया है । पूँजीवादी समाजवाद के घिनौने रूप को कवि ने अपनी कई कविताओं के माध्यम से दर्शाया है । पूँजीवादी समाजवाद ने समाज में एक ऐसी सभ्यता और संस्कृति को विस्तार दिया जिससे सामाजिकता हाशिये पर आ गयी, लोकतांत्रिक मूल्य परिवर्तित हो गये और समाज में 'पर' की आड़ में 'स्व' की भावना बलवती होने लगी । अपने को जनता का सेवक घोषित करने वाले तत्कालीन नेताओं ने जनता की सेवा कम और अपनी सेवा जरूरत से ज्यादा की । सामान्यजन को उसकी मूलभूत जरूरत (रोटी, कपड़ा और घर) उपलब्ध कराने के बजाये अपनी भौतिक जरूरतों को पूरा करने में व्यस्त रहें ।

योजनाएँ फाइलों में घुटती रहीं और बेबस, लाचार सामान्यजन जिन्दगी को बचाने की जद्दोजहद में दिन–रात पिसता रहा । सामान्यजन के लिए आजादी की वास्तविकता अत्यंत भयावह थी । वे विदेशी सत्ता की गुलामी से तो आजाद हो गये थे पर आजाद होते ही अपने तथाकथित कर्णधारों के गुलाम बन गये । उन्हें झूठे आश्वासनों और आशाओं से क्रमशः पेट भरने और आराम करने की सलाह दी गयी । इतना ही नहीं संसद में मुद्दों को उछाल कर जनता को दिग्भ्रमित करने का नाटक बार-बार खेला गया । आजादी उपरांत की तल्ख सच्चाई उनकी कविताओं में बेहतर ढ़ंग से चित्रित हुई है । कवि ने अपनी रचनाशीलता को निर्दयी, असंवेदनशील सल्तनत के विरुद्ध एक हथियार के तौर पर इस्तेमाल किया और उनकी धज्जियाँ उड़ाकर रख दी ।

दुष्यंत कुमार की कविताओं में सामान्यजन की त्रासदायक अवस्था, विवशता, बेरोजगारी, अभाव सब साकार हो उठा है । उनकी गज़लों में आम आदमी की फटेहाल जिन्दगी का मार्मिक वर्णन मिलता है । संविधान में सर्वोच्च स्थान पर विराजमान आम आदमी की वास्तविकता यही है कि वह पेट को कमीज के अभाव में पैरों से ढँक रहा है और अन्न के अभाव में अपने होंठ चबा रहा है । आजादी के बाद के हिन्दुस्तान की जो तस्वीर कवि ने उकेरी है, वह लोकतांत्रिक संविधान की व्यर्थता को जाहिर करती है । जब तथाकथित रक्षकों के राज्य में आजाद हिन्दुस्तान खुद चिथड़ों में अपने अस्तित्व को बचाने को बाध्य हो रहा हो,

तब वहाँ रहनेवाले सामान्यजन की दुर्दशा को सहज ही समझा जा सकता है । लोकतांत्रिक संविधान पूँजी द्वारा परिचालित होने की वजह से अपने मूल सरोकारों से दूर हो गयी । आजाद भारत की जो तस्वीर आजादी पूर्व खींची गई, वह भारत के आजाद होने के साथ ही विकृत हो गई । उनकी कविताओं में आजाद भारत की विडम्बना का प्रत्येक पहलू दृष्टिगत है । कवि ने तीखे तेवर के साथ लोकतंत्रीय संविधान की निरर्थकता को व्यंजित किया है । 'जलते हुए वन का वसंत' की अधिकांश कविताएँ राजनीति और राजनेताओं के छदम चरित्र को अनावृत्त करती है । इस संग्रह के आमुख में कवि पाठकीय संवाद स्थापित करते हुए अपने सृजन-सरोकारों से परिचित करवाते हैं । कवि स्पष्टत: लिखते हैं कि उनके कवि की प्रतिबद्धता किसी पार्टी या संगठन के प्रति नहीं है, बल्कि उस आमजन के प्रति है, जो इस अमानवीय व्यवस्था की शिकार है और संविधान में सर्वोच्च हैसियत रखते हुए भी बेबस, लाचार और मूलभूत अधिकारों से वंचित है ।

उनकी समस्त कविताओं का अवलोकन करें तो वहाँ सामाजिक यथार्थ प्रमुख है । कवि ने प्रेम और सौंदर्य के जो चित्र खींचे हैं, वहाँ भी यथार्थ के प्रति तीव्र आग्रह लक्षित है । उनमें मनुष्य-मात्र के प्रति अगाध प्रेम है । अपने भीतर करोड़ों लोगों को महसूस करनेवाले कवि के हृदय में समाज के अवहेलित, उपेक्षित और उत्पीड़ित लोगों के प्रति अगाध स्नेह है कि वे किसी भी परिस्थिति में उनकी अवमानना सहन नहीं कर सकते । दुष्यंत निजी प्रेम के दु:ख से उतने व्यथित

नहीं दिखते जितने कि सामान्यजन की पीड़ा को, उनकी असहाय स्थिति को देखकर होते हैं । सामान्यजन के प्रति उनका प्रेम सतही नहीं है, वरन् उसमें प्रतिबद्धता और दायित्वबोध निहित है । कवि दुष्यंत कुमार को अपने देश से बहुत प्रेम था । आजादी बाद अपने देश को चिथड़े में लिपटा हुआ देखकर कवि अत्यंत व्यथित होते हैं । दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में प्रेम और सौंदर्य के जो चित्र खींचे है, उसमें काल्पनिकता और भावुकता के स्थान पर वास्तविकता ही दिखाई पड़ती है । सौंदर्यांकन में उनकी दृष्टि स्त्री सौंदर्य तक ही सीमित नहीं है, वरन् उसका विस्तार प्रकृति और श्रम सौंदर्य तक हुआ है । प्रगतिशील कवि नागार्जुन की तरह उन्हें श्रम से उद्भूत अनाभिजात्यवादी सौंदर्य सुहाता है । उन्होंने खुद को जर्जर जनता का उद्घोषक कहा है । यह जर्जरता कठोर श्रम से उद्भूत है और समाज के विपन्न किसान-मजदूरों में विद्यमान है । उनकी कविताओं में सामान्यजन को विशिष्ट स्थान मिला है, विशेष महत्ता मिली है ।

दुष्यंत कुमार की कविताओं में प्रत्येक स्तर पर सामाजिक यथार्थ के प्रति आग्रह दृष्टिगोचर होता है । इन्होंने अपनी कविताओं में कई राजनीतिक और साहित्यिक व्यक्तित्व पर अपनी कविता रूपी श्रद्धा-सुमन अर्पित किए हैं । नेताजी सुभाषचंद्र बोस और राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी भारतीय इतिहास के वे महान व्यक्तित्व हैं, जिन्होंने अपना सर्वस्व सामान्यजन को एक बेहतर जीवन देने की लड़ाई में समर्पित कर दिया । भारत देश को अंग्रेजो से मुक्त कराना ही इनका एकमात्र

उद्देश्य नहीं था, वे सामान्यजन को अभाव, गरीबी और शोषण से भी मुक्त कराना चाहते थे । कवि दुष्यंत कुमार गाँधीजी के बिना भारतदेश के विकास को अधूरा मानते हैं । इसी तरह गोस्वामी तुलसीदास निर्विवाद रूप से हिन्दी साहित्य के ऐसे सर्जक हैं, जिन्होंने अपने साहित्य में हाशिये पर पड़े हुए विपन्न, उपेक्षित और अवहेलित सामान्यजन को साहित्य में मुख्य स्थान दिया । महाप्राण निराला ने अपनी कई कविताओं में पूँजीवादी व्यवस्था से आक्रांत सामान्यजन के दर्द को स्वरबद्ध किया है । सामान्यजन के साथ इन व्यक्तित्वों का गहरा सरोकार देखकर कवि दुष्यंत इन व्यक्तित्वों के प्रति नतमस्तक हो जाते हैं । उनकी कविताओं से गुजरते हुए यह बोध होता है कि वे कवि कर्म के प्रति बेहद गंभीर थे । उन्होंने पुरस्कार पाने या साहित्यिक जमात में प्रसिद्धि पाने के लिए काव्य-सर्जना नहीं की। कवि शोषणमूलक समाज व्यवस्था से खिन्न थे । सामान्यजन की दुर्दशा, उपेक्षा, अवहेलना से व्यथित थे । वे सामाजिक बदलाव की आकांक्षा में लिखते हैं । तेल से भींगी हुई बाती के जलने की उम्म्मीद में लिखते हैं । सामान्यजन के प्रति उनके हृदय में जो अगाध स्नेह, करूणा और प्रतिबद्धता व्याप्त है, वही उन्हें अभिव्यक्ति के लिए उत्प्रेरित करता है ।

दुष्यंत कुमार का शिल्प भी सामाजिक यथार्थ को दर्शाता है । कवि ने नई कविता की छद्मता, अतिशय बौद्धिकता और कलात्मक चमत्कारिता को दरकिनार करते हुए अपनी अभिव्यक्ति को सहज और संप्रेषणीय बनाया है । उन्होंने

उस शिल्प में अपने कथ्य को प्रकाशित किया, जिसे सामान्यजन सहजता से समझ सके । नई कविता अपने नवीन शिल्पगत प्रयोग और अतिशय बौद्धिकता के कारण आमजन से दूर हो गयी थी, दुष्यंत कुमार ने अपने शिल्प के माध्यम से उस दूरी को मिटा दिया । उनकी कविताओं की भाषा सहज है । वह आडंबरहीन और आमजन को समझ आने वाली भाषा है । उनकी भाषा कथ्यानुसार है । कवि जब आक्रोश व्यक्त करते हैं, तब उनकी भाषा व्यंग्यात्मक हो जाती है ।

कवि ने सामाजिक अव्यवस्था और राजनीतिक निरंकुशता का प्रतिवाद करने के लिए व्यंग्य का सहारा लिया है । व्यंग्य सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने में सबसे अधिक समर्थ है । व्यंग्य दुष्यंत कुमार की रचनात्मक शक्ति है । व्यंग्यात्मकता की वजह से ही उनकी कविताएँ सामाजिक यथार्थ के गहरे स्तर तक पहुँच पाई है । अपने युग के राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक हालातों पर कवि ने व्यंग्य के द्वारा करारा प्रहार किया है । विसंगति और विद्रूपताओं के साक्षात्कार से उपजा दुष्यंत कुमार का व्यंग्य पैना, तीखा, धारदार और चुभन पैदा करने वाला है । साथ ही साथ अपने समय के यथार्थ को निर्ममता से उघाड़ने में पूरी तरह सक्षम भी है । उनके व्यंग्य की यही विशेषता उन्हें कबीर, निराला और नागार्जुन की परम्परा का कवि बनाता है ।

दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में मिथकों का प्रयोग किया है । युग जीवन की जटिलता और आधुनिकता को अभिव्यक्त करने में मिथकों की

भूमिका अहम् रही है । मिथकों का सार्थक प्रयोग कर कवि ने अपने समय के कई ज्वलंत विषयों को उठाया है । मिथकों के प्रयोग से कवि युगीन राजनीतिक-यथार्थ को बहुत सुन्दर तरीके से उजागर करते हैं । उनका बिम्ब और प्रतीक विधान भी सामाजिक यथार्थ को दर्शाता है । अपने सृजन के अंतिम दौर में वे गीत शैली से पृथक गज़ल शैली को अपनाते हैं । रूमानियत को अभिव्यक्त करनेवाली गज़ल शैली में वे जिस स्वाभाविकता और सहजता के साथ सामाजिक यथार्थ को अभिव्यंजित करते हैं, वह उनकी कलात्मक कुशलता का परिचायक है । गज़ल शैली के माध्यम से कवि ने तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दुर्दशा का आमजन के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया है । गज़ल शैली को सामाजिक यथार्थ के साथ जोड़कर कवि ने गज़ल शैली के नये और सार्थक आयाम को दर्शाया है । उनकी गज़लें सामाजिक यथार्थ को वृहत्तर स्तर पर आलोचनात्मक दृष्टि से उद्घाटित करती है । कवि ने अपने शिल्प में ऐसे बिम्ब और प्रतीकों का प्रयोग किया है, जिसके माध्यम से सामाजिक यथार्थ व्यापकता से उजागर होता है ।

दुष्यंत मानवीय चेतना सम्पन्न कवि हैं । वे नई कविता दौर के कवि होने के बावजूद अपने कतिपय समकालीन कवियों से सर्वथा भिन्न हैं । नई कविता की पहचान जैसे अनास्था, निराशा, कुंठा, वैयक्तिकता आदि उनकी कविता की पहचान नहीं है । जिस तरह उनका व्यक्तित्व आस्थावादी था, उसी तरह उनकी कविताएँ भी आस्थावादी हैं । भले ही समकालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक

और साहित्यिक परिवेश जन-प्रतिबद्ध कवि दुष्यंत कुमार के मनोनुकूल नहीं रहा तथापि कवि ने अपने व्यक्तित्व और साहित्य में निराशा, अनास्था और वैयक्तिकता को स्थायी स्थान नहीं दिया । वे संघर्ष को जीवन का आधार मानते हैं । संघर्ष व्यक्ति के आंतरिक शक्तियों को जागृत करता है । उसमें वर्तमान विरोधी परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने का साहस जगाता है । दुष्यंत कुमार की कविताओं में वर्तमान विसंगतिपूर्ण व्यवस्था के प्रति आक्रोश और विद्रोह भी है और व्यवस्था में परिवर्तन की आशा भी ।

उनके काव्य-संसार में प्रवेश करने के पश्चात्, जैसे-जैसे उनकी कविताओं से परिचय बढ़ता गया, यह बात सामने आयी कि उन्होंने कुछ विषयों जैसे नारी जीवन की त्रासदी, बेरोजगारी आदि पर गिनती में कम कविताएँ लिखी हैं, परंतु उनका प्रभाव अक्षुण्ण है । वस्तुत: दुष्यंत कुमार की कविताओं को संख्या से नहीं आँका जा सकता । कुछेक विषयों पर कवि ने भले ही कम लिखा हो, बावजूद इसके वे यथार्थ को गहराई तक उजागर करने में समर्थ हुए हैं ।

निष्कर्षत: दुष्यंत कुमार की समग्र कविताओं का अध्ययन करने के उपरांत यही कहा जा सकता है कि दुष्यंत कुमार की कविताएँ स्वातंत्र्योत्तर समाज की सही–सही तस्वीर दिखाती हैं । उनकी कविताओं में सत्ता वर्ग की निरंकुशता, तानाशाही, चालबाजियाँ सब प्रत्यक्ष हो गई है । अपने समकालीन समाज के यथार्थ को जितनी ईमानदारी से दुष्यंत कुमार ने चित्रित किया है, वह उनके जैसे जनकवि

के लिए स्वाभाविक ही था । जब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन आपातकालीन समय में हुआ, तब 'साये में धूप' लिखकर कवि ने यह जता दिया कि लोकतंत्र में अभिव्यक्ति के अधिकार को कितनी भी दबाने की कोशिश की जाए, वह दब नहीं सकती । उनकी कविताएँ सामाजिक यथार्थ को बेपर्द करने में पूरी तरह से समर्थ रही हैं । वर्तमान समाज में विसंगतियाँ खत्म नहीं हुई हैं बल्कि नित नये रूप में सामने आ रही हैं, आज भी सामान्यजन के समक्ष अपनी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने की जद्दोजहद है । लोकतंत्र और संसद का तमाशा आज भी बदस्तूर जारी है । उपभोक्तावादी संस्कृति की गिरफ्त में हमारा समाज दिशाहीन होकर भटक रहा है । ग्रामीण जीवन की सौंधी खुशबू आधुनिकीकरण की आँधी में गुम हो गयी है । ऐसे विषमतापूर्ण समय में दुष्यंत कुमार की कविताएँ आकाशदीप बनकर राह दिखाती हैं । अपने अधिकारों को प्राप्त करने का हौंसला जगाती हैं । अन्यायी व्यवस्था के प्रति विद्रोह का बिगुल बजाने के लिए प्रेरित करती हैं । यही वजह है कि वे आज भी बेहद जनप्रिय हैं । उनकी कविताएँ आशा जगाती है कि आज न कल एक बेहतर समाज का निर्माण अवश्य होगा । समाज में जो अराजकता, अव्यवस्था विद्यमान है, वह एक न एक दिन जरूर खत्म होगा । बस जरूरत है, निरंकुश व्यवस्था के समक्ष समर्पण करने के बजाए अपने हृदय में सुलग रही विद्रोह की आग को जलाये रखने की ।

परिशिष्ट

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ-सूची

क्रम–संख्या	पुस्तक का नाम	रचनाकार/संपादक	प्रकाशक	संस्करण/वर्ष
1.	दुष्यंत रचनावली भाग – 1	सं.– विजय बहादुर सिंह	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली	द्वितीय संस्करण, 2007
2.	दुष्यंत रचनावली भाग-2	सं.– विजय बहादुर सिंह	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली	द्वितीय संस्करण, 2007
3.	दुष्यंत रचनावली भाग – 4	सं.– विजय बहादुर सिंह	किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली	द्वितीय संस्करण, 2007

सहायक ग्रंथ-सूची

क्रम–संख्या	पुस्तक का नाम	रचनाकार/संपादक	प्रकाशक	संस्करण/वर्ष
1.	अन्न हैं मेरे शब्द	एकांत श्रीवास्तव	आधार प्रकाशन, हरियाणा	1994

2.	आधुनिक कवि: निराला	सं.– डॉ. रघुवंश	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	1999
3.	आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द	बच्चन सिंह,	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	संशोधित संस्करण, 2010
4.	आधुनिक हिन्दी कविता में वैचारिक पक्ष	रतन कुमार	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	प्रथम संस्करण, 2000
5.	आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द	सत्यकाम	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 1994
6.	आस्था और सौंदर्य	रामविलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली	पहली आवृत्ति, 2002
7.	इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य : समय, समाज और संवेदना	सं.–रवींद्रनाथ मिश्र	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	प्रथम संस्करण, 2011

8.	इतिहास और आलोचना	नामवर सिंह	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,नई दिल्ली	तीसरी आवृत्ति, 2006
9.	एक आवाज : सबसे अलग दुष्यंत की रचनाशीलता,	धनंजय वर्मा	प्रस्तुति प्रकाशन, मध्यप्रदेश	प्रथम संस्करण, 2008
10.	कबीर	हजारीप्रसाद द्विवेदी	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,नई दिल्ली	दसवीं आवृत्ति, 2003
11.	कबीर ग्रंथावली	सं.- डॉ. श्यामसुन्दर दास	नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी	23वाँ संस्करण, संवत 2059 वि.
12.	कवि अज्ञेय: विश्लेषण और मूल्यांकन	ब्रजमोहन शर्मा	इतिहास शोध संस्थान, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2000
13.	कविता का आत्मपक्ष	एकांत श्रीवास्तव	प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली	द्वितीय संस्करण, 2010

14.	कविता की जमीन और जमीन की कविता	नामवर सिंह	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली	पहली आवृत्ति, 2011
15.	कविता की लोकधर्मिता	रमाकांत शर्मा	रॉयल पब्लिकेश, राजस्थान	2009
16.	काव्य–सृजन और शिल्प–विधान	रोहिताश्व	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	प्रथम संस्करण, 2006
17.	कुछ विचार	प्रेमचन्द	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	2008
18.	गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम	सुवास कुमार	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2010
19.	गाँधी : समय, समाज और संस्कृति	विष्णु प्रभाकर	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2003
20.	चिंतामणि भाग–1	रामचंद्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी	सं. 2058 वि.

21.	चिंतामणि भाग–3,	सं.- नामवर सिंह	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,नई दिल्ली	तृतीय आवृत्ति, 2004
22.	दुष्यंत कुमार और नयी कविता : एक अनुशीलन	बनय सिंह	साहित्यागार, जयपुर	प्रथम संस्करण, 2000
23.	दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों का समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. सरदार मुजावर	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	2003
24.	दुष्यंत कुमार : रचनाएँ और रचनाकार	गणेश तुलसी अष्टेकर	पंचशील प्रकाशन, जयपुर	1989
25.	नयी कविता के प्रबंध काव्य-शिल्प और जीवन-दर्शन	उमाकांत गुप्त	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	द्वितीय संस्करण, 2000
26.	निबंधों की दुनिया	हजारीप्रसाद द्विवेदी	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2009
27.	निराला	सं.– इंद्रनाथ मदान	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	चतुर्थ संस्करण, 2008

28.	पंत की काव्य भाषा शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण	कांता पंत	त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद	2007
29.	पल्लव	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,दिल्ली	सातवाँ संस्करण, 1963
30.	प्रतिनिधि कविताएँ रघुवीर सहाय	सं.- सुरेश शर्मा	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली	तीसरी आवृत्ति, 2010
31.	बलदेव वंशी का काव्य : सामाजिक यथार्थ	डॉ. कुलदीप कौर	अनंग प्रकाशन, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2006
32.	भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना	रामचंद्र तिवारी	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	दूसरा संस्करण, 2012
33.	भारतीय संविधान और राजनीति	डॉ. वेददान सुधीर	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2008
34.	मैं वह शंख महाशंख	अरूण कमल	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,नई दिल्ली	2012

35.	यथार्थवाद	शिवकुमार मिश्र	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2009
36.	यथार्थवाद पुनर्मूल्यांकन	डॉ. अजब सिंह	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	प्रथम संस्करण, 1998
37.	यारों के यार दुष्यंत कुमार	सं.– विजय बहादुर सिंह	यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2008
38.	शताब्दी के ढलते वर्षों में	निर्मल वर्मा	भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली	चौथा संस्करण, 2006
39.	समकालीन कविता और कुलीनतावाद	अजय तिवारी	राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 1994
40.	समाजवादी यथार्थवाद और हिन्दी कथा साहित्य	प्रेमलता जैन	शब्दसृष्टि, दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2012
41.	समय के सरोकार	सोलजी	शिल्पायन, दिल्ली	2004

42.	समांतर कहानी में यथार्थबोध	रेखा वसंत पाटिल	जवाहर पुस्तकालय, उत्तर प्रदेश	2005
43.	साहित्यिक निबंध	सं.-डॉ. त्रिभुवन सिंह, डॉ.विजय बहादुर सिंह	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	चतुर्थ संस्करण, 2008
44.	साहित्य और यथार्थ	हार्वर्ड फास्ट, अनुवादक-विजय सुषमा	अरूणोदय प्रकाशन, दिल्ली	1993
45.	स्त्री मेरे भीतर	पवन करण	राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली	प्रथम संस्करण, 2006
46.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में प्रणय-चित्रण	पद्मजा घोरपड़े	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 1998
47.	हरिशंकर परसाई : व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि	प्रो.राधेमोहन शर्मा	भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली	पहली आवृत्ति, 1999

48.	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	त्रिभुवन सिंह	हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन प्रा. लिमिटेड, वाराणसी	पंचम संस्करण, 2054 वि.
49.	हिन्दी काव्य–नाटक और युगबोध	मृगेंद्र राय	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर	प्रथम संस्करण, 2008
50.	हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार	डॉ. स्मिता चिपलूणकर	अलका प्रकाशन, कानपुर	प्रथम संस्करण, 2001
51.	हिन्दी ग़ज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर	मधु खराटे	विद्या प्रकाशन, कानपुर	प्रथम संस्करण, 1994
52.	हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई	मदालसा व्यास	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	प्रथम संस्करण, 1999
53.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचंद्र शुक्ल	नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी	1999
54.	हिन्दी साहित्यशास्त्र	सं. नन्दकिशोर नवल	वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली	2003

कोश				
क्रम–संख्या	पुस्तक का नाम	रचनाकार/संपादक	प्रकाशक	संस्करण/वर्ष
1.	भारतीय साहित्य कोश	सं.– डॉ नगेंद्र	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली	प्रथम संस्करण, 1981
2.	हिन्दी साहित्य कोश भाग – 1	सं. धीरेंद्र वर्मा	ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी	पंचम संस्करण, 2005

पत्र/पत्रिकाएँ				
क्रम–संख्या	पत्र/पत्रिकाएँ	संपादक/प्रकाशक	प्रकाशन-स्थल	अंक/वर्ष
1.	अक्षरा	सं.– विजय कुमार देव	भोपाल	अंक–90, जुलाई–अगस्त 2007
2.	आलोचना	सं.-अरूण कमल	नयी दिल्ली	सहस्त्राब्दी अंक-38
3.	आलोचना	सं.-अरूण कमल	नयी दिल्ली	सहस्त्राब्दी अंक-43

4.	पहल	सं.- ज्ञानरंजन	जबलपुर	अंक-86
5.	प्रभात खबर(हिन्दी दैनिक)		सिलीगुड़ी	20 मई 2012
6.	वर्तमान साहित्य	सं. : कुँवरपाल सिंह और नमिता सिंह	अलीगढ़	दिसम्बर 2008
7.	वागर्थ	सं. – विजय बहादुर सिंह	कोलकाता	अंक – 163/ फरवरी 2009
8.	व्यंग्य वार्ता	सं. – प्रेम जनमेजय	नई दिल्ली	अक्टूबर–दिसम्बर 2011
वेबसाइट				
1.	https://sites.google.com/site/hindiebooks, Harishankar Parsai ki Vyangya Rachnayen			
2.	KavitaKosh.org/kk/ चिर तृषित कंठ से तृप्त विधुर/ जयशंकर प्रसाद			

संकेत-सूची

सं. – सम्पादक

डॉ. – डाक्टर

प्रा. लि. – प्राइवेट लिमिटेड

आ. – आचार्य

प्रख्यात आलोचक डॉ. धनंजय वर्मा से श्रीमती शशि शर्मा का संवाद

शशि शर्मा : आपकी दृष्टि में सामाजिक यथार्थ की परिभाषा क्या है ?

धनंजय वर्मा : सामाजिक यथार्थ की परिभाषा दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सन्दर्भो में ही हो सकती है । इस दृश्यमान जगत की इंद्रियगोचर सत्ता यथार्थ है । उसका वस्तुगत अस्तित्व है । व्यापक अर्थो में यथार्थ वह सब कुछ है, जो 'है','हुआ है', 'हो रहा है' और 'होगा' । वह समस्त चीजों की समग्रता है । वास्तविक और अवधारित संरचनाएँ,अतीत और वर्तमान की घटनाएँ और प्रतीयमान संघटनायें यथार्थ है । यह यथार्थ हमारी दृष्टि और धारणा, कल्पना और प्रतीति से स्वतंत्र है । वह हमारी संवेदना और अनुभव से भी निरपेक्ष है । हम ही उसका प्रत्यक्ष बोध और अनुभव करते हैं । जिसे हम अनुभव कहते हैं वह दरअसल अनु + भव है – याने 'भव' के अनुसार है । शंकराचार्य ने कहा था – 'ब्रह्म सत्यं, जगत्मिथ्या', लेकिन स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि यदि ब्रह्म सत्य है तो उसकी यह रचना–संसार मिथ्या कैसे हो सकता है ? इसी लिए उन्होंने कहा कि यह संसार न तो माया है, न मिथ्या है, वह तो महज तथ्य – कथन (स्टेटमेंट आव फैक्ट्स) है । सत्य का सन्दर्भ 'जो है' याने यथार्थ है और मिथ्या का सन्दर्भ 'जो नहीं है' याने अयथार्थ है । यथार्थ के विलोम हैं – काल्पनिक और भ्रामक,कल्पित और अमूर्त ।

इस यथार्थ की हमारी अवधारणा, हमारे परिदर्शन, हमारी वृत्ति, हमारे विश्वास पर निर्भर करती है । हम कहते हैं- ‘यह मेरा यथार्थ है, तुम्हारा यथार्थ नहीं’ । इसीलिए हमारा प्रत्यक्ष बोध ही यथार्थ है । वह विचार और दर्शन जो यह मानता है कि यथार्थ हमारे बोध और अनुभव, परिदर्शन और विश्वास से स्वतंत्र और निरपेक्ष है, यथार्थवाद कहलाता है । कला और साहित्य में समकालीन जीवन-जगत के यथातथ्य विस्तृत और अनलंकृत चित्रण को यथार्थवादी कहा जाता है । यथार्थवाद का विलोम है आदर्शवाद और भाववाद । अब विचार करें सामाजिक यथार्थ पर ....सामाजिक अंतक्रिया से निर्मित संघटनाएँ सामाजिक यथार्थ हैं । यह व्यक्तिगत क्रियाओं और अभिप्रायों को अतिक्रांत करता है । सामाजिक यथार्थ जैविक यथार्थ और व्यक्तिगत ज्ञानात्मक यथार्थ से भिन्न हो सकता है । वह एक समुदाय द्वारा स्वीकृत एवं मान्य ऐसे सामाजिक मतों और सिद्धांतों से निर्मित होता है जो अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं और उस समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं । वह ऐसी एकरूपताओं का समवाय है जिनसे किसी समाज की विशिष्ट पहचान निर्मित होती है । प्रसिद्ध समाजशास्त्री अल्फ्रेड शुट्ज ने सामाजिक यथार्थ के सुनिश्चित स्तर को निर्दिष्ट करने के लिए ‘सामाजिक दुनिया’(या संसार) का प्रयोग किया है । कला और साहित्य में सामाजिक यथार्थ के यथातथ्य, विस्तृत और अनलंकृत चित्रण को सामाजिक यथार्थवादी कहा जाता है ।

शशि शर्मा : स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में सामाजिक यथार्थ एक प्रमुख दृष्टि के रुप में अभिव्यक्त हुआ । इसके क्या कारण थे ? क्या सामाजिक यथार्थ दृष्टि को समाजवादी विचारधारा का विकास माना जा सकता है ?

धनंजय वर्मा : ऐसा नहीं है कि सिर्फ स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में ही सामाजिक यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है । हर देश और काल के साहित्य में सामाजिक यथार्थ प्रस्तुत हुआ है । वाल्मीकि ने 'रामायण' में और वेदव्यास ने 'महाभारत' में ही अपने युग के सामाजिक यथार्थ का ही चित्रण किया है ।'साहित्य समाज का दर्पण है' या 'साहित्य जीवन की आलोचना है' सरीखी सूक्तियों का अर्थ ही यह है कि सामाजिक यथार्थ ही साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है । सामाजिक यथार्थ के रूपांतरण में अंतर हो सकता है, होता है, होना चाहिए । हर लेखक कवि या कलाकार सामाजिक यथार्थ को अपनी रचना में अपनी प्रतिभा और प्रकृति के अनुसार रूपांतरित करता है ।

अपारे काव्य संसारे कविरेक: प्रजापति ।
यथास्मै रोचते विश्वम तथेद परिवर्तते ।।

'इस अपार काव्य–संसार में कवि प्रजापति (ब्रह्मा) की तरह है । उसे जैसा रूचता है, वैसा ही वह इस विश्व को परिर्वातित कर' एक प्रति संसार रच देता है । यहाँ काव्य-संसार से तात्पर्य साहित्यकार और कलाकार है ।

हाँ, स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में सामाजिक यथार्थ के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण की प्रमुखता अवश्य हुई जिसे समाजवादी यथार्थवाद कहा जाता है । यह मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र का एक लाक्षणिक प्रत्यय है, जिसने दुनियाभर के साहित्यों और कलाओं को प्रभावित किया । 1932 से 1980 तक सोवियत रूस के साहित्य में समाजवादी यथार्थवाद की प्रमुखता थी । रूस के महान लेखक लियो टालस्टाय और एंटन चेखव ने अपने सामाजिक यथार्थ के चित्रण में एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया । इसे आलोचनात्मक यथार्थवाद कहा गया । हमारे यहाँ प्रेमचन्द और यशपाल, फणीश्वर नाथ रेणु और नागार्जुन, हरिशंकर परसाई और कमलेश्वर सामाजिक यथार्थ से आगे आलोचनात्मक यथार्थवाद और किसी हद तक समाजवादी यथार्थवाद के लेखक है । समाजवादी यथार्थवाद की प्रमुख विषय–वस्तु एक वर्गहीन और समाजवादी (या साम्यवादी) समाज की रचना होती है । मुक्तिबोध की काव्य वस्तु यही है ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार की कविताओं में सामाजिक यथार्थ का कौन सा रूप आपको अधिक महत्वपूर्ण लगता है ?

धनंजय वर्मा : आधुनिक कविता में सामाजिक यथार्थ, कहानी-उपन्यास या नाटक की तरह सीधे-सीधे चित्रित नहीं होता । उसका बयान भी इतना प्रत्यक्ष नहीं

होता । वह बड़े तिर्यक ढ़ंग से संकेतित होता है और बिम्बात्मक रूप में अभिव्यक्त होता है । टी. एस. इलियट ने कविता को विचार का भावात्मक पर्याय (इमोशनल इक्वीवेलेंट आफ थाट) कहा था । हम उसे 'स्थिति' और 'यथार्थ' की भावात्मक प्रतिक्रिया कह सकते हैं ।

दुष्यंत की कविताओं में समकालीन जीवन का सीधा–सहज साक्षात्कार और उसका प्रत्यक्ष बोध अभिव्यक्त हुआ है । उसमें समकालीन सामाजिक अंतर्विरोधों, विषमताओं और विसंगतियों के प्रति उत्कट प्रतिकार और प्रतिरोध का भाव है । समकालीन जीवन की वास्तविकताएँ, समस्यायें, जटिलतायें और वस्तुस्थितियाँ उसका काव्य–विषय बन गयी हैं । उसके काव्य-नाटक 'एक कंठ विषपायी' में युद्ध की विभीषिका परम्परावाद और आम आदमी की स्थिति और नियति को लेकर गहन चिंतन–मनन है ।

दुष्यंत के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ अपेक्षाकृत अधिक मुखर और मूर्त रूप में अभिव्यक्त हुआ है । 'छोटे-छोटे सवाल' में प्राइवेट स्कूलों की शिक्षा व्यवस्था की विसंगतियाँ उभरी हैं तो 'आँगन में एक वृक्ष' की विषय वस्तु है – मानवीय रिश्तों की समकालीन संक्रांति । वह 'वात्सल्य के जहर' की कहानी है । उसमें सदियों से पवित्र माने जाने वाले वात्सल्य सम्बंधों पर जायदाद का संघर्ष हावी हो गया है – यहाँ तक कि ममता भी कलंकित हुई है ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार के काव्य में व्यंग्य एक केंद्रीय विशेषता के रुप में नजर आती है । क्या उनके व्यंग्य की तुलना कबीर,निराला और नागार्जुन से की जा सकती है ?

धनंजय वर्मा : आप गौर करें – शब्द की तीन शक्तियाँ होती है – अभिधा, लक्षणा और व्यंजना । साहित्य में अभिधा की बजाय लक्षणा और उससे भी अधिक व्यंजना का प्रयोग होता है इसीलिए साहित्य मूलत: व्यंजक, व्यंजनात्मक कहा जाता है याने ध्वन्यार्थ में ही काव्य और साहित्य का सौंदर्य निहित है । इस अर्थ में सारा काव्य और साहित्य व्यंग्य है । लेकिन अब व्यंग्य का अर्थ सीमित और विशेषीकृत हो गया है । वह अंग्रेजी के ‘सटायर’ के अर्थ तक महदूद हो गया है । उसमें कटाक्ष और उपहास का भाव आ गया है । मैं समझता हूँ कि दुष्यंत न तो व्यंगयकार है और न व्यंग्य कवि । उसके काव्य में सामाजिक विषमताओं और विसंगतियों पर चोट जरूर है लेकिन कबीर, निराला या नागार्जुन की तरह उसमें व्यंग्य की प्रधानता नहीं है । मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि दुष्यंत कुमार के काव्य में व्यंग्य एक केंद्रीय विशेषता के रूप में नजर आता है ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार जिस समय सृजनरत थे, उस समय साम्प्रदायिकता एक ज्वलंत समस्या बनी हुई थी और कई रचनाकार उसपर अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त

कर रहे थे । दुष्यंत कुमार के अभिन्न मित्र कमलेश्वर ने अपनी कई कहानियों एवं उपन्यासों में साम्प्रदायिकता की विभीषिका को चित्रित किया है किंतु मुझे दुष्यंत के काव्य–संसार में साम्प्रदायिकता से सम्बंधित एक भी कविता दिखाई नहीं पड़ी । दुष्यंत कुमार जैसा रचनाकार जिसने आपातकालीन तानाशाही की धज्जियाँ उड़ाकर रख दी, उसने इस विषय पर क्यों कुछ नहीं लिखा ? क्या यह उनके कवि की सीमा है ?

धनंजय वर्मा : दुष्यंत के काव्य संसार में आपको साम्प्रदायिकता से संबंधित एक भी कविता दिखाई नहीं दी तो इसलिए कि उसने इस विषयवस्तु पर कभी कुछ लिखा ही नहीं । यह कवि की सीमा कैसे हुई ? क्या यह जरूरी है कि हर कवि दुनिया की हर समस्या या विभीषिका पर कुछ लिखे ही ! और यह आपसे किसने कह दिया कि दुष्यंत ने 'आपातकालीन तानाशाही की धज्जियाँ उड़ाकर रख दी'..... ऐन आपातकाल में भोपाल में एक लेखक सम्मेलन हुआ था । उसमें वह मौजूद था । उसने न तो आपातकाल का समर्थन किया न विरोध । वह तब शासकीय सेवा में था और शासकीय सेवक की एक आचार संहिता होती है । हम सब उससे बँधे हुए थे । और लोगों की तरह उसने भी मौन रहना ही बेहतर समझा । मुझे रूस के एक लेखक आइजेक बेबेल की एक बात याद आ रही है । रूस में जब स्टालिन का दमनचक्र चला तब कई कवियों-लेखकों ने लिखना बन्द

कर दिया । बेबेल से किसी ने पूछा – आपने लिखना क्यों बन्द कर दिया ? बेबेल ने उत्तर दिया – कौन कहता है कि मैंने लिखना बन्द कर दिया । मैं तो मौन की (एक नयी) विधा का अभ्यास कर रहा हूँ । (आइ एम प्रैक्टीसिंग द जेनर आफ साइलेंस)…..

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार ने ‘साये में धूप’ जैसे कृति लिखकर हिन्दी साहित्य को नई पहचान दी, उनकी कविताओं के सम्मोहन से पाठक खुद को बचा नहीं पाते हैं, नेतागण उनकी पंक्तियों को अपने भाषणों में प्रयुक्त करते हैं और सिनेमा में उनके गज़लों का प्रयोग कर सिनेमा को सशक्त बनाया जाता है, फिर भी उन्हें वह अपेक्षित सम्मान नहीं मिला, जिसके वे हकदार थे । उनकी रचनाशीलता को किसी भी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय पुरस्कार से नवाजा नहीं गया । इसकी क्या वजह रही होगी ? क्या वे पुरस्कार वितरण की राजनीति के शिकार हुए या कुछ और वजह है ?

धनंजय वर्मा : आपके वक्तव्यनुमा इस प्रश्न के पहले चार वाक्यों से ही साफ होता है कि दुष्यंत की ‘साये में धूप’ को कितना सम्मान मिला है । रचना और रचनाकार का वास्तविक और स्थायी सम्मान पाठकों के बीच होता है । वह दुष्यंत को भरपूर मिला और मिल रहा है । उसे कोई राष्ट्रीय की कौन कहे प्रादेशिक पुरस्कार तक नहीं मिला लेकिन उसकी गज़लों की लोकप्रियता, उसके काव्य-

नाटक की कलात्मक उत्कृष्टता की स्वीकृति और मान्यता ही उसका सच्चा पुरस्कार है । पुरस्कारों में राजनीति और कुशल प्रबंधन का बोलबाला लगभग सदा से ही रहा है । इधर उसमें खूब इजाफा हुआ है । यहाँ तक कि नोबेल पुरस्कार भी उससे अछूता नहीं है । दुष्यंत वह सब नहीं कर पाया । वह कितनी जल्दी चला भी तो गया ।....

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार की कविताओं पर उनके अन्य समकालीन कवियों की तुलना में आलोचना भी कम हुई है । इसकी क्या वजह हो सकती है ?

धनंजय वर्मा : दुष्यंत को आरम्भ से ही पर्याप्त आलोचनात्मक स्वीकृति, मान्यता और प्रशंसा मिली । 'सूर्य का स्वागत' का जैसा स्वागत हुआ, वह अभूतपूर्व था । मैंने उसकी कविताओं पर, काव्य-नाटक और उपन्यासों पर पहले-पहल 'ज्ञानोदय', 'माध्यम', 'सारिका' आदि पत्रिकाओं में लिखा । उसके काव्य-नाटक पर मेरे निर्देशन में शोध-प्रबंध लिखा गया । उसके समग्र अवदान पर भी खूब लिखा गया है । कई विश्वविद्यालयों में उसके साहित्य पर शोध-प्रबंध लिखे गये, लिखे जा रहे हैं । आधुनिक हिन्दी साहित्य में उसकी अपरिहार्य उपस्थिति और उसके महत्व से कोई इंकार नहीं कर सकता ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार के साथ आपका व्यक्तिगत परिचय भी रहा है । क्या आप उनके साथ जुड़ी हुई कुछ विशेष यादें हमारे साथ बाँटना चाहेंगे ?

धनंजय वर्मा : अपनी पुस्तक 'एक आवाज : सबसे अलग (दुष्यंत की रचनाशीलता) में मैंने दुष्यंत के पत्रों के माध्यम से अपने व्यक्तिगत सम्बंधों का जायजा लिया है । उन पत्रों में–से अभिव्यक्त उसके व्यक्तित्व की कुछ छवियाँ भी उसमें नुमायाँ होती है । उसे यहाँ दुहराऊँगा नहीं ।

शशि शर्मा : आपका बहुत–बहुत धन्यवाद ।

डॉ. विजयबहादुर सिंह से श्रीमती शशि शर्मा का संवाद

शशि शर्मा : आपकी दृष्टि में सामाजिक यथार्थ की परिभाषा क्या है ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : इसका संबंध मार्क्सवाद से है । नहीं भी है । समाजवादी और सामाजिक में फर्क है । सामाजिक यथार्थ निराला में भी है । प्रेमचन्द में भी । पर समाजवादी यथार्थ तो तो यशपाल, राहुल, रांगेय राघव में है । जीवन– वास्तवों की अभिव्यक्ति ही सामाजिक यथार्थ है मेरी दृष्टि में । उदाहरण के लिए मुक्तिबोध सामाजिक यथार्थ से जुड़े लोगों को जनवादी और समाजवादी यथार्थ से जुड़े लोगों को प्रगतिवादी कहते हैं ।

शशि शर्मा : स्वातंत्रयोत्तर साहित्य में सामाजिक यथार्थ एक प्रमुख दृष्टि के रूप में अभिव्यक्त हुई–इसकी क्या कारण थे ? क्या सामाजिक यथार्थ दृष्टि को समाजवादी विचारधारा का विकास माना जा सकता है ? यदि हाँ, तो किस तरह और यदि ना तो क्यों ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : समाजवादी विचारधारा ने उस समूची यथार्थवादी परंपरा को हाइजैक कर लिया है जो सामाजिक यथार्थ वाली थी । चाहे प्रेमचन्द हों या

आचार्य शुक्ल सबको । यह बहस जारी है ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार की कविताओं में सामाजिक यथार्थ का कौन-सा रूप आपको अधिक महत्त्वपूर्ण लगता है ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : प्रत्येक कवि की चेतना जितना अपने खुद के व्यक्तित्व से टकराती है उतनी ही वह अपने चतुर्दिक उपस्थित सामाजिक जीवन से भी टकराती है । सामाजिक हकीकतें उसकी चेतना को तरह तरह से मजबूर करने और भीड़ में शामिल होने और होकर जीने की कोशिशों में लगी रहती हैं पर स्वभावत: मौलिक और परिणामत: विद्रोही होने के चलते वह प्राय: घुटने नहीं टेकता और अपने शब्दों के उजाले में तमाम प्रतिकूल अँधेरों के बावजूद चलता रहता है । दुष्यंत कुमार भी ऐसे ही कवि थे । तभी तो वे कुण्ठा, उदासी और निराशा के घनघोर अँधेरे में 'सूर्य का स्वागत' लेकर आए । उनकी कविता में नयी मनुष्यता की उम्मीद थी । नयी सामाजिकता का आवाहन था, इसलिए यथार्थ का चेहरा वहाँ वह नहीं था जो धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' में था । यह बहुत कुछ कवि की चेतना और उसकी दृष्टि पर निर्भर करता है कि वह आलोचनात्मक यथार्थ की ओर जाए या फिर आशावादी स्वस्थ यथार्थ की ओर । दुष्यंत दूसरे यथार्थ के लेखक थे । मनुष्य की जिजीविषा, स्वाभिमान, आत्मविश्वास, जुझारूपन और उम्मीद के लेखक ।

'कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता, एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो' जैसा कथन वे इसीलिए कर पाए क्योंकि मनुष्य की कर्मठता और पौरूष में उन्हें भारी विश्वास था ।

शशि शर्मा : मैंने पढ़ा है कि उनके 'सूर्य का स्वागत'संग्रह की प्रशंसा करते हुए कवि दिनकर ने कहा था कि 'प्रयोगवादियों के सड़ाँध से बचने के लिए इस फूल को सूँघना जरूरी है ।' दुष्यंत कुमार जो अपनी पहली ही रचना से पाठक वर्ग में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराते हैं, अपने प्रथम दो संग्रहों में पाठकीय संवाद स्थापित नहीं करते हैं, फिर अचानक वे 'जलते हुए वन का वसंत' में पाठकीय संवाद स्थापित करते हैं और अपने सृजन-सरोकारों के बारे में बताते हैं, मैं यह जानना चाहती हूँ कि कवि को दो संग्रहों की सफलता के उपरांत अचानक अपने सरोकारों को स्पष्ट करने की जरूरत क्यों महसूस होती है ? अपने आपको को पाठक वर्ग के द्वारा नई कविता के बीच 'प्लेस' बनाने की आकांक्षा क्यों पैदा होती है ? (कवि का व्यक्तव्य है – यह मेरी कविताओं का तीसरा संग्रह है । पहले दोनों संग्रहों में सिर्फ कविताएँ थीं, भूमिका नहीं । इसमें इस छोटी-सी भूमिका द्वारा मैंने पाठक से संलाप की स्थिति पैदा की है । शायद इधर की नई कविताओं में कविता खोजने की उसकी कोशिश को इससे कुछ बल मिले या शायद उसके बीच मुझे 'प्लेस' करने में उसे सुविधा हो ।)

डॉ. विजयबहादुर सिंह : वे एक बेहद बेचैन किस्म के आदमी और रचनाकार थे । पाठकीय संवाद तो वे हमेशा या कहें शुरू से ही कर रहे थे । उनकी कविता अमूर्त शैली की संप्रेषण-जटिल कविता नहीं थी । प्रतीकों की तरफ वे भी जाते थे, 'जलते हुए वन का वसंत' का प्रतीक देखें पर पाठक की ग्रहणशीलता की सीमा उन्हें मालूम थी । फिर वे गाँव के वृहत्तर लोक में पले-बढ़े कवि थे । इसलिए उनमें शहरी मध्यवर्गीय अकेलापन भी नहीं था । शहरी जीवन की अपनी फितरतें होती हैं । गाँव में आदमी चाहे भी तो अकेला नहीं हो सकता । उसकी चेतना में सामूहिकता की बसाहट होती है । प्रेमचन्द, रेणु, नागार्जुन, निराला – ये तमाम लोग गाँव के लोग थे । इसलिए खुली–फैली तबीयत थी इनकी । इलाहाबाद, दिल्ली और भोपाल के जीवन में आने पर दुष्यंत की चेतना स्वचित प्रभावित भी हुई होगी । 'आवाजों के घेरे' में यह लक्षित भी किया जा सकता है । पर 'एक कंठ विषपायी' में फिर वे अपने मुख्य पथ और स्वभाव पर आ जाते हैं । 'जलते हुए वन का वसंत' में उनको लगा कि जमाने के आलोचकों को दरकिनार कर पाठक पर ही भरोसा कवि के लिए सेहतमन्द है । 'साये में धूप' तो इसका जीता–जागता प्रमाण है ।

अगर उनकी चेतना सामाजिक दृष्टि से ऐसी न होती तो वे ऐसी ग़ज़लें कभी न लिख पाते। नई कविता के कई शेड्स हैं । उसमें मुक्तिबोध भी आते

हैं । दुष्यंत का अपना शेड्स है और मुहावरा भी ।

शशि शर्मा : एक सरकारी मुलाजिम होते हुए भी आपातकाल पर दुष्यंत कुमार ने बहुत–सी कविताएँ लिखी है । यहाँ तक की उन्होंने अपने कई शे'रों में तत्कालीन सत्ता की तानाशाही का प्रतिवाद भी 'ये जुबा हमसे सी नहीं जाती' कहकर किया है, फिर 'एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या यों कहो –, इस अँधेरी कोठरी में एक रोशनदान है।' में बूढ़ा आदमी को विनोवा भावे कहकर वे खुद को संकट से बचाते हैं, ऐसा क्यों, क्या उनका व्यक्ति उनके कवि पर हावी था ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : आपने छापामार लड़ाइयों और लड़ाकुओं के बारे में जरूर सुना होगा। वे भी बहादुर ही होते हैं पर अपनी ताकत और सैन्यबल की सीमा के साथ सत्ता के भारी अस्त्र–शस्त्र और सैन्यबल से भी परिचित होते हैं । साहित्य भी कभी–कभी ऐसी छापामार शैलियों में उतरता है । शिवाजी क्या करते थे आखिर । औरंगजेब यूँ ही नहीं उन्हें पहाड़ी चूहा कहता था । पर हम तो शिवाजी को शिवाजी ही मानते हैं ।

दुष्यंत का ही कलेजा था जो 'ईश्वर को सूली' जैसी कविता लिखकर अपने को प्रमाणित कर सके । कविता में जो कहना था, वह धड़ल्ले से कह गए । अब जो सरकार से अपनी बचत के लिए कहना है, उसमें नीतित: अगर चालाकी बरतनी पड़े तो आत्मरक्षा के लिए ऐसा करना भी चाहिए । कवि के रूप

में साहस और ईमानदारी, सरकारी मुलाजिम के रूप में चालाकी ।

इससे कवि-व्यक्तित्व पर क्या असर पड़ता है । कवि तो बदलता नहीं । हमेशा ही अन्याय के विरूद्ध लड़ता रहता है । दुष्यंत ने शायद ही कभी ऐसा किया हो ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार की एक कविता है ‘ नई राह’, इस कविता में कवि अपने लेखन की तुलना अपने कई समकालीन कवियों जैसे नरेश मेहता, शमशेर बहादुर सिंह, शम्भुनाथ सिंह, रमानाथ अवस्थी, धर्मवीर भारती, केदारनाथ अग्रवाल आदि से करते हुए अपने लेखन को इनसे श्रेष्ठ ठहराते हैं । इतना ही नहीं वे छायावादी कवि पंत, निराला और प्रसाद से भी खुद को बेहतर मानते हैं, आपने दुष्यंत कुमार रचनावली भाग –1 की प्रस्तावना में लिखा है कि यह उनका असाधारण आत्मविश्वास है, क्या यह सचमुच उनका असाधारण आत्मविश्वास ही है या बड़बोलापन जो भावावेग की तीव्रता से नि:सृत हुआ है ।

डॉ. विजयबहादुर सिंह : इसमें उनकी अतिरिक्त भावुकता नहीं, गँवई भोलापन ही ज्यादा है । तब भी उनका यह सोचना तो था ही कि वे परम्परा की ऐसी औलाद हैं जिनसे नई फसल लहलहानी है । और यह उन्होंने गज़लों के मार्फत कर भी दिखाया । असल में वे भवानी प्रसाद मिश्र जैसे परम स्वाधीन कवियों वाली राह पर

थे । नई कविता और सप्तक के कवियों पर लिखते हुए उन्होंने ऐसा कहा भी है कि भवानी प्रसाद मिश्र ही तो कवि हैं । कैसा कवि ? वह जो आत्मा की आजादी और देशी बौद्धिकता से संचालित है । वह नहीं जो इस या उस की नकल करता हुआ चलता है । कवि का किसी दबाव में – चाहे विचारधारा का हो चाहे इस या उस कलावाद का-रहना उन्हें मंजूर नहीं था । वे कवि को अपनी रचना का स्वयंभू प्रजापति मानते थे । आत्मविश्वास तो सचमुच उनमें जरूरत से ज्यादा कुछ था ।

छायावादियों की रहस्यबोझिल, स्वप्निल कल्पनाओं वाली कविता उनके लिए अभीष्ट नहीं थी । तथापि शुरूआत में वे सुमित्रानन्दन पंत को अपना काव्य–गुरू मानते थे । पर इलाहाबाद में मार्कण्डेय, कमलेश्वर का साथ पाकर वे लगभग बदल से गए । तब भी अपने रोमानी स्वभाव से बाज तो नहीं आए । उनकी यही स्वच्छन्दता उन्हें निरंतर गतिशील बनाए रही और बदलती भी रही।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार ने बहुत सारी कविताएँ लिखी है, फिर भी कुछ ऐसे विषय है जिनपर उन्होंने बहुत कुछ नहीं लिखा है, उसमें गहराई का अभाव दिखता है, जैसे किसान–मजदूर पर उन्होंने बहुत कम कविता लिखी है, इसी तरह समाज में नारी की स्थिति पर भी उन्होंने विस्तार से कुछ नहीं लिखा, उनकी रचनाओं से गुजरते हुए मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इन विषयों को उन्होंने बस यू ही उठा लिया– इस संबंध में आप क्या कहना चाहेंगे ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : अगर आप उनके गीतों को देखें तो किसान-मजदूर पर उनकी कविताएँ हैं । यों कोई कवि विषय तय करके नहीं लिखता । पंत ने लिखा तो उनकी कविता कहाँ से कहाँ जा पहुँची, आप सोचें । कविता अनुभवों से फूटी भाषा है, उन्हीं की जुबान में । पर जब वो यह कह रहे थे – ‘ कल नुमाइश में मिला वो चिथड़े पहने हुए / मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान हैं ।’ पहली गज़ल में भी आम किसान और गरीब आदमी है । कविता में विषय का साइन बोर्ड लेकर घूमना कवि का लक्षण नहीं है । दुष्यंत तो खुद किसान-पुत्र थे । खुद भी पिताजी के बाद खेती–किसानी करवाते थे । तब जो दर्द या गुस्सा था, उसे हम किसका मानेंगे ?

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार जिस समय सृजनरत थे, उस समय साम्प्रदायिकता एक ज्वलंत समस्या बनी हुई थी और कई रचनाकार उसपर अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त कर रहे थे । दुष्यंत कुमार के अभिन्न मित्र कमलेश्वर ने अपनी कई कहानियों एवं उपन्यासों में साम्प्रदायिकता की विभीषिका को चित्रित किया है किंतु मुझे दुष्यंत के काव्य–संसार में साम्प्रदायिकता से सम्बंधित एक भी कविता दिखाई नहीं पड़ी । दुष्यंत कुमार जैसा रचनाकार जिसने आपातकालीन तानाशाही की धज्जियाँ उड़ाकर रख दी, उसने इस विषय पर क्यों कुछ नहीं लिखा ? क्या यह उनके कवि की

सीमा है ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : मैंने पहले भी कहा दुष्यंत विषय तय करके नहीं लिखते थे । पर जब वो अपने को उर्दू–हिन्दी के बीच खड़ा करके देखते थे । गालिब या मीर की याद करते थे तब समझना चाहिए कि वे कैसे भी बँटवारे, कैसी भी संकीर्णता, कैसे भी कठमुल्लापन के खिलाफ थे । समाज, देश, भाषा, धर्म वे किसी भी सांप्रदायिक कटघरे के खिलाफ थे । उनका कवि एक व्यापक अर्थ में हिन्दी का कम हिन्दुस्तानी का अधिक था पर संस्कारों में जो भाषा मुहावरे उनके थे, उनके प्रयोग के चलते प्राय: मान लिया जाता है कि वे अन्यों की ही तरह थे ।

कवि की सीमा मापने से कहीं अधिक जरूरी होता है कवि की गति और व्यापकता को समझना । कौन किधर नहीं गया, जैसे कि प्रसाद हास्य की तरफ नहीं गए, कबीर वात्सल्य चित्रण की ओर नहीं गए तो क्या इसे सीमा कह उनकी महत्ता का निषेध करें ?

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार ने ‘साये में धूप’ जैसे कृति लिखकर हिन्दी साहित्य को नई पहचान दी, उनकी कविताओं के सम्मोहन से पाठक खुद को बचा नहीं पाते हैं, नेतागण उनकी पंक्तियों को अपने भाषणों में प्रयुक्त करते हैं और सिनेमा में उनके ग़ज़लों का प्रयोग कर सिनेमा को सशक्त बनाया जाता है, फिर भी उन्हें वह अपेक्षित सम्मान नहीं मिला, जिसके वे हकदार थे । उनकी रचनाशीलता को किसी

भी महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय पुरस्कार से नवाजा नहीं गया । इसकी क्या वजह रही होगी ? क्या वे पुरस्कार वितरण की राजनीति के शिकार हुए या कुछ और वजह है ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : आप जिन सम्मानों और पुरस्कारों की बात कर रही हैं, वे सब साहित्यिक समकालीनों द्वारा दिए-लिए जाते हैं । बगैर कोशिश और सिफारिश के ये खेल कभी–कभी ही होते हैं । पर जैसा आप कह रही हैं, उनकी लोकप्रियता व्यापक थी, भारत सरकार ने उनपर डाक टिकट जारी किया, भोपाल नगर निगम ने उनके नाम एक बड़ी सड़क का नाम कर दिया । 'साये में धूप' के संस्करण पर संस्करण हो रहे हैं । वे हिन्दी ग़ज़ल के प्रवर्तक माने जा रहे हैं, निराला और शमशेर के बावजूद । तब और कैसी लोक स्वीकृति चाहिए ?

जनता के कवि होकर वे अपनी जनता में प्रिय कवि के रूप में जीवित हैं । और क्या चाहिए ?

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार की कविताओं पर उनके अन्य समकालीन कवियों की तुलना में आलोचना भी कम हुई है । इसकी क्या वजह हो सकती है ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : आपने सारिका का दुष्यंत अंक जरूर देखा होगा । उसके बाद भी उन पर काफी कुछ लिखा जाता है । आलोचक कम हैं रचना कुछ ज्यादा

ही ।

आजकल जैसी अंधी हवा चल रही है उसमें आलोचक खेमेबंदी के शिकार तो हैं ही, विचारधारा और संगठनों के गुलाम भी हैं । इनके द्वारा प्रचलित नामों पर ही काम करते हैं ।

दुष्यंत से पहले भवानी प्रसाद मिश्र थे । उन पर भी बहुत कम काम हुआ क्योंकि लीक से हटकर चल रहे थे । तब जो स्वाधीन साहित्यिक विवेक का कवि होगा, वही अलक्षित रहेगा । स्वाधीन विवेक वाला आलोचक ही उसका मूल्यांकन कर पाएगा । हमें इसकी प्रतीक्षा करनी है ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार रचनावली तैयार करते समय आपका सबसे खास अनुभव क्या रहा ? क्या आप हमें कुछ बताना चाहेंगे ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : उनकी अधिकांश चीजें अव्यवस्थित थीं । पर चमत्कार यह कि आठवीं-नौवीं की कापियाँ भी सहेज कर रखी हुई थीं । वह रजिस्टर भी जो 'साये में धूप' वाला था । यह उन जैसे आदमी ने कैसे किया होगा, श्रीमती राजेश्वरी दुष्यंत ने इसमें कवि की कितनी मदद की होगी, कहना कठिन ।

वे बेहद स्फूर्ति वाले आदमी थे । अकूत क्षमतावान । न कभी झुकने और टूटनेवाले । साहसी, उन्मुक्त, संकोचहीन और बेतकल्लुफ । दोस्तों पर

जान छिड़कनेवाले । जबरदस्त मर्दानी तबीयत थी उनकी पर दुनियादारी में भी अव्वल थे । सो भी कैसी — अन्यों पर हावी होनेवाली दुनियादारी । खूबसूरत तो खैर वे थे ही ।

अपनी रचनाशीलता के दायरों के प्रति भी बेहद सचेत, अपनी प्रतिभा के प्रति बेहद आश्वस्त । आत्मालोचन की वृत्ति भी खूब थी उनमें । पर दूसरों को लेकर अगर वह विरोधी है तो उसे धूल चटाने में भी अव्वल ।

अपनी रचनाओं पर खूब मेहनत करते थे । संतुष्ट होने पर ही फाइनल मानते थे । गद्य की भी उनमें जबरदस्त प्रतिभा थी । पर वे जिस तरह स्वयं को बाँटे और बिखेरे रहते थे उसमें बड़ा और धीरजवाला काम हो नहीं पाता था । न संभव था ।

शशि शर्मा : दुष्यंत कुमार के साथ आपका व्यक्तिगत परिचय भी रहा है । क्या आप उनके साथ जुड़ी हुई कुछ विशेष यादें हमारे साथ बाँटना चाहेंगे ?

डॉ. विजयबहादुर सिंह : मैं तो उम्र में उनसे आठ-नौ साल छोटा था । पर जब मैं प्रभाकर क्षोत्रिय के बुलावे पर पहली बार 1972 में भोपाल में काव्य-पाठ करने गया, शरद जोशी की जगह वे ही मेरे पाठ के अध्यक्ष थे । मेरे साथ–साथ नवजात आई.ए.एस सुदीप बनर्जी भी थे तभी से मैं उनकी निगाह में आया । पढ़ तो मैं

64-65 से रहा था । 1974 में जब गज़लें आई तो मेरा उनका नियमित पत्राचार चला । उनकी कुछ खूबसूरत चिठियाँ विदिशा के दोस्तों के बीच ही गायब हो गई । मैं उन्हें विदिशा बुला भी रहा था, वे तैयार भी थे पर मौका नहीं मिला । टलता ही गया, फिर भी उनका स्नेह मुझे मिलता रहा और वे अपनी ताजी गज़लें सुनाते थे मिलने पर ।

मेरी पत्नी के ट्रांसफर के सिलसिले में एक दिन जो इतवार का था – उन्होंने पूरा जाया किया । आपातकाल के दिनों में मिलने पर वे अपनी खुशियाँ और मुश्किलें शेयर करते थे । उनके छोटे भाई 'मुन्नूजी' जिन्हें 'साये में धूप' समर्पित है – मेरे अंतरंग और भरोसेमन्द दोस्त थे । वे भी अब नहीं रहे । फिर भी भाभी के पास, बेटे आलोक के पास, बहू मानू के पास तो जाना–आना चलता ही रहता है ।

मानू कमलेश्वर की इकलौती बेटी और उत्तराधिकारी दुष्यंत की पुत्रवधू है । गायत्री कमलेश्वर भी मुझे प्यार करती और आदर देती हैं । लगभग परिवार जैसा आत्मीय मामला है ।

शशि शर्मा : आपका बहुत–बहुत धन्यवाद ।

ग्रंथानुक्रमणिका

अन्न है मेरे शब्द – 62, 411

आधुनिक कवि: निराला -185,411

आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द-59, 411

आधुनिक हिन्दी कविता में वैचारिक पक्ष-411,

आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द-57, 58, 411

आवाजों के घेरे - 66, 85, 401

आस्था और सौंदर्य-295,412,

इक्कीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य : समय, समाज और संवेदना-412

इतिहास और आलोचना-61, 412

एक आवाज : सबसे अलग दुष्यंत की रचनाशीलता-412

कबीर-61, 234, 412

कबीर ग्रंथावली – 61, 412

कवि अज्ञेय :विश्लेषण और मूल्यांकन-292, 412

कविता का आत्मपक्ष-292, 388, 390, 412

कविता की जमीन और जमीन की कविता- 388, 412

कविता की लोकधर्मिता-292,413

काव्य–सृजन और शिल्प-विधान - 190, 389, 413

कुछ विचार-57,58, 60,62,413

गल्प का यथार्थ : कथालोचन के आयाम-57, 58, 59, 234, 235, 413

गाँधी : समय, समाज और संस्कृति -413

चिंतामणि भाग-1 – 295, 413

चिंतामणि भाग-3– 292, 413

जलते हुए वन का वसंत – 66, 78, 91, 92

दुष्यंत कुमार और नयी कविता : एक अनुशीलन–108, 413

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों का समीक्षात्मक अध्ययन-110, 294, 413

दुष्यंत कुमार : रचनाएँ और रचनाकार-109, 414

नयी कविता के प्रबंध काव्य शिल्प और जीवन दर्शन-390, 414

निबंधों की दुनिया - 60, 414

निराला-388, 414

पल्लव- 393,414

पंत की काव्य भाषा शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण -390,414

प्रतिनिधि कविताएँ रघुवीर सहाय-62, 414

बलदेव वंशी का काव्य: सामाजिक यथार्थ-56, 60, 414

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा हिन्दी आलोचना-390 ,392, 394, 414

भारतीय संविधान और राजनीति-183, 415

मैं वह शंख महाशंख-62, 415

यथार्थवाद-56, 57, 58, 59, 60, 415

यथार्थवाद पुर्नमूल्यांकन-56, 57, 59, 60, 415

यारों के यार दुष्यंत कुमार-415

शताब्दी के ढलते वर्षों में-237, 238, 415

समकालीन कविता और कुलीनताबाद – 61, 415

समाजवादी यथार्थवाद और हिन्दी कथा साहित्य-59, 388, 415

समय के सरोकार-187, 415

समांतर कहानी में यथार्थबोध- 59, 415

साहित्यिक निबंध-56, 58, 61, 237, 416

साहित्य और यथार्थ-56, 60,61, 416

सूर्य का स्वागत-74, 76, 77, 78, 79, 81, 82, 83, 85, 266,272, 302, 319, 355, 368, 375, 401, 432, 435, 436

स्त्री मेरे भीतर –62, 416

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में प्रणय-चित्रण – 293, 416

हरिशंकर परसाई : व्यंग्य की वैचारिक पृष्ठभूमि-234, 235,416

हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद-58,60, 416

हिन्दी काव्य-नाटक और युगबोध– 416

हिन्दी के प्रमुख व्यंग्यकार-235,416

हिन्दी गज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर-239, 416

हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर परसाई -234, 235, 417

हिन्दी साहित्य का इतिहास–58, 417

हिन्दी साहित्यशास्त्र - 417

लेखकानुक्रमणिका

अजब सिंह -7, 16, 30,35

अजय तिवारी-44

आचार्य रामचंद्र शुक्ल-23, 244, 269, 369

एकांत श्रीवास्तव -52, 53, 245, 246, 337, 341, 353, 411, 412

कबीर- 45,46, 55, 61, 65, 117, 201, 214, 223, 234, 243, 246, 248, 338, 362, 397, 406, 412, 425, 438

कांति कुमार-78, 87, 94, 310

केदारनाथ सिंह-352

खगेंद्र ठाकुर 125,132, 337,

जार्ज लुकाच-4, 5, 10, 25, 34 242, 283, 289, 290, 340, 397, 405

तुलसीदास-43, 46, 62,75, 11.

धनंजय वर्मा-79, 420, 422, 423, 425, 426, 427, 428, 429

नन्ददुलारे वाजपेयी- 340

नागार्जुन- 49, 50, 65, 117, 201, 207, 281, 338, 404, 406, 423, 425, 433

नामवर सिंह-341

निराला-49, 65, 75, 90, 130, 131, 201, 268, 285, 286, 287, 288, 289, 290, 405, 406, 425, 430, 433, 435, 439

पंत-49, 50, 74, 269, 271, 352, 354, 369, 390, 393, 414, 436, 437

प्रेमचन्द-7, 8, 19, 20, 40, 43, 49, 202, 423, 430

विजय बहादुर सिंह-56, 58, 61, 67, 107, 108, 109, 110, 115, 183-190,201, 235, 236-239, 259, 266, 267, 292-296, 303, 307, 317, 319, 324, 330-334, 344, 388-395, 411, 416, 418

शिव कुमार मिश्र-3, 6, 10, 14, 15, 17, 21, 27, 28, 35

सत्यकाम-8, 11, 13, 25

सुवास कुमार -14, 17, 18, 26, 32, 195, 198

हजारी प्रसाद द्विवेदी-44, 46, 193

हावर्ड फास्ट-4,5

त्रिभुवन सिंह – 2, 11, 16, 20, 23, 24, 37, 38, 41, 237